श्री नित्यानन्द जैनग्रन्थमाला—द्वितीय पुष्प

वेदाविर्भाव

श्री नित्यानन्द जैनग्रन्थमाला, सहारनपुर

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तकके लेखक आदरणीय श्री क्षुल्लक निजानन्द जी (पूर्व नाम स्वामी कर्मानन्द जी) से जैन समाज ही नहीं अपितु समस्त विद्वत्समाज परिचित है । आपने इससे पूर्व वैदिक साहित्यका मन्थनकर 'ईश्वरमीमांसा' नामक एक वृहत्काय ग्रन्थका निर्माण किया है । जिसमें स्वामी जी ने एक सच्चे दार्शनिक एवं वैदिक विद्वानकी दृष्टिसे ईश्वरके विषयमें पूर्ण रूपसे प्रकाश डाला है तथा विज्ञ समाजके समक्ष मस्तिष्क-विटामिन युक्त मनन सामग्री उपस्थितकी है ।

स्वामी जी ने जैनधर्म स्वीकार करनेसे पूर्व जैनसमाजके साथ बड़े बड़े शास्त्रार्थोंमे भाग लिया है और एक सच्चे ज्ञानलिप्सुकी दृष्टिसे सत्यताको स्वीकार करनेके हेतु अपने विशाल हृदयमे तनिक भी संकोचको स्थान नही दिया है । उसीके फलस्वरूप आज आप अपनी आत्माके कल्याण करनेके साथ साथ प्राणीमात्रके हितमे सलग्न हैं । इस विषयमे अधिक लिखना उपयुक्त न होगा ।

'ग्रन्थमाला' की द्वितीयमणि 'वैदिक ऋषिवाद' का वृहद्रूप यह 'वेदाविर्भाव' आज पाठकोंके समक्ष उपस्थित है । इसमें उन ऋषियोंका विशद विवेचन किया गया है । जिनको वैदिक मन्त्रोंका 'द्रष्टा' व 'कर्ता' कहा गया है । इस विषयमे पाठक स्वयं निष्पक्ष दृष्टिसे विचार करेंगे, ऐसी मुझे आशा है । ज्ञानलिप्सुओंको ऐसे सैद्धान्तिक दृष्टिकोण समझनेका प्रयत्न करना ही चाहिये, तभी

उनका पुरुषार्थ फलीभूत होता है। हठवाद और ज्ञानवादमें स्वभावतः विरोध है। अस्तु, मैं पाठकोंका अधिक समय न लेकर उनकी ज्ञान सामग्रीके अध्ययनमे बाधक नहीं होना चाहता।

आशा है स्वामीजीकी इस खोज तथा परिश्रमपूर्ण कृतिको सभी वर्ग सम्प्रदाय समाज मे सत्यताके साथ समादर प्राप्त होगा और यदि ऐसा हुआ तो स्वामी जी के गम्भीर पाण्डित्यपूर्ण इस प्रकाशन से मैं अपने को कृतकार्य समझूंगा।

त्रुटियोके लिये क्षमा।

भद्र आश्रम
शोरमियान सहारनपुर
मई १९५१

नानकचन्द जैन
मन्त्री—
श्रीनिजानन्दजैनग्रन्थमाला

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तकमें श्री स्वामी जीने अपने कितने ही वर्षोंके वेदाध्ययन एवं परिशीलनके गम्भीरतम अनुभवका सार पाठकोंके समक्ष उपस्थित किया है। यदि विचारशील व स्वाध्यायप्रेमी पाठक महानुभाव उनका निष्पक्षपात दृष्टिसे मनन करेंगे तो वे वेदों के विषयमें बहुत कुछ जान सकेंगे, ऐसा मेरा अपना विश्वास है। यह निर्विवाद है कि, स्वामीजी वैदिक साहित्यके मर्मवेत्ता, मननशील विद्वान हैं। आपका अध्ययन बहुत ही अपरिमित एवं व्यापक है। आपके जीवनका अधिकांश भाग धार्मिक तथा ऐतिहासिक गुत्थियोंके सुलझानेमें व्यतीत हुआ है और होरहा है। अध्ययनके पश्चात् किसी एक अनुसन्धानात्मक निष्कर्षपर पहुंचना ही आपके अध्ययनकी विशेषता है।

अतः कहना न होगा कि आपका व्यक्तित्व न केवल वैदिक महानतासे अपितु ऐतिहासिक, राष्ट्रीय और सामाजिक परिज्ञानसे ओतप्रोत है। अपने विषयको पुष्ट करनेकेलिये प्रबल प्रमाण तथा अकाट्य युक्तियाँ देनेमें तो आप ख्याति प्राप्त कर चुके हैं।

आर्यसमाज की ओरसे अम्बाला, पानीपत, देहली, खातौली और मुलतान आदि स्थानोंमें होनेवाले शास्त्रार्थोंमें मुख्य भाग आपका ही रहता था। इतना ही नहीं, मौखिक शास्त्रार्थोंके सिवाय

लिखित शास्त्रार्थ भी स्वामीजीने अधिक संख्यामें किये हैं। इसी लिये आपको आर्यसमाजके प्लेटफार्मसे 'शास्त्रार्थकेसरी' तथा सफल एवं मनोहर व्याख्यानोंके फलस्वरूप 'व्याख्यान वाचस्पति' की उपाधि प्रदान की गई थी।

यद्यपि आजकल आप जैनसमाजके गुरुपदपर आसीन हैं। अर्थात् उच्चश्रेणीके त्यागी-क्षुल्लक पदपर अधिष्ठित होकर अपने आनन्दमय-आदर्श जीवन तथा श्रेयस्कर सदुपदेशोंसे केवल जनता का महोपकार ही नहीं कर रहे हैं, प्रत्युत साथ साथ अपनी आत्मा का अभ्युत्थान भी कर रहे हैं तथापि पूर्वानुभूत वैदिक साहित्यका रसास्वाद प्राप्त करने तथा भूतपूर्व अपने सहधर्मियो (साथियो) को जागरूक रखनेके हेतु यदा-कदा अपनी प्रबल लेखनी द्वारा वेदों के विषयमें अपना अनुभव प्रकाशित करते ही रहते हैं।

क्योंकि आपकी प्रकृतिके साथ लेखनकला व वक्तृता कला ये दो कलाएँ तो नत्थी हैं ही। फलत. प्रतिदिन शास्त्रोंके स्वाध्यायके अतिरिक्त सभामें प्रवचन उपदेश करना और गवेषणापूर्ण लेख लिखना आपकी दिनचर्यामें विशेष स्थान रखते हैं। किसी उपयोगी विषयपर घंटो चर्चा करना, शंका-समाधान करना आपके मनोविनोदका एक प्रधान साधन सा बन गया है।

स्वामीजीने आर्यसमाजसे सम्बन्ध-विच्छेद क्यो किया ? इस प्रश्नका समाधान, विचारक पाठक स्वामीजीकी जीवन झाँकीसे जो इसी पुस्तकके प्रारम्भमें प्रकाशित है, कर सकते हैं।

स्वामीजी के अध्ययनके फलस्वरूप जनताको उनकी लिखी कई पुस्तकें प्राप्त हुईं । उनमें 'वैदिकऋषिवाद', 'ईश्वरमीमाँसा' आदि पुस्तकें वैदिक साहित्यसे सम्बन्धित हैं । प्रथम पुस्तकमे आपने मन्त्रद्रष्टा ऋषियों का अनुसन्धान किया है और द्वितीय ग्रन्थ में ईश्वरके स्वरूप एवं उसकी ऐतिहासिकतापर चर्चा की है। उक्त दोनों पुस्तकें ही निष्पक्ष गवेषणात्मक दृष्टिकोणसे लिखी गई हैं।

'वैदिक ऋषिवाद' सन् १६३६ मे 'अ० भा० दि० जैनशास्त्रार्थ सघ' अम्बाला से प्रकाशित हुआ था । उसीका बृहद्रूप यह "वेदाविर्भाव" है ।

इसमें स्वामीजीने ऋग्वेदादिके अनेक मंत्रोंद्वारा जो कि सर्व-मान्य श्री सायणाचायके अनेक भाष्यसे युक्त हैं। यह सिद्ध किया है कि वेद न तो अपौरुपेय हैं और न नित्य हैं, प्रत्युत यज्ञादि-कविसम्मेलनोंमे तथा विशेष समय (पर्व आदि) पर ऋषियोंसे बनाई गई कविताओंका संग्रह है ।

यथा—सनायते गोतम इन्द्र नव्यमतक्षद् ब्रह्महरियोजनाय ....(ऋ० १।६३।१३)

सायणभाष्य—गोतमस्य ऋषेः पुत्रो नोधा ऋषिः नव्यं नूतनं ब्रह्म—एतत्सूक्तरूपं स्तोत्रं नोऽस्मदर्थमतक्षत्—अकरोत ।

अर्थात्—हे इन्द्र ! गोतम ऋषिके नोधा नामक पुत्रने हमारे लिए यह नया सूक्त बनाया ।

तथा च—एष वां स्तोमो अश्विनावकारि......।

(ऋ० १।१८४।५)

सायणभाष्य—हे अश्विनौ ! वां युवाभ्याम, एष स्तोमः स्तोत्रम अकारि—कृतः ।

अर्थात्—हे अश्विनीकुमारो ! हमने तुम्हारे लिए पापविनाशी यह स्तोत्र वनाया है ।

तथा च—प्रस्तुत पुस्तकके पृष्ठ १६ पर दिये गये—

(तन्नुनः पूर्वे पितरो नग्वाः सप्त विप्रासो अभिजायन्ते

(तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठम्...)

मन्त्रोद्वारा यह स्पष्ट सिद्ध है कि अंगिरा आदि सप्त ऋषियोंके वंशजोंने वेदोंका निर्माण किया है । वेदोंके स्वाध्यायसे भी यह वात निःसन्देह सिद्ध होजाती है । तथा वायुपुराण आदि मान्य ग्रन्थोंने भी इसी (पूर्वोक्त) वातकी पुष्टि की है । इसका विशद वर्णन इसी पुस्तकमें दिये गये 'ऋषिप्रकरण' पृष्ठ ३८ पर देखिये ।

तथा च—पृष्ठ १९ पर दिये गये—

(अति वा यो मन्यते नो ब्रह्म वा यः)

इत्यादि मन्त्रमें ऋजिश्वा ऋषि कहते हैं कि हे मरुतो ! जो व्यक्ति हमसे अपनेको श्रेष्ठ समझकर हमारे वनाये हुए स्तोत्रोंकी निन्दा करता है उसकी सारी शक्तियाँ अनिष्टकारी हों । इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि उस समयके वैदिक कवि भी एक दूसरेकी रचनाके विषयमें निन्दा-स्तुति किया करते थे ।

तथा च—पृष्ठ २३ पर दिये गये—

(ये ते विप्र ब्रह्मकृतः सुते......)

इत्यादि मन्त्रमें इन्द्र ऋषि के प्रति कहते हैं कि स्तोत्रोके बनाने वाले कवि लोग नाना प्रकारके धनकी इच्छासे एकत्र होकर तुम्हारे लिए सोम यज्ञ करते हैं। वे सोमरूप अन्न प्रस्तुत होनेके पश्चात् जिस समय आमोद-प्रमोद प्रारम्भ होता है उस समय स्तुतिरूप साधनसे सुखलाभ के अधिकारी हों।

इससे स्पष्ट विदित होताहै कि बहुतसे कवि सोमरसका पान करके नशे मे ही मन्त्र-रचना करते थे।

तथा च—ऋ० ९।२६।४और ९।१०।१-५ में सोमको वाचस्पति कहा गया है। अथर्ववेदके भाष्यकार पं० राजारामजीने अथर्ववेद के प्रथममंत्र का भाष्य करते हुए नीचे नोटमें और आर्यसमाजके प्रसिद्ध विद्वान पं० सातवलेकरजीने 'ऋग्वेदका सुबोध भाष्य' के भाग ५ में पृ० ३२ पर सोमरसको स्फूर्ति देनेवाला कहा है। इस से भी पूर्वोक्त विचारकी परमपुष्टि होती है।

इसी पुस्तक के पृ० ६६ पर वायुपुराण, ब्रह्मपुराण आदिके प्रमाण भी वेदकर्ता ऋषियोकी पुष्टि कर रहे है।

तथा च—वेदविभाग पृ० १४१, वेद ईश्वररचित नहीं, पृष्ठ १४४ और अनित्या वै वेदाः पृ० १५० आदि शीर्षकोंसे विद्वान् लेखकने वेदोंकी अनित्यताको सिद्ध किया है। और उसकी पुष्टिके लिये प्रसिद्ध प्रसिद्ध वैदिक विद्वानोंके प्रमाण और युक्तिसहित सिद्धान्तकी स्थापना की है।

स्वामीजीका यह वेदविषयक अनुसन्धान विद्वानोके विचारकी वस्तु है। इस विषयमें अभिरुचि रखनेवाले विज्ञ पाठक, साम्प्रदा-

यिकता और पक्षपातको छोड़ कर यदि इसपर गम्भीर विचार करेंगे, एव ध्यानपूर्वक इसका स्वाध्याय करनेकी कृपा करेंगे तो वे अवश्यमेव किसी एक विशेष निष्कर्षपर पहुचेंगे, ऐसी मुझे आशा है।

—ज्योतिप्रसाद जैन शास्त्री
हेड पण्डित जैन कालिज,
सहारनपुर
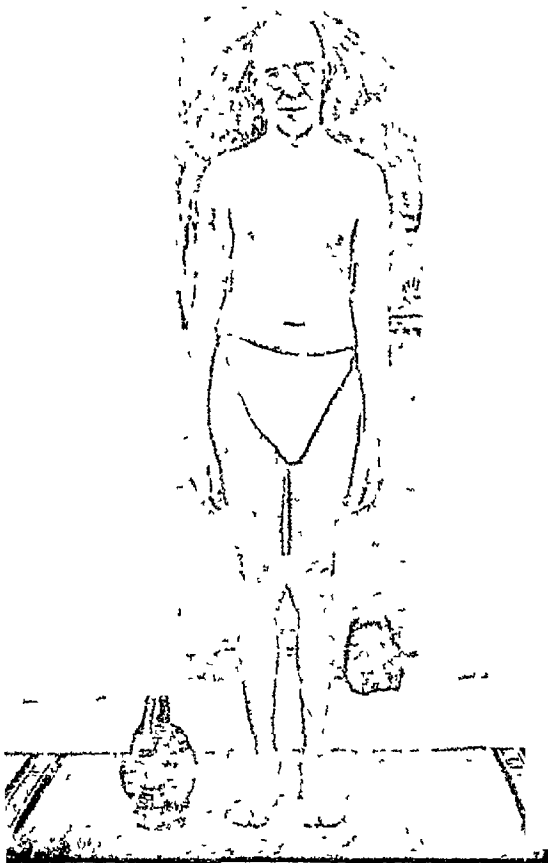
तू भी स्वामी ! इक नई अन्दाज का इन्सान है ।
बात वह कहता है सुन कर हर बशर हैरान है ॥

श्री स्वामीजीकी जीवन झांकी

ला हिसारमें भिवानी एक प्रसिद्ध नगर है। जहांके वैश्य बम्बई, कलकत्ता, कानपुर और देहली आदि व्यापारिक केन्द्रोंमें व्यापारके लिए विख्यात हैं। इनकी व्यापारिक कुशलता, मितव्ययता, पुरुषार्थपरायणताने इन्हें अनुपम सफलता प्रदान की है। इस भव्य नगरका निर्माण करानेवाले श्री ला० नन्दरामजी थे। अतः यह नगर उन्हींके नामसे प्रख्यात है। धर्मप्रेमी ला० नन्दराम अपने समयके महापुरुषोंमेंसे एक थे, आप धनमें कुबेर तो दानमें कर्ण और नीतिमत्ता मे महाराज विदुरके तुल्य थे। नन्दरामजीके दो छोटे भाई और थे, जिनका नाम ला० सेवारामजी और ला० भीमराज जी था। आप भी बड़े धर्मात्मा एवं गुणग्राही व्यक्ति थे।

स्वामीजीका जन्म इसी वैष्णव वंशमें हुआ था। आपकी जाति अग्रवाल और गोत्र गोयल था। आपके पिताजीका नाम श्री ला० हरिविलासरायजी था। लाला हरिविलासराय भी अपने कार्यमें दक्ष एवं धर्मधुरीण पुरुष थे। स्वामीजीका पूर्व (प्रसिद्ध) नाम बृद्धिचन्द्र था तथा संन्यासके उपरान्त आपका नाम कर्मानन्द हुआ।

जिन दिनों आप देहलीमें कपड़ेकी दलालीका कार्य करते थे उन दिनों आपको आर्यसमाजके व्याख्यान सुननेका अवसर प्राप्त हुआ तथा आपकी अभिरुचि समाजियोंके सुरुचिपूर्ण व्याख्यान सुननेमें नित्य बढ़ती ही गई। फलत: आपने आर्यसमाजके ग्रंथों (सत्यार्थप्रकाश आदि) का स्वाध्याय प्रारम्भ कर दिया। स्वाध्यायके फलस्वरूप आप की तर्कशक्ति बढ़ने लगी और आप आर्यसमाजके सिद्धान्तोंको भली-भाँति समझने लगे। इतना ही नहीं, आर्यविद्वानोंके लिखे जितने भी

भाष्य आपको उपलब्ध होसके उन सबका तुलनात्मक दृष्टिसे आपने अध्ययन किया। तत्पश्चात् आपने सभाओंमे व्याख्यान देना तथा शास्त्रार्थ करना शुरू कर दिया।

वह युग शास्त्रार्थ-युग था। 'तर्कशालिनी सभा' मे पारस्परिक शास्त्रार्थोंकी भरमार थी। एक बार 'वेद ईश्वरीयज्ञान है या नहीं?' इस विषयपर विवाद निश्चित हुआ और उसमें पूर्वपक्ष स्वामीजीका था। अतः स्वामीजीने वेदोंका स्वाध्याय प्रारम्भ कर दिया तथा खण्डन-मण्डनमें जितना साहित्य प्राप्त होसका आपने उसका अनुशीलन कर आर्यजगत्के माननीय विद्वानोंके समक्ष वेदसम्बन्धी कुछ प्रश्न उपस्थित किये जिनका उत्तर उनसे सन्तोषजनक नहीं दिया जासका। स्वामीजी ने स्वयं 'वैदिक ऋषिवाद' नामक पुस्तकके आदिमें प्रकाशित आत्म-कथामें लिखा है कि 'सच तो यह है कि मेरे मनमें उसी समय यह सन्देह होगया था कि वेद ईश्वरीय ज्ञान नहीं है'।

एक समय की बात है कि स्वा० दर्शनानन्दजी देहली पधारे हुए थे। स्वामीजीका इनके साथ पूर्व परिचय था ही। आप उनसे मिलनेके लिये गये और उनको अस्वस्थ देखकर उनकी परिचर्यामें लग गये। उस समय स्वामीकी दशा शोचनीय थी। अतः आप प्रतिदिन स्वामी जीकी सेवा करनेके लिये जाने लगे।

एक दिन स्वा० दर्शनानन्दजीको अत्यन्त चिन्ताग्रस्त देखकर आपने पूछा कि स्वामीजी, आप इतने चिन्तित क्यों हैं? कई बार निरन्तर प्रश्न करनेपर स्वामीजीने कहा कि 'अब मेरे शरीरका अन्त होरहा है और आर्यसमाजमें अन्य कोई ऐसा विद्वान् इस समय नहीं है जो जैनियोंके साथ शास्त्रार्थ कर सके। अत: मुझे इस बातका ध्यान आगया कि अब आर्यसमाजकी क्या दशा होगी!' उस समय स्वामीजीने कहा कि स्वामीजी, 'चिन्ताकी क्या बात है। आर्यसमाज मे बड़े बड़े विद्वान् हैं वे इस कार्यको बड़ी सफलताके साथ कर सकेंगे।'

इसके अनन्तर पुनः स्वामी दर्शनानन्दजी बोले कि 'जैनियोंके साथ अजमेरमें होनेवाले शास्त्रार्थमें पं० गोपालदासजीकी युक्तियाँ बड़ी प्रबल थीं। मुझे दिखाई देरहा है कि भविष्य में उनकी युक्तियोंका खण्डन करनेवाला समाजमें कोई भी नहीं है'।

स्वामीजीके हृदयपर इस बातका बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। जिसके कारण आपने अपने मनमें यह दृढ निश्चय किया कि मैं इस कमीको अवश्यमेव पूरा करूंगा। अतएव सब व्यापार बन्द करके आप संस्कृत पढ़नेकेलिये बनारस चले गये।

वहाँ जैनदर्शनोंके साथ साथ आप संस्कृतका अध्ययन करने लगे। किन्तु आर्य विद्यार्थी होनेके कारण आपके विद्याध्ययनमें एक बड़ी भारी बाधा आ उपस्थित हुई। जिसके कारण आपको काशी छोड़नी पड़ी। वहाँसे चलकर बनारस और जौनपुर के बीच में एक ग्राम है, उसमें पं० पातञ्जलिकी अपनी एक पाठशाला थी। स्वामीजी पण्डितजीसे विद्याध्ययन करने लगे। पण्डितजी बड़े उदार और सहृदय पुरुष थे। अतः वहाँ आपका अध्ययन बड़े प्रेम, संतोषके साथ सम्पन्न हुआ।

इस प्रकार स्वामीजी अन्य स्थानोंपर पढ़ते-पढ़ाते सन् १६१८ में भिवानी लौट आये और यहां आकर आपने कपड़ेकी दुकान करली। परन्तु उन्हीं दिनों भिवानीमें जैन साधुओंका चतुर्मास हो रहा था। स्वामीजीने उनके साथ वाद-विवाद करना शुरू कर दिया। यह विवाद नित्य बढ़ता ही गया और अन्तमें इस विवादने एक बृहद् रूप धारण कर लिया।

तत्पश्चात् स्वामीजीको दुकान छोड़कर रातदिन जैन ग्रंथोंके स्वाध्यायमें लगना पड़ा। जो कुछ आपके पास पूंजी थी वह भी जैनग्रंथोंके खरीदनेमें व्यय करली। अतः एक हजार रुपयेका नुकसान देकर दुकान छोड़नी पड़ी। उन्हीं दिनों कांग्रेसका आन्दोलन भी चालू होगया था।

स्वामीजीने उसमें कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। सन् १९२१ के शुरूमें ही आपने पहले हिसार और फिर अम्बालेकी जेलयात्रा की। जेलसे छूटनेके बाद आप कलकत्तेमे बोरोंकी दलालीका कार्य करने लगे तथा दलालीके साथ साथ आर्यसमाजकी सेवा भी। कलकत्तेके भिन्न भिन्न स्थानोंमें तथा कभी कभी बाहर जाकर व्याख्यान देना, शास्त्रार्थ करना आपका एक उद्देश्य बन गया।

एक बार आपने हिन्दू सभा के मन्त्री पदका भार ग्रहण कर हबडे मे होनेवाले दंगेमें जो जनताकी सेवा की थी, वास्तवमें वह प्रशंसनीय थी। अतः उस सेवाको उस समयके समाचार पत्रों (स्वतन्त्र आदि) के मुख पृष्ठपर मोटे अक्षरोंमें प्रकाशित किया गया था।

तदनन्तर स्वामीजीको मारवाडी अग्रवाल महासभाकी वैतनिक सेवा करनेका अवसर प्राप्त हुआ इसके प्रचारके लिये आपने भारतवर्षके प्रायः सभी प्रान्तोंका भ्रमण किया। जहाँ भी आप अग्रवाल महासभा के प्रचारार्थ जाते वहापर आर्यसमाजका प्रचार अवश्य करते। अत एव महासभाके मन्त्रीने आपके कार्यसे असन्तुष्ट होकर इन्हें पत्र लिखा कि आप अन्य साम्प्रदायिक कार्योंमें भाग न लिया करें। इतना कहने पर स्वामीजीने महासभा कार्य छोड दिया।

पुन स्वामीजीने भटिण्डेके गुरुकुलमें कुछ समय विद्यादान किया और फिर कुछ दिनों बाद महासभाका कार्य करनेके लिए आपको बंबई बुला लिया गया। इसी बीचमें आपको धर्मपत्नीका स्वर्गवास होगया। बंबईके महोत्सवके पश्चात् महासभाके अधिकारियोंने फिर वही (पूर्वोक्त) प्रश्न उठाया, तब स्वामीजीने स्पष्ट कह दिया कि मैं आर्यसमाजका प्रचार तो अवश्य ही करूँगा। इतनेपर भी महासभाने आपको पृथक् नहीं किया। स्वामीजी सभाका कार्य तद्वत् करते रहे। किन्तु इनके मन में सहसा वैराग्यभाव उत्पन्न होगया। फलत आप सन्यासी बन गये।

सन्यास ग्रहण करनेके उपरान्त आपने पुञ्छ तथा काश्मीर आदि

स्थानोंमें प्रचार-कार्य और सिन्ध आदिमें शास्त्रार्थ किये । इसी प्रकार स्थान स्थानपर अनेक प्रान्तोंमें भ्रमणकर आर्यसमाजका भारी प्रचार करने लगे।

अन्तमें स्वामीजीने अपना मुख्य स्थान पानीपत बना लिया और वहाँसे आवश्यकता पड़नेपर शास्त्रार्थके लिये आपको बुलाया जाने लगा। प्रान्तों के समान सम्प्रदाय भी ऐसा कोई न होगा जिसके साथ आर्यसमाजकी ओरसे स्वामीजीने शास्त्रार्थ न किया हो।

जैनियोंके साथ जितने शास्त्रार्थ हुए उनमें प्रमुख भाग स्वामीजी का ही रहता था। इस प्रकार आपने आर्यसमाजकी सेवा एवं प्रचार करनेमें किसी भी प्रकारकी कमी उठा न रक्खी थी।

विचार-परिवर्तन

स्वयं स्वामीजी अपनी आत्मकथामें लिखते हैं कि 'एक तो मुझे प्रारम्भिक जीवनसे ही वेदोंके ईश्वरीय ज्ञान होनेमें शंका थी दूसरे जब मैंने इस विषयपर आर्यसमाजकी ओरसे शास्त्रार्थ किये तब और भी आक्षेप मेरे सामने आये और मैं उनका समाधान न कर सका। अपने सहयोगियोंसे परामर्श किया तो वे इस विषयमें और भी अधिक असफल प्रमाणित हुये तथा वर्तमान समयके समस्त सामाजिक वेदभाष्योंने मेरी शंकाको अत्यन्त बलिष्ट बना दिया।'

तथा च—आगे वहीं आप लिखते हैं कि 'मेरे अनेक सहयोगी बंधु तो वेदोंके ईश्वरीय ज्ञानमें मुझसे भी अधिक शङ्कित निकले। इस ही समय मुझे जैनियोंकी पुस्तकोंके उत्तर भी लिखने पड़ते थे। मैं पं० अजितकुमार जैन शास्त्रीकी 'गप्पाष्टक' पुस्तकका उत्तर लिख रहा था। उत्तर तो मैं लिख गया किन्तु 'आदि सृष्टि हुई और उसमें जवान मनुष्य उत्पन्न हुए, इस प्रश्नने मेरे मस्तिष्कमें चक्कर लगाना शुरू कर दिया। जहां तक हो सका मैंने सोचा, किन्तु फिर भी मैं सफल न हो

सका। एक तो उस समय तिब्बतकी सत्ता ही सिद्ध नहीं होती, क्योंकि इसका जन्मकाल सहस्रों वर्षका है। दूसरे जवान मनुष्योंकी उत्पत्ति भी तर्क विरुद्ध प्रतीत होती है।'

'इसके बाद जब मैंने भाषाविज्ञान व महाप्रलय आदिपर विचार किया तब तो उस प्रश्नको और अधिक बल मिल गया' तथाच— परमात्माका स्वभाव बनाने, रक्षा करने और प्रलय करनेका प्रतिसमय रहता है, फिर यह कैसे सम्भव है कि ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष तक प्रलय ही बनी रहे। इसके अतिरिक्त और भी ऐसी अनेक बातें हैं जिन्होंने मेरे विश्वासको जगत्कर्तृत्वसे हटा दिया।'

जैनियोंके साथ शास्त्रार्थ होनेसे स्वामीजीको उनके शास्त्रार्थ सुनने का अवसर मिला। ज्यों ज्यों आपने जैन पुराणोंके स्वाध्यायके पश्चात् जैन दर्शनोंका अनुशीलन किया त्यों त्यों आपके हृदयमें उसके तर्कने अपना स्थान कर लिया। अन्तमें आपको स्याद्वादका भक्त बनना पड़ा।

मुलतानमें होनेवाले शास्त्रार्थमें स्वामीजीने आर्यसमाजके प्लेटफार्ममें स्याद्वादकी भूरि भूरि प्रशंसा की थी। इस प्रकार शनै शनैः स्याद्वादके भक्त होनेपर जैनदर्शनने आपके हृदयपर पूर्ण अधिकार जमा लिया। तत्पश्चात् जब स्वामीजीने कर्म तथा उसके वास्तविक स्वरूप को समझा तब तो आपका विश्वास आर्यसमाज के स्थान पर जैनदर्शन जम गया।

स्वयं स्वामीजीने आत्मकथामें लिखा है कि 'मैं जैनदर्शनका भक्त बना, किन्तु फिरभी इसकी घोषणा न कर सका। मैंने अनेकबार इस प्रश्नपर विचार किया और अन्तमें मैं इस परिणामपर पहुंचा कि अब मुझे अपने विश्वासके अनुसारही कार्य करना चाहिए।'

'ऐसा करनेमें झंझट थे—एक ओर आर्यसमाजमें बढ़ी हुई प्रतिष्ठा तो दूसरी ओर अनेक प्रतिष्ठित बन्धुओंका स्नेह। मैं इनको कैसे छोड़ूं, यह ध्यान बार २ मनमें आता था। किन्तु समय समयपर

भीतरसे यही ध्वनि निकलती थी कि (अपने विश्वासके लिए सब कुछ छोड़ो)। अतः मैंने इन सब बातोंके त्यागका दृढ संकल्प किया और अपना बिस्तर बांधकर अम्बालेको प्रस्थान किया। वहाँ जाकर 'शास्त्रार्थ संघ कार्यालय' में अपने चिरपरिचित मित्र पं० राजेन्द्रकुमार जीसे भेंट की। तथा अपने विचार उनके सामने स्पष्ट स्पष्ट कह दिये। उन्होंने मेरा स्वागत किया। इस प्रकार मैंने एक धर्मसे सम्बन्धविच्छेद करके दूसरे धर्मको स्वीकार किया।

स्वामीजीके जीवनका परिवर्तनमय यह संक्षिप्त परिचय है। आज कल आप जैनसमाजके परमपूज्य 'क्षुल्लक' पदपर प्रतिष्ठित हैं। आपका त्याग एक महत्वपूर्ण त्याग है। आप नगरों तथा ग्रामोंमें भ्रमण कर उपदेशामृतवृष्टिसे जनताका कल्याण कर रहे हैं।

भद्र आश्रम
सहारनपुर
१-९-'२१

जिनेन्द्रदास जैन

लेखककी ओर से—

सबकी आलोचना की जावे तो एक विशालकाय ग्रन्थका निर्माण करना होगा। इसलिए हम यहाँ इस विषयका स्वाभाविक व वेदादिशास्त्रानुसार युक्त्यादिसे अबाधित विवेचन करनेका प्रयत्न कर रहे हैं।

सर्व प्रथम हम स्वयं वेदकी इस विषयमें क्या सम्मति है इसीपर प्रकाश डालते हैं।

—निजानन्द क्षुल्लक

वेदाविर्भाव

* श्रीः *

वेदोंके ध्यानपूर्वक अध्ययनसे यह भलीभाँति ज्ञात होजाता है कि वेद न तो नित्य हैं और न अपौरुषेय, अपितु अनेक ऋषियोंकी समय-समयपर बनाई हुई कविताओंका संग्रह है। इस विषयमें सर्वप्रथम हम प्रमाणरूपमें मूलसंहिताओंके मन्त्र ही उपस्थित करते हैं।

१—सनायते गोतमइन्द्रनव्यमतक्षद्ब्रह्म।

(ऋ० १।६३।१३)

सायणभाष्य—गोतमस्य ऋषेः पुत्रो नोधा ऋषिः नव्यं नूतनं ब्रह्म एतत् सूक्तरूप स्तोत्रं नोऽस्मदर्थमतक्षत् अकरोत्।

अर्थ—हे इन्द्र ! गोतम ऋषिके नोधानामक पुत्रने हमारे लिये तुम्हारा यह नया सूक्त बनाया है।

२—इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव संमहेमामनीषया।

(ऋ० १।९४।१)

सायणभाष्य—इमम् एतत्सूक्तरूपं स्तोमं स्तोत्रं रथमिव यथा तक्षा-रथ संस्करोति तथा संमहेम सम्यक्पूजितं कुर्मः।

अर्थ—इस स्तोत्रको बुद्धिसे हम इस प्रकार बनाते हैं, जिस प्रकार बढ़ई रथको बनाता है।

३—इमां ते धियं प्रभरे महोमहीमस्य स्तोत्रे धिषणायत्त आनजे।

(ऋ० १।१०२।१)

सायणभाष्य—हे इन्द्र! महोमहतस्ते, तव इमाम् इदानीं क्रियमाणां महीं महतीम्, अत्यन्तोत्कृष्टां धियं स्तुतिं प्रभरे प्रकर्षेण सपादयामि।

अर्थ—हे इन्द्र! मैं तुम्हारेलिये अत्यन्त उत्कृष्ट स्तोत्र (सूक्त) रूपा स्तुतिका निर्माण करता हूँ।

४—युवभ्यामिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम्।

(ऋ० १।१०९।२)

सायणभाष्य—हे इन्द्राग्नी! युवभ्यां युवाभ्याम् नव्य नवतरं प्रत्यग्रम् स्तोमं स्तोत्र जनयामि, निष्पादयामि।

अर्थ—हे इन्द्राग्नी! तुम्हारेलिये यह नवीन स्तोत्र (सूक्त) बनाता हूँ।

५—नासत्याभ्यां बर्हिरिव प्रवृञ्जे स्तोमाँ इयर्म्यभ्रियेव वातः।

(ऋ० १।११६।१)

सायणभाष्य—अहं नासत्याभ्याम्, अश्विभ्यां स्तोमान्, स्तुतीः, इयर्मि सपादयामि।

अर्थ—मैं अश्विनीकुमारोंकेलिये स्तोम (सूक्त) स्तोत्रका सम्पादन करता हूँ।

६—ब्रह्म कृण्वन्तो वृषणा युवभ्याम्।

(ऋ० १।११७।२५)

सायणभाष्य—हे वृषणा ! कामाभिवर्षकावाश्विनौ युवाभ्यां ब्रह्म मन्त्रात्मकं स्तोत्रं कृण्वन्तः, कुर्वन्तः ।

अर्थ—हे अश्विनीकुमारो ! हम तुम्हारेलिये मन्त्र (सूक्त) रूप स्तोत्रकी रचना करते हुए वीरपुत्रादिसे युक्त होकर यज्ञ सम्पन्न करते हैं ।

७—एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।

(ऋ० १।१६६।१५)

सायणभाष्य—हे मरुतः ! एषः स्तोमः, इदानीं कृतं स्तोत्रं वः युष्माकं युष्मदर्थमित्यर्थः ।

अर्थ—हे मरुद्गण ! इसी समय तैयार किया गया यह स्तोत्र आपकेलिये है । (यह मन्त्र आगे सूक्त १६७-१६८में भी आया है)

८—अमन्दान्स्तोमान् प्रभरे मनीषा सिन्धावधिक्षियतो भाव्यस्य ।

(ऋ० १।१२६।१)

सायणभाष्य—सिन्धौ, सिन्धुदेशे ... स्तोमान्-स्तोत्राणि, तन्निष्ठ बहुविधदानादीनां कीर्तनानि मनीषातिशयबुद्ध्या प्रभरे, विशेषेण संपादयामि ।

अर्थ—सिन्धु-निवासी भाव्यके पुत्र स्वनयकेलिये अपनी बुद्धिसे बहुसंख्यक स्तोत्र-(मन्त्रात्मसूक्त) बनाता हूँ ।

९—सनो नव्येभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः पुरांदर्तः पायुभिः पाहि शग्मैः

(ऋ० १।१३०।१०)

सायणभाष्य—हे इन्द्र ! नोऽस्मत्संबन्धिभिः नव्येभिः, नूतनैः उक्थैः इदानीं प्रतिपादितप्रकारैः स्तोत्रैस्तुष्टः सन् पायुभिः पालनप्रकारैः शग्मैः सुखैश्चैहिकामुष्मिकरूपैः पाहि पालय ।

अर्थ—हे इन्द्र ! हमारे इन नये रचेहुए मंत्रोसे संतुष्ट होकर विविध प्रकारकी रक्षा और सुख देतेहुए हमे प्रतिपालित करो। हम दिवोदासके गोत्रज हैं।

१०—इमं स्वस्मै हृद आसुतष्टं मंत्रंवोचेम कुविदस्यवेदत्। (ऋ० २।३५।२)

सायणभाष्य—असौ अपान्नपात् संज्ञकाय देवाय हृदोहृदयात् सुतष्टं सुष्ठुनिर्मितम, इम मन्त्रं सुष्ठु आभिमुख्येन वोचेम ब्रवाम, अस्य, अस्माभिरुक्तमिमं मन्त्रं कुवित् वेदत् वहुलं जानातु।

अर्थ—उनकेलिए हम सुनिर्मित मंत्र उच्चारण करेंगे, वे उसे भलीभाँति जानें।

११—एष वां स्तोमो अश्विनावकारि'''। (ऋ० १।१८४।५)

सायणभाष्य—हे अश्विनौ वाम्-युवाभ्याम्, एष स्तोमः स्तोत्रम् अकारि, कृतः।

अर्थ—हे अश्विनीकुमारो ! हमने तुम्हारेलिये पापविनाशी यह स्तोत्र बनाया है।

१२—तदस्मै नव्यमङ्गिरस्वदर्चत शुष्माय दस्य प्रत्नथोदीरते। (ऋ० २।१७।१)

सायणभाष्य—हे स्तोतारः ! नव्यं नवतरमन्येष्वदृष्टपूर्वं तत्तादृशं स्तोत्रमङ्गिरस्वत् अङ्गिरस इवास्मै-इन्द्रायार्चत।

अर्थ—हे स्तोताओ ! तुम लोग अंगिरा लोगोंकी तरह इस अदृष्टपूर्व नवीन स्तोत्र (सूक्तों) द्वारा इन्द्रकी उपासना करो।

१३—हरी नुकं रथ इन्द्रस्य योजमायै सूक्तेन वचसा नवेन। (ऋ० २।१८।३)

सायणभाष्य—इन्द्रस्य सम्बन्धिनि रथे हरी एतन्नामकावश्वौ।तुविप्रं कं सुखेन आयै गमनाय नवेन अन्यैरकृतपूर्वेण वचसा वेदात्मकेन सूक्तेन योजं युनज्मि।

अर्थ—इन्द्रके (रथमें अकृतपूर्व (नवीनतम) वेदात्मकसूक्तके द्वारा) शीघ्र जानेकेलिये हरिनामक अश्वोको जोड़ता हूँ।

१४—एवाते गृत्समदाः शूरमन्मावस्यवो नवयुनानि तक्षुः।

(ऋ० २।१९।८)

सायणभाष्य—हे इन्द्र! गृत्समदाः, मन्म मननीयं स्तोत्रम्, ते एव तुभ्यमेव तक्षुः, चक्रुः।

अर्थ—हे इन्द्र! गृत्समदगणने तुम्हारेलिये यह नया मन्त्रात्मक सूक्त रचा है।

१५—एतानि वा माश्विना वर्धनानि ब्रह्म स्तोमं गृत्समदासो अक्रन्।

(ऋ० २।३९।८)

सायणभाष्य—हे अश्विना, अश्विनौ वां युवयोरेतानि वर्धनानि वृद्धिसाधनानि ब्रह्म ब्रह्माणि मन्त्रान् स्तोम स्तोत्रञ्च, गृत्समदासो गृत्समदा अक्रन्-अकुर्वन्।

अर्थ—हे अश्विद्वय! गृत्समद ऋषिने तुम्हारी उन्नतिकेलिये ये सर्व सूक्त और मंत्र बनाये हैं।

१६—इममूषुत्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यासम् अग्ने देवेषु प्रवोचः।

(ऋ० १।२७।४)

सायणभाष्य—हे अग्ने! त्वमस्माकमस्मत्सम्बन्धिनम्, इममूषु पुरोदेशेनुष्ठीयमानमपि सनिं हविर्दानं नव्यास नवतरं गायत्र स्तुतिरूपं वचोऽपि देवेषु देवानामग्रे प्रवोचः, प्रब्रूहि।

अर्थ—हे अग्नि ! तुम हमारे इस हव्यकी बात और इस अभिनव विरचित स्तोत्र (सूक्त) की बात देवोंसे कहना ।

१७—स्वयंवोमतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्रायवाहः कुशिकासो अक्रन् ।

(ऋ० ३।३०।२०)

सायणभाष्य—हे इन्द्र ! कुशिकासः कुशिकाः, मतिभिर्मननीयै र्मन्त्रैः वाहः स्तोत्रमिन्द्राय तुभ्यमक्रन्नकार्षुः

अर्थ—हे इन्द्र ! स्वर्गादिसुखाभिलाषी कुशिक पुत्रोंने तुम्हारे लिये मन्त्रसहित स्तोत्र बनाया है ।

१८—ब्रह्मकृता मारुतेनागणेन सजोषारुद्रैस्तृपदावृपस्व ।

(ऋ० ३।३२।२)

सायणभाष्य—हे इन्द्र ! ब्रह्मकृता ब्रह्मस्तोत्र करोतीति ब्रह्मकृत्, इन्द्रविषयस्तोत्र कुर्वाणेनमारुतेन गणेन रुद्रैरेकादश-संख्याकै रुद्रैश्च सजोषाः सगमस्त्व तृपत् सोमपानेन तृप्यन् आवृपस्व तमिमं सोमं सर्वतो जठरे सिञ्च धारय ।

अर्थ—मन्त्रनिर्माता मरुतो और रुद्रोंके साथ जब तक तृप्ति न हो तब तक हे इन्द्र ! तुम सोम पान करो ।

१९—एतद्वचो जरितर्मापिमृष्ठा आयत्ते घोषानुत्तरायुगानि ।
उक्थेषु कारो प्रतिनोजुपस्व मानो निकः पुरुषत्रा नमस्ते ॥

(ऋ० ३।३३।८)

२०—ओषु स्वसारः कारवे शृणोत ।

(ऋ० ३।३३।९)

२१—आते कारो शृणवामा वचांसि ।

(ऋ० ३।३३।१०)

सायणभाष्य—हे विश्वामित्र ! ते त्वदीयं यत्संवादात्मकं वचस्त्वं

नोऽभीत्या घोषानुद्घोषयन् वर्तसे, एतद्वचो मापि-
मृष्ण माविस्मार्षीः, उत्तरायुगानि-उत्तरेषु याज्ञिकेषु
युगेष्वहःसु-उक्थेषु कारो शस्त्राणां कर्त्तस्त्व नोऽस्मान्
प्रतिजुषस्व, संवादात्मकेन तेन वाक्येन प्रतिसेवस्व,
इदानीं नोऽस्मान् पुरुषत्रा पुरुषेषु मानिकः, उक्तिः
प्रत्युक्तिरूपसंवादवाक्यार्थ्यापनेन नितरां पुवत्
प्रागल्भ्यं माकार्षीः, ते तुभ्य नमः । ८
कारवे स्तोत्र कुर्वाणस्य मम विश्वामित्रस्य वचनं
सुष्ठु श्रो शृणोत शृणुत । ९
कारो स्तोत्रं कुर्वाण हे विश्वामित्र ! ते तव वचांसि,
इमानि वाक्यानि आशृणवाम कात्स्न्येंन शृणुम । १०

अर्थ—इस सूक्तमें कविने आलंकारिकरूपसे दो नदियों विपाशा, (व्यास) और शुतुद्री (सतलज) का विश्वामित्रसे वार्तालाप कराया है। यहाँपर विश्वामित्र नदियोंसे पार जानेकेलिए नदियोंके तीरपर बैठकर नदियोकी स्तुति कर रहे हैं । मंत्र ८ में दोनो नदियाँ विश्वामित्रसे कहती हैं, कि हे मन्त्रनिर्माता विश्वामित्र ! यह जो तुम प्रतिज्ञा करते हो उसे नहीं भूलना । भविष्यत यज्ञ समयमें मंत्र रचना करके तुम हमारी सेवा करो ! हम दोनों नदियाँ तुम्हें नमस्कार करती हैं । हमें पुरुषकी तरह वाचाल मत बनाना । आगे विश्वामित्र कहते हैं कि मैं मन्त्र निर्माता विश्वामित्र हे भगिनी-भूत नदीद्वय ! तुम्हारी स्तुति करता हूँ, सुनो, मैं दूर देशसे रथ और अश्व लेकर आया हूँ । तुम निम्नस्थ बनो जिससे मैं पार हो जाऊँ । दोनो नदियोंने उत्तर दिया कि, हे मन्त्रनिर्माता विश्वामित्र ! हमने तुम्हारी स्तुति सुनी । हम अवनत होती हैं, तुम पार होजाओ। इससे स्पष्ट है कि इन मन्त्रोंके रचयिता विश्वामित्र हैं और यज्ञादिमें भी मन्त्रोंका निर्माण होता था, जिसका वर्णन विशेषरूपसे आगे करेंगे ।

२२–विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम् ।
(ऋ० ३।५३।१२)

सायणभाष्य—हे कुशिकाः ! योऽहं विश्वामित्र-इन्द्रमतुष्टव स्तावयामि, द्यावापृथिभ्या मिन्द्रस्य स्तोत्रं मया कारितमित्यर्थः । यद्वा स्तोम कुर्वाणस्य विश्वामित्रस्य ममेदमिन्द्रविषय ब्रह्मस्तोत्रं भारत भरतकुलं जनं रक्षति पालयति ।

अर्थ—हे कुशिकपुत्रो ! हम (विश्वामित्र) ने द्यावापृथिवी द्वारा इन्द्रका स्तवन किया है, मुझ विश्वामित्रका रचा हुआ यह मत्रात्मक स्तोत्र भरत कुलके मनुष्योंकी रक्षा करे ।

२३–विश्वामित्रा अरासत ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।
करदिन्नः सुराधसः ॥
ऋ० ३।५३।१३)

सायणभाष्य—विश्वामित्राः, वज्रिणे वज्रहस्तायेन्द्राय ब्रह्मस्तोत्र मरासत अकुर्वत, स्तुतः स इन्द्र नोऽस्मान् सुराधसः शोभनधनोपेतान् करदित् करोत्येव ।

अर्थ—विश्वामित्रके वंशजोंने वज्रधर इन्द्रकेलिये यह स्तोत्र (मन्त्र-समूह) बनाया है। इन्द्र हम लोगोंको शोभनीय धनसे युक्त करता ही है।

२४–इयं ते पुषन्नाघृणेसुष्टुतिर्देव नव्यसी ।
(ऋ० ३।६२।७)

सायणभाष्य—आघृणे दीप्तिमन् हे पूषन्देव नव्यसी नवतरी इयं सुष्टुतिः शोभनास्तुतिरूपा वाक् ते त्वत्सबन्धिनी भवति ।

अर्थ—हे पूषन् देव यह नवीनतम स्तोत्र (सूक्त) अर्थात् स्तुतिरूप वचन तुम्हारे लिये है ।

२५—महोरुजामिबन्धुता वचोभिस्तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय।
(ऋ० ४।४।११)

सायणभाष्य—हे अग्ने ! वचोभिस्त्वदुद्देशेन कृतैः स्तोत्रैः समुपजाता येयं बन्धुता बन्धुभावः, तया महो महतो राक्षसान्‌ जामि भनज्मि।

अर्थ—हे होता ! प्रज्ञावान्‌ अग्नि ! तुम्हारे उद्देश्यसे रचे गये स्तोत्रोंद्वारा जो बन्धुता उत्पन्न हुई है उसकेद्वारा हम राक्षसोंका नाश करें।

२६—अकारि ब्रह्म समिधान तुभ्यं शंसात्युक्थं यजते व्यू धाः।
(ऋ० ४।६।११)

सायणभाष्य—हे समिधान समिध्यमानाग्ने ! तुभ्यं त्वदर्थं ब्रह्म स्तोत्रम अकारि-अस्माभिः कृतम्‌।

अर्थ—ऋग्वेदका यह सम्पूर्ण चतुर्थमण्डल वामदेव और उनके वंशजोंद्वारा रचा गया है। इस मन्त्रमें वामदेव ऋषि कहते हैं कि—हे समिध्यमान अग्नि ! तुम्हारेलिये हमने यह नूतन स्तोत्र (मंत्रसमूह) बनाया है। होता, उक्थ (शस्त्ररूप) मंत्रोंका उच्चारण करते हैं।

२७—एवेदिन्द्राय वृषभाय ब्रह्म कर्मभृगवो न रथम्‌।
(ऋ० ४।१६।२०)

२८—अकारि ते हरि वो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्य सदासा।
(ऋ० ४।१६।२१)

सायणभाष्य—एवमिन्द्राय वृषभाय कामानां वर्षित्रे वृष्णे—नित्य तरुणाय ब्रह्मस्तोत्रमकर्म अकुर्म। २०

हे इन्द्र! हरि वः हरिवन् हरिसञ्ज्ञकाश्वोपेतेन्द्र तु तुभ्यं नव्यं नवतरं ब्रह्मस्तोत्रमकारि, अस्माभिः क्रियते, रथ्यो रथवन्तो वय धिया

प्रज्ञारूपया स्तुत्या सदासास्त्वां सर्वदा भजमानाः, त्वदर्थं हवीरूप-स्यान्नस्य दातारो वा स्याम भूयास्म। २१

अर्थ—रथनिर्माता कारीगर जिस प्रकार रथका निर्माण करते हैं उसी प्रकार हम लोग भी अभीष्टवर्षी तथा नित्य तरुण इन्द्रके लिये स्तोत्र (मंत्र समूह) की रचना करते हैं।

अर्थ—हे इन्द्र! हम तुम्हारे उद्देश्यसे नवीनतम सूक्तकी रचना करते हैं। इस मण्डलमे वामदेव ऋषिने इसी प्रकार अनेक स्थानों में अपने नवीतम मन्त्र बनानेका उल्लेख किया है।

२९–एतं ते स्तोमं तुविजात विप्रो रथं नधीरःस्वपा अतक्षम्।

(ऋ० ५।२।११)

सायणभाष्य—हे तुविजात बहुभावमापन्नाग्ने। ते त्वदर्थमेतं स्तोमम्, एतत्स्तोत्र विप्रो मेधावो स्तोता रथ न रथमिव धीरः स्वपाः शोभनकर्माहम्, अतक्षं संपादयम्।

अर्थ—अत्रिपुत्र कुमार ऋषि कहते हैं कि—हे बहुभावप्राप्त अग्नि, हम तुम्हारे स्तोता हैं। धीर और कर्मकुशल व्यक्ति जिस प्रकार रथ बनाते हैं, उसी प्रकार हम तुम्हारे लिये इस स्तोत्रका निर्माण करते हैं।

३०–इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणाजुपस्य याते शविष्ठ नव्या अकर्म।
वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथं न धीरःस्वपा अतक्षम्॥

(ऋ० ५।२९।१५)

सायणभाष्य—हे शविष्ठ बलवत्त शूरतमेन्द्र ते तुभ्यं या यानि स्तोत्राणि नव्या नूतना अद्यतना वयमकर्म अकुर्म, हे इन्द्र। त्व क्रियमाणा अस्माभिः क्रियमाणानि ब्रह्म ब्रह्माणि तानि स्तोत्राणि जुपस्व सेवस्व। धीरो धीमान् स्वपाः शोभनकर्मा वसूयुर्धनकामोऽहं वस्त्रेव

वस्त्राणीव भद्रा भद्राणि भजनीयानि सुकृता सुष्ठु-
कृतानि स्तोत्राणि रथं न रथमिव अतक्षम्-अकरवम्।

अर्थ—शक्तिगोत्रोत्पन्न गौरीवीति ऋषि कहते हैं कि हे अतिशय बलवान् इन्द्र! हम लोगोंने आज तुम्हारेलिये जिन नूतन स्तोत्रों (स्तुतिरूप मन्त्रसमूह) को बताया है। हम लोगोंद्वारा विरचित उन सकल स्तोत्रोंको तुम ग्रहण करो।

३१—अस्मा इत् काव्यं वच उक्थमिन्द्राय शंस्यम्। तस्मा उब्रह्म वाहसे गिरो वर्धन्त्यत्रयोगिरः शुम्भन्त्यत्रयः॥

(ऋ० ५।३९।५)

सायणभाष्य—अस्मा इत् अस्मा एवेन्द्राय काव्यं कवेः स्तोतुः सम्बन्धिवचो वाग्रूपमुक्थं शस्त्रं शंस्य शंसनीयं तस्मा उ तस्मै इन्द्रायैव ब्रह्मवाहसे परिवृढस्य स्तोत्रस्य वाहकाय गिरः स्तुतीरत्रयोऽत्रिगोत्रा वर्धन्ति वर्धयन्ति। अत्रयो गिरः शुम्भन्ति, दीपयन्ति।

अर्थ—आत्रेय ऋषि कहते हैं कि इन्द्रकेलिये ही यह मेरा काव्य और उक्थ (मन्त्र) उच्चरित हुआ है। वे स्तोत्रवाहक हैं। हम अत्रिपुत्र उनके समीप ही मन्त्रोंका उच्चारण करते हैं।

३२—गूढं सूर्यं तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणा विन्ददत्रिः।

(ऋ० ५।४०।६)

सायणभाष्य—गूढं सूर्यम्—अन्धकारस्यावरणरूपत्वादपव्रतत्वं तथाविधं तुरीयेण ब्रह्मणा मंत्रेणात्रिरविन्दत् लब्धवान्।

अर्थ—अन्धकारद्वारा समाच्छन्न सूर्यको अत्रि ऋषिने चार ऋचाओंद्वारा प्रकाशित किया था।

३३–उतवादिवो असुराय मन्म प्रान्धांसीव यज्यवे भरध्वम् ।

(ऋ० ।५।४१।३)

सायणभाष्य—उतवा किञ्च, दिवो द्युलोकसंबन्धिने, असुराय, प्राणदात्रे सूर्याय वायवे वा यज्यवे यागसाधकाय मन्म मननीयं स्तोत्रं प्रभरध्व सपादयत । हे ऋत्विजः, अन्धांसीव अन्नानि हविर्लक्षणानि हवींपि स्तोत्रञ्चेत्यर्थः ।

अर्थ—अत्रिके पुत्र भौम ऋषि कहते हैं कि हे ऋत्विकों, तुम लोग द्योतमान और प्राणापहारक रुद्रकेलिये स्तोत्र और हव्यका सम्पादन करो ।

३४–प्रसूमहे सु शरणाय मेधां गिरं भरे नव्यसीं जायमानाम् ।

(ऋ० ५।४२।१३)

सायणभाष्य—सु सुष्ठु प्रभरे प्रकर्षेण सम्पादयामि, महे महते सुशरणाय शोभनरक्षकायेन्द्राय मेधां मतौ धायमाना गिरं स्तुतिं कीदृशीं नव्यसीं नवतरामिदानीमुत्पद्यमानामित्यर्थः ।

अर्थ—भौम ऋषि कहते हैं कि हम लोग इन्द्रकेलिये नवीनतम स्तोत्रका सम्पादन करते हैं ।

३५–एष स्तोमो मारुतं शर्धो अच्छा······।

(ऋ० ५।४२।१५)

सायणभाष्य—एष मया सम्पादितः स्तोमः स्तोत्र मारुत शर्धो मरुतां वलम्, अच्छ अभिमुखं ·· प्राप्नोतु ।

अर्थ—भौम ऋषि कहते हैं कि धनकेलिये हमारे द्वारा विरचित यह स्तोत्र (मन्त्रसमूह) पृथ्वी, स्वर्ग, वृक्ष और औषधियोंके निकट गमन करे ।

३६—प्रशर्धाय मारुताय स्वभानव इमां वाचमनजापर्वतच्युते ।

(ऋ० ५।५४।१)

सायणभाष्य—मारुताय मरुत्सम्बन्धिने शर्धाय बलायेमां क्रियमाणां वाचं स्तुतिं प्रानञ्ज प्रापय ।

अर्थ—श्यावाश्व ऋषि कहते है कि हमारेसे क्रियमाण इस स्तोत्रको प्राप्त कराओ ।

३७—एतं मे स्तोममूर्म्ये दार्भ्याय परावह ।

(ऋ० ५।६१।१७)

सायणभाष्य—हे ऊर्म्ये ! मे ममेतं स्तोम मरुद्भ्यः कृतं स्तोत्रमहं मंत्रदृक् भूत्वा मरुत स्तुतवान् ।

अर्थ—श्यावाश्व ऋषि कहते हैं कि मरुद्गणकेलिये हमारेसे बनाये गये इस स्तोत्र (मन्त्रसमूह) को प्राप्त करो ।

३८—रातहव्यस्य सुष्टुतिं दधृक् स्तोमैर्मनामहे ।

(ऋ० ५।६६।३)

सायणभाष्य—हे मित्रावरुणौ रातहव्यस्य ऋषेः, रातहव्य ऋषिभिः सुष्टुतिं सुष्टुतिभिः शोभनस्तुतिसाधनः स्तोमैर्दधृक् युवां धर्षकौ ।

अर्थ—अत्रिअपत्य यजत ऋषि कहते हैं कि हे मित्रावरुणे ! तुम दोनों रातहव्य ऋषि-रचित इस स्तोत्रसे हम लोगोंके इस रथके सम्मुख बहुत दूर तक मार्ग-रक्षार्थ गमन करते हो ।

३९—तत्सुवामेष ते मतिरत्रिभ्यः ।

(ऋ० ५।६७।५)

सायणभाष्य—हे मित्रावरुणौ ! युवाम आईपते, अभिगच्छति, अत्रिभ्योऽत्रिगोत्रेभ्योयुसभ्यसस्मदीयामतिः, एष ते ।

अर्थ—यजत ऋषि कहते हैं कि हे मित्र व वरुण ! तुम दोनो ही स्तुतिके योग्य हो । हम लोग अल्पबुद्धि हैं । अतः हम अत्रिगोत्रमे उत्पन्न

हुए आपका स्तवन करते हैं। और हमारा यह स्तोत्र (सूक्त) आपके लिये है।

इस मन्त्र में मति शब्द मन्त्र तथा मंत्रसमूह (सूक्त) वाचक है।

४०—आमित्रे वरुणे वयं गीर्भिर्जुहुमो अत्रिवत्।

(ऋ० ५।७२।१)

सायणभाष्य—वयमात्रेया मित्रे वरुणे, मित्रावरुणयो रथाय गीर्भिर्मन्त्रैराजुहुमः, अत्रिवत् अस्मद्गोत्रप्रवर्तकोऽत्रिरिव।

अर्थ—बाहुवृक्त ऋषि कहते हैं कि हे मित्र और वरुण! अपने गोत्रप्रवर्तक अत्रिकी तरह हम लोग भी मन्त्रोंद्वारा तुम्हारा आह्वान करते हैं।

४१—युगे युगे विदथ्यं गृणद्भ्योग्नेरयि यशसं धेहि नव्यसीम्।

(ऋ० ६।८।५)

सायणभाष्य—हे अग्ने! युगे युगे काले काले विदथ्य यज्ञार्हे त्वामुद्दिश्य नव्यसीं नवतरां स्तुतिं गृणद्भ्य उच्चारयितृभ्योऽस्मभ्य रयिं धन यशस यशस्विन पुत्रञ्च धेहि कुरु।

अर्थ—भरद्वाज ऋषि कहते हैं कि हे अग्नि! तुम यागयोग्य हो, तुम्हारे उद्देश्यसे बनाये हुए इस नूतन स्तोत्रका जो उच्चारण करते हैं, उन्हें तुम धन और यशस्वी पुत्र प्रदान करो।

४२—सुवज्रमा ब्रह्म नव्यमवसे ववृत्यात्।

(ऋ० ६।१७।१३)

सायणभाष्य—हे इन्द्र! त्वां नव्यं नूतनमन्यैरकृतपूर्वं ब्रह्म, अस्माभिः कृतं स्तोत्रमवसेऽस्माकं रक्षणाय, आववृत्यात् आवर्तयतु।

अर्थ—भरद्वाज ऋषि कहते हैं कि हे वज्रधर इन्द्र! हम लोगो द्वारा रचित यह नवीन स्तोत्र है। यह नवीन स्तोत्र तुम्हें प्रेरित करे, जिससे हम लोगोंकी रक्षा हो।

४३-यत्ते अम्स्युक्थं नवीयो जनयस्व यज्ञैः।

(ऋ० ६।१८।१५)

सायणभाष्य—हे क्रत्वो ! ते त्वदीयम, अकृतम्—यत्कर्मास्ति तत् कृण्व कुरुष्व तदनन्तरं यज्ञैर्यज्ञेषु नवीयो नवतरमुक्थं स्तोत्रं जनयस्व।

अर्थ—भरद्वाज ऋषि कहते है कि हे क्रत्वो (इन्द्र) ! तुम असम्पादित कर्मोंका अनुष्ठान करो और उसके अनन्तर यज्ञमें नवीनतम स्तोत्र (मन्त्रों) को उत्पन्न करो।

इससे स्पष्ट सिद्ध है, कि यज्ञोंमें मन्त्रोंका निर्माण होता था।

४४-स तु श्रुधीन्द्रनूतनस्य ब्रह्मण्यतो वीर कारुधायः।

(ऋ० ६।२१।८)

सायणभाष्य—हे वीरेन्द्र ! स प्रसिद्धस्त्वं नूतनस्येदानीन्तनस्य ब्रह्मण्यतः ब्रह्मस्तोत्रं कर्तुमिच्छतो मम स्तोत्रं नुक्षिप्रं श्रुधि शृणु।

अर्थ—भरद्वाज ऋषि कहते हैं कि हे वीरेन्द्र ! तुम हमारे स्तोत्रको शीघ्र सुनो। हम अद्यतन (आधुनिक) स्तोत्र (मन्त्रों) के रचनेकी इच्छा करनेवाले है।

४५-इमा उत्वा पुरुतमस्यकारोर्हव्यम् वीर हव्या हवन्ते।

(ऋ० ६।२१।१)

सायणभाष्य—पुरुतमस्य बहुलं कामं कांक्षतः, कारोः स्तोतुर्भारद्वाजस्य सम्बन्धिन्यो हव्याः स्तुतयः प्रशस्या इमा धियः स्तुतयस्त्वां हवन्ते ह्वयन्ति।

अर्थ—भरद्वाज ऋषि कहते हैं कि हे इन्द्र ! भारद्वाजकी मन्त्रात्मक (प्रशंसित) स्तुतियाँ आपका आह्वान करती हैं।

४६-ब्रह्माणि हि चकृषे वर्धनानि तावत्तइन्द्रमतिभिर्विविष्मः।

(ऋ० ६।२३।६)

सायणभाष्य—हे इन्द्र ! त्व हि ब्रह्माणि स्तोत्राणि वर्धनानि स्वय-
मेव वृद्धिकराणि चकृषे कृतवानसि तस्मात्कारणात्
तावत्-तावन्ति तादृशानि स्तोत्राणि ते तुभ्यं
मतिभिर्बुद्धिभिर्वय विविष्मो व्याप्नुमः ।

अर्थ—भारद्वाज ऋषि कहते हैं कि—हे इन्द्र ! तुमने मेरे इन स्तोत्रोको स्वय वढ़ाया है, अतः हम लोग उस प्रकारके स्तोत्रोका तुम्हारेलिये बुद्धिपूर्वक विस्तार-(निर्माण) करते हैं ।

४७-तमुन पूर्वे पितरो नवग्वा॰ सप्त विप्रासो अभिवाजयन्त॰
न क्षदाभ ततुरिं पर्वतेष्ठा मद्रोघ वाच मतिभि शविष्ठम्॥
(ऋ॰ ६।२२।२)

सायणभाष्य—पूर्वे प्रत्ना नवग्वाः, नवभिर्मासै सत्रमनुष्ठितवन्तः,
सप्त सप्तसंख्याका विप्रास विप्रा मेधाविनः वाज-
यन्तः वाजमन्नं हविर्लक्षणमिन्द्रस्य कुर्वन्तः, इन्द्रं वा
वाजिनं बलिन कुर्वन्तः, एवंभूता नोऽस्माकं
पितरऽङ्गिरसः, तमु तमेवेन्द्रं मतिभिः स्तुतिभिरभि-
तुष्टुवुरिति शेषः । कीदृशं नक्षद्दाभं न क्षतिर्गतिकर्मा
अभिगच्छतां शत्रूणां दभितार हिंसितार ततुरिं
तरितार पर्वतेष्ठा पर्वतेष्ववस्थितम् अद्रोघवाचम्""।

४८-तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत्परितंसयध्यैः।
(ऋ॰ ६।२२।७)

सायणभाष्य—नव्यस्या नवतरया धिया स्तुत्या शविष्ठ बलवत्तमं
प्रत्न पुराणम्, हे इन्द्र ! त वस्त्वां प्रत्नवत् चिरन्तना
ऋषय इव परित संयध्यै परितो विस्तारयितुमह
प्रवृत्तोऽस्मि ।

अर्थ—भरद्वाज ऋषि कहते हैं कि नौ महोनेमें यज्ञ करने वाले पुरातन सप्तसख्यक मेधावी हमारे पितर अगिरा आदिने इन्द्रको

बलवान् अथवा अन्नवान् करते हुए स्तुतियों (मंत्रसमूह) द्वारा उनका स्तवन किया था। २

अर्थ—हे इन्द्र! हम उन्हीं अंगिरा आदि चिरन्तन (पुरातन) ऋषियोंकी तरह (स्वनिर्मित) नवीन स्तुतियो द्वारा तुम्हारा गौरव विस्तृत करते हैं। ७

इन मन्त्रोंसे स्पष्ट सिद्ध है कि—अंगिरा आदि सप्त ऋषियोंके वंशजोंद्वारा वेदोंका निर्माण हुआ है। वेदोंके अध्ययनसे भी यह बात स्पष्ट सिद्ध होजाती है, तथा वायुपुराण आदि आर्ष ग्रन्थोंने भी इसी बातकी पुष्टि की है। इस विषयका वर्णन, हम "ऋषिप्रकरण" मे विस्तारपूर्वक करेंगे।

४६—पुरा नूनं च स्तुतय ऋषीणां पस्पृध्र इन्द्रे अध्युक्थार्का।
(ऋ० ६।३४।१)

सायणभाष्य—पुरा पूर्वस्मिन्काले नूनमद्य च ऋषीणामतीन्द्रियार्थदर्शिनां भरद्वाजादीना स्तुतयः स्तोत्राणि इन्द्रे, अधि अधिकं पस्पृध्रे—अस्पर्धयन्तः। तथा, उक्थार्का उक्थ शस्त्रं तद्रूपाण्यर्काणि—अर्चनसाधनानि स्तोत्राणि च पस्पृध्रे।

अर्थ—शुनहोत्र ऋषि कहते हैं कि—पूर्वकालमें और इस समयमें भी ऋषियोंके स्तोत्र तथा शस्त्रात्मक मन्त्र और अर्चात्मकमन्त्र, इन्द्रकी पूजाके विषयमे परस्पर स्पर्धा करते हैं।

भाव यह है, कि इन्द्रके स्तुतिपरक मंत्र बनानेके लिये कवि लोग परस्परमे स्पर्धा करते थे। क्योंकि इन कवियोंको उस समय उत्कृष्ट कविताओंपर पारितोषिक आदि दिया जाता था। जैसा कि लिखा है—

५०—कदाभुवन्रथक्षयाणि ब्रह्म कदा स्तोत्रे सहस्रपोष्यंदाः।
कदा स्तोमं वासयोंस्य राया कदाधियः करसिवाजरत्नाः॥
(ऋ० ६।३५।१)

सायणभाष्य—हे इन्द्र! ब्रह्माणि ब्रह्माणि स्तोत्राण्यस्मदीयानि रथक्षयाणि रथनिवासानि कदा भुवन् भवेयुः। रथेवस्थितं त्वां कदा प्राप्नुवन्तीत्यर्थः। कदा कस्मिन्काले स्तोत्रे स्तुतवे मह्यं सहस्रपोष्यं सहस्रसख्याकपुरुपपोषकं गोसमूह पुत्र वादाः दद्याः। कदाच अस्य मम स्तोतुः वाजरत्नाः-वाजैरन्नैरमणीयाः करसि कुर्याः।

अर्थ—नरऋषि कहते हैं कि हे इन्द्र! रथाधिरूढ, तुम्हारे निकट हमारे स्तोत्र कब उपस्थित होगे? कब तुम, मुझ स्तोत्र करने वालेको सहस्र पुरुषोंके पोषक गोसमूह या पुत्रदान करोगे? कब तुम मुझ स्तोताके (मत्रात्मक) स्तोत्रको धनद्वारा पुरस्कृत करोगे? और कब तुम अग्निहोत्रादि कार्यको अन्नसे रमणीय करोगे?

५१—स्तुषे जनं सुव्रतं नव्यसीभिर्गीर्भिर्मित्रा वरुणा सुम्नयन्ता
(ऋ० ६।४६।१)

सायणभाष्य—सुव्रत सुकर्माण जन दैव्य जनं देवसघ नव्यसीभिर्गीर्भिः स्तुतिभिः स्तुषेऽह स्तुवे ।

अर्थ—ऋजिश्वा ऋषि कहते है कि—मैं नूतन मत्रात्मक स्तोत्रों द्वारा मित्र वरुणादि देवोंकी स्तुति करता हूँ। वे देव इस यज्ञमे आवें और हमारी मत्रात्मक स्तुतियोको सुने?

५२—अभित्यं वीरं गिर्वणसमर्चेन्द्रं ब्रह्मणा जरितर्नवेन।
(ऋ० ६।५०।६)

सायणभाष्य—हे जरितः स्तोतः। त्य त प्रसिद्ध वीर वीर्यवन्त गिर्वणस गिरां सभक्तारमेव विधमिन्द्र नवेनाभिनवेन ब्रह्मणा स्तोत्रेण अभ्यर्च अभिष्टुहि।

अर्थ—ऋजिश्वा ऋषि कहते हैं कि—स्तोता, इस नवीनतम (मंत्रसमूहात्मक) स्तोत्रद्वारा स्तुत्य इन्द्रकी स्तुति करो।

५३—अतिवायोमरुतोमन्यते नो ब्रह्मवायः क्रियमाणं ... ।

(ऋ० ६।५२।२)

सायणभाष्य—हे मरुतः। यः पुरुषो नोऽस्मानतिमन्यते अतोत्यस्व-
स्याधिक्यं मन्यते, अस्माभिः क्रियमाणं ब्रह्मस्तोत्रं
वायो निनित्सात् निन्दितुमिच्छेत्।

अर्थ—ऋजिश्वा ऋषि कहते हैं कि— हे मरुतो। जो व्यक्ति हमसे अपनेको श्रेष्ठ समझकर हमारे बनाये हुये स्तोत्रोंकी निन्दा करता है। उसकी सारी शक्तियां अनिष्टकारक हो।

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि उस समयके वैदिक कवि भी, वर्तमान कालकी तरह एक दूसरेको कविताके विषयमें निन्दा, स्तुति किया करते थे।

५४—मतीनामुपब्रह्माणि शृणुतं गिरो मे।

(ऋ० ६।६९।४)

सायणभाष्य—हे इन्द्रविष्णू। वां युवां मे मदीयानि ब्रह्माणि स्तो-
त्राणि गिरः शस्त्ररूपा वाचश्च उपशृणुतम्।

अर्थ—भरद्वाज ऋषि कहते हैं कि—हे इन्द्र, विष्णु, मेरे इन स्तोत्र (मन्त्रसमूह) और शस्त्रात्मक मंत्र भी सुनें ?

इसी सूक्तके मंत्र दोमें (या विश्वासा जनितारामतीनामिन्द्रा-विष्णू) इन्द्र और विष्णुको मंत्रोंका निर्माता बतलाया है।

५५—धेनुं नत्वासूयवसे दुदुक्षन्नुपब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठः।

(ऋ० ७।१८।४)

सायणभाष्य—हे इन्द्र ! सुयवसे सुतृणे गोष्ठे वर्तमाना धेनुं न धेनुमिव सुहविर्के यज्ञगृहे वर्तमानं त्वां दुदुक्षन् वशिष्ठः ब्रह्माणि वत्सस्थानीयानि स्तोत्राणि उपससृजे।

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि—हे इन्द्र ! बढ़िया घासवाली गोशालाकी गायकी तरह तुम्हें दूहनेकी इच्छासे मैं वसिष्ठ ऋषि वत्सस्वरूप (मंत्रसमूह) स्तोत्रको बनाता हूँ।

५६—पूर्व ऋषयो ये च नूत्ना इन्द्र ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः।

(ऋ० ७।२२।९)

सायणभाष्य—ये च पूर्वे प्राक्तनाः, ये च नूत्ना नवीनाः ऋषयः, मेधाविनः। ब्रह्माणि स्तोत्राणि जनयन्त ।

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि—हे इन्द्र, जितने प्राचीन ऋषि होगये हैं और जितने अस्मदादि नवीन हैं वे सभी तुम्हारे लिये स्तुत्यात्मक मंत्रों (स्तोत्रो) की रचना करते हैं।

५७—यो अर्चतो ब्रह्मकृति मविष्ठो ······ ।

(ऋ० ७।२८।५)

५८—ब्रह्मन् वीर ब्रह्मकृति जुषाणो ······ ।

(ऋ० ७।२९।२)

५९—यो अर्चतो ब्रह्मकृति मविष्ठो ······ ।

(ऋ० ७।२९।५)

६०—यो अर्चतो ब्रह्मकृति मविष्ठो ······ ।

(ऋ० ७।३०।५)

सायणभाष्य—यश्चेन्द्रोऽर्चतः स्तुवतो ब्रह्मकृति क्रियमाणं ब्रह्म-

स्तोत्रम् अविष्ठोऽतिशयेन रक्षिता भवति ।
२८।५, २६।५, ३०।५,
हे ब्रह्मन् । वीरेन्द्र, ब्रह्मकृतिं क्रियमाणं स्तोत्रं
जुषाणः सेवमानः । २६ । २

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि—हे इन्द्र ! तुम स्तोताके कार्यके रक्षक हो अतः हमारे इस मंत्रात्मक स्तोत्रकी रक्षा करो।

हे वीरेन्द्र ! हमारेद्वारा निर्मित स्तोत्रात्मक (मंत्रों) का सेवन करो। २६।२,

६१—इन्द्राय ब्रह्मजनयन्त विप्राः ।

(ऋ० ७।३१।११)

सायणभाष्य—इन्द्राय सुवृक्तिं स्तुतिं ब्रह्मं अन्नं हविश्च विप्राः प्राज्ञाः जनयन्त जनयन्ति ।

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि—महान् इन्द्रकेलिए बुद्धिमान् कवि, मन्त्रात्मक स्तोत्रका निर्माण करते हैं ।

६२—सुवृक्तिमिषं न कृण्वे असुरा नवीयः ।

(ऋ० ७।३६।२)

सायणभाष्य—हे मित्रावरुणौ, वां युवाभ्यामिषं न हवीरूपमन्नमिव नवीयो नवीयसीमिमामस्मदीयां सुवृक्तिं स्तुतिं कृण्वे करोमि ।

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि—हे मित्रावरुण। मैं आपके लिए स्तुतिरूप नये मंत्र बनाता हूँ।

६३—ब्रह्मकृण्वन्तो हरिवो वसिष्ठाः ।

(ऋ० ७।३७।४)

सायणभाष्य—हे इन्द्र ! ते त्वदर्थं ब्रह्म स्तोत्रं कृण्वन्तः कुर्वन्तः ।

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि—हे हरि, अश्ववाले इन्द्र आज हम (वसिष्ठ) हव्य प्रदान करके तुम्हारेलिये स्तोत्र बनाते हैं।

६४—प्रतिस्तोमं दधीमहि तुराणाम्।

(ऋ० ७।४०।१)

सायणभाष्य—हे देवाः। वय तुराणां वेगवतां देवानां स्तोमं स्तोत्र प्रति दधीमहि कुर्वीमहि।

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि—हम वेगवान् देवोकेलिये स्तोत्र (बनाते हैं) करते हैं।

६५—प्रपूर्वजे पितरा नव्यसीभिर्गीर्भि' कृणुध्वं सदने।

(ऋ० ७।५३।२)

सायणभाष्य—हे स्तोतारः, यूय नव्यसीभिर्नवतराभिर्गीर्भिः स्तुतिभिः ऋतस्य यज्ञस्य सदने स्थानभूते पूर्वजे पितरा पितरौ प्रकृणुध्वं पुरस्कुरुत।

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि—हे स्तोताओ! तुम हमारे द्वारा निर्मित नवीनमत्रात्मक स्तुतियोद्वारा हमारे पूर्वज पितृभूत द्यावा, पृथ्वीको यज्ञस्थानमें (पुरस्कृत) स्थापित करो।

६६—प्रवां मन्मान्यृचसे नवानि कृतानि ब्रह्म जुजुषन्निमानि।

(ऋ० ७।६१।६)

सायणभाष्य—हे मित्रावरुणौ, वां युवयोर्यज्ञ नमोभिर्नमस्कारैः स्तुतिभिः समुमहयं सपूजयाम्यहम। वा मन्मानि स्तोत्राणि कृतानि मया समूहीकृतानि, इमानीदानीं-क्रियमाणानि ब्रह्म परिवृढानि स्तोत्राणि युवां (जुजुषन्) प्रीणयन्तु।

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि—हे मित्रावरुण, तुम्हारी स्तुतिकेलिये नये मत्रात्मक स्तोत्र बनाये जाये तथा मेरेद्वारा निर्मित और संगृहीत स्तोत्र तुम्हें प्रसन्न करें।

६७—ायिदधुः शरदं मासमादहर्यज्ञमक्तुं चादृचम् ।
(ऋ० ७।६६।११)

सायणभाष्य—ये मित्रादयः शरदं संवत्सरं विदधुः अकुर्वन् आत् अनन्तरमेव मासम्, अहः, अहःसाध्यं यज्ञम् आत् अनन्तरमक्तुं रात्रिञ्च, ऋचं मंत्राञ्च ।

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि—हे मित्रवरुण, और अर्यमा देवोने वर्ष, मास, दिनरात्रि और यज्ञ तथा मंत्रोंकी रचना की है।

६८—प्रवां ब्रह्माणि कारवो भरन्ते ।
(ऋ० ७।७२।४)

सायणभाष्य—वां युवयोः, ब्रह्माणि स्तोत्राणि कारवः स्तोतारः प्रभरन्ते प्रकर्षेण सम्पादयन्ति ।

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि—हे अश्विद्वय, आज स्तोता (कवि लोग) तुम्हारेलिए विशेषरूपसे नये (मन्त्रात्मक) स्तोत्रका सम्पादन करेंगे ।

६६—प्रतिस्तोमेभिरुषसं वसिष्ठागीर्भिर्विप्रासः प्रथमा ।
(ऋ० ७।८०।१)

सायणभाष्य—विप्रासो मेधाविनो वसिष्ठाः स्तोमेभिः स्तोतृभिः गीर्भिः स्तुतिभिः प्रथमा इतरयजमानेभ्यः पूर्वभूताः, उषसं प्रत्यबुध्रन् प्रतिबोधयन्ति ।

अर्थ—मेधावी वसिष्ठगणने स्तोत्रात्मक मंत्रोंके द्वारा ऊषादेवीको सभी लोगोंसे पहले जगाया था। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि ऊषादेवीके मन्त्रोंकी रचना सर्वप्रथम वसिष्ठगणने की थी ।

७०—अयं सु तुभ्यं वरुणस्वधावोहृदिस्तोमउपश्रित··· ।
(ऋ० ७।८६।८)

सायणभाष्य—हे स्वधावः अन्नवन्वरुण, तुभ्य त्वदर्थं क्रियमाणः, अयं सूक्तात्मकः स्तोमः स्तोत्रं हृदि त्वदीये हृदये सु सुष्ठु उपश्रित उपगतः ।

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि—हे अन्नवान् वरुण, तुम्हारे लिए बनाया हुआ मेरा यह सूक्तरूप स्तोत्र तुम्हारे हृदयमें भली भांति निहित हो ।

७१—शुचिं नु स्तोम नवजातमद्य········ ।

(ऋ० ७।६३।१)

सायणभाष्य—हे इन्द्राग्नी, शुचि शुद्ध नवजातमिदानीमुत्पन्नं स्तोम मे स्तोत्रम् अद्यास्मिन् काले (जुषेथाम्) सेवेथाम ।

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि—हे इन्द्र, श्रेष्ठ और नवीनतम मेरा यह मन्त्रात्मक स्तोत्र आज सेवन करो ।

७२—तमुज्येष्ठं नमसा हविर्भिः सुशेवं ब्रह्मणस्पतिं गृणीषे ।
इन्द्रं श्लोको महि दैव्यः सिषक्तु········ ।

(ऋ० ७।६७।३)

सायणभाष्य—ज्येष्ठं प्रशस्यतम सुशेव सुसुखं ब्रह्मणः- मन्त्रस्य पतिं पालयितारम् एतत्सज्ञ तमु तमेवं, देव नमसा नमस्कारेण हविर्भिश्चरुपुरोडाशादिभिश्च सार्धं गृणीषे स्तुवे । अपिच महि महान्तमिन्द्र दैव्यः देवार्हः श्लोकः अस्मदीयः स्तावको मन्त्रः सिषक्तु-सेवताम् ।

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि—उन ज्येष्ठ और सुन्दर सुखवाले ब्रह्मणस्पति-ब्रह्म अर्थात् मन्त्रके पालककी नमस्कार और

इन्द्र द्वारा मैं स्तुति करता हूँ। ये देव स्तोताओंद्वारा निर्मित मंत्रोंके राजा हैं। मेरा यह श्लोक अर्थात मन्त्र उन्हीं इन्द्रकी सेवा करे।

इस मन्त्र में श्री सायणाचार्यने ब्रह्म और श्लोक शब्दके अर्थ मन्त्र किये हैं जो वैदिक आम्नाय के अनुकूल हैं। जिसका वर्णन हम पृथक् प्रकरणमें करेंगे।

७३—ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे अकारि।

(ऋ० ९७।९)

सायणभाष्य—हे ब्रह्मणस्पते! वज्रिणे वज्रवते इन्द्राय ब्रह्ममंत्ररूपा सुवृक्तिः स्तुतिः अकारि—कृता।

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि ब्रह्मणस्पति तुम्हारी और वज्रधर इन्द्रकेलिये मैंने यह (ब्रह्म) मंत्ररूप सुन्दर स्तुति की है। यहाँपर भी भाष्यकारने 'ब्रह्म'का अर्थ मंत्र ही किया है। इसी शतशः स्थलोंमें 'ब्रह्म' शब्द मन्त्रार्थकेलिये आया है।

७४—ब्रह्मकृण्वन्तः परिवत्सरीणम्।

(ऋ० १०३।८)

सायणभाष्य—परिवत्सरीणम्—सांवत्सरिकं गावामयनिकं ब्रह्मस्तुत-शस्त्रात्मकं कृण्वन्तः कुर्वन्ति ' ....।

अर्थ—वसिष्ठ ऋषिने वर्षाकी इच्छासे पर्यजन्यकी स्तुति की थी और मण्डूकाने उसका समर्थन किया था। मण्डूको (मेंढको) को समर्थक जानकर उनकी भी स्तुति की है। ये स्तुत्यात्मक मंत्र इस सूक्तमें ग्रथित हुए हैं। इस मत्रमें वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि सोमसे युक्त और वार्षिक कवि-सम्मेलनमे कवितापाठ करनेवाले मंत्रकार कवियोकी तरह मेंढक शब्द करते हैं। इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि पूर्व समयमे वार्षिक कवि-सम्मेलन होते थे और उनमें मंत्रकार कवि अपनी अपनी रचना सुनाते थे।

७५–वयमुत्वातदिदर्था इन्द्रत्वायन्तः सखायः । कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ।

(ऋ० ८।२।१६)

सायणभाष्य—हे इन्द्र ! त्वायन्तः त्वामात्मन इच्छन्तः सखायः समानख्यानाः वयं तदिदर्थाः यत्तत्त्वद्विषयं स्तोत्रं त्वा त्वां जरामहे–स्तुमहे । कण्वाः कण्वगोत्रोत्पन्नाः अस्मदीयाः पुत्रादयः, उक्थेभिरुक्थैः शस्त्रैः जरन्ते–स्तुवन्ति ।

अर्थ—अंगिरा गोत्रीय प्रियमेध ऋषि कहते हैं कि हे इन्द्र ! हम तुम्हारे सखा हैं तुम्हारी कामना करते हैं । तुम्हारेलिये स्तोत्र निर्माण करना ही हमारा उद्देश्य है । कण्वगोत्रीय हम लोग अपने मंत्रोद्वारा तुम्हारी स्तुति करते हैं ।

७६–युवाभ्यां वाजिनीवसू प्रतिस्तोमा अदृक्षत ।

(ऋ० ५।३)

सायणभाष्य—हे अश्विनौ, युवाभ्यां स्तोमाः अस्माभिः कृतानि स्तोत्राणि प्रत्यदृक्षत–प्रतिदृश्यताम् ।

अर्थ—कण्वगोत्रीय ब्रह्मा अतिथि ऋषि कहते हैं कि अन्नयुक्त और धनसम्पन्न अश्विद्वय, हमारेद्वारा बनाये गए मंत्रात्मक स्तोत्रों को आप देखें ।

७७–वत्सो वां मधुमद्वचो शंसीत् काव्यः कविः ।

(ऋ० ८।११)

सायणभाष्य—हे अश्विनौ, काव्यः कवेः पुत्रः कविर्मेधावी–वत्स-ऋषिः वां युवाभ्यां युवयोरर्थे मधुमत् माधुर्योपेतं वचो वचनम् अशंसीत–शंसितवान् ।

अर्थ—कण्वगोत्रज सध्वसाख्य ऋषि कहते हैं कि हे अश्विद्वय, कविके पुत्र और स्वयं कवि वत्स ऋषि ने मधुमत् उक्थ अर्थात् मंत्रका निर्माण किया है। मेरे इस मत्रात्मक स्तोत्रकी प्रशंसा करो।

७८—उत स्वराजे अदितिः स्तोममिन्द्राय जीजनत्।

(ऋ० १२।१४)।

सायणभाष्य—उतापि अदितिरदीना देवमाता, अखंडनीय स्तोता वा स्वराजे स्वयमेव राजमानायेन्द्राय पुरुप्रशस्तं बहुलमुत्कृष्टं स्तोमं स्तोत्रं जीजनत्—अजीजनत्।

अर्थ—कण्वगोत्रीय पर्वत ऋषि कहते हैं कि अदितिने स्वयं शोभमान् इन्द्रकेलिये, रक्षाके निमित्त, अनेकोंकेद्वारा प्रशंसित सत्य-सम्बन्धी स्तोत्रको उत्पन्न किया।

७९—एवेन्द्राग्निभ्यां पितृवन्नवीयो मन्धातृवदङ्गिरस्वदवाचि।

(ऋ० ४०।१२)

सायणभाष्य—एवैवं याभ्यामिन्द्राग्निभ्यां पितृवन्नभाकवत् मन्धातृवत् यौवनाश्वमन्धातृवत् चांगिरस्वदं गिरोवच्च नवीयो नवतरमवाचि।

अर्थ—नाभाक ऋषि कहते हैं कि मैंने पिता मान्धाता और अंगिराके समान इन्द्र और अग्निके लिए नवीन मंत्रात्मक स्तुतियोंका पाठ किया।

८०—नाभाकस्य प्रशस्तिभिर्यः सिन्धूनामुपोदये।

(ऋ० ४१।२)

सायणभाष्य—नाभाकस्य ऋषेः प्रशस्तिभिः स्तोत्रैश्चाभिष्टौमि सिन्धूना स्पन्दमानानां नदीनाम् उपसमीपे उदये-गच्छति।

अर्थ—नाभाक ऋषि कहते हैं कि योग्य स्तुतिकेद्वारा मैं स्तुति

करता हूँ। अर्थात् नाभाक ऋषिका भाव यह है कि मेरी मंत्ररचना मेरे जैसी ही है अर्थात् वह अनुपम है।

८१–अग्ने स्तोमं जुषस्व मे वर्धस्वानेन मन्मना प्रतिसूक्तानि हर्य नः

(ऋ० ४४।२)

सायणभाष्य—हे अग्ने! मे आङ्गिरस्य स्तोम स्तोत्रं जुषस्व-सेवस्व, अनेन मन्मना मननीयेन स्तोत्रेण वर्धस्व च। नोऽस्माकं सूक्तानि प्रतिहर्य कामय च।

अर्थ—अंगिरा ऋषि कहते हैं कि हे अग्नि, हमारे इस स्तोत्र का सेवन करो, इस मनोहर स्तोत्रद्वारा बढ़ो तथा हमारे इस सूक्त की कामना करो!

८२–इयं ते नव्यसी मतिरग्ने अधाय्यस्मदा।

(ऋ० ६३।७)

सायणभाष्य—हे अग्ने! इयमिदानीं क्रियमाणा नव्यसी नवतरा-मतिः स्तुतिस्ते तव स्वभूता अस्मदस्मासु अधायि-धृताभूत्, वय तव स्तुति कुर्म इत्यर्थः।

अर्थ—गोपवन ऋषि कहते हैं कि हे अग्नि! हम स्वरचित मंत्रात्मक स्तोत्रोंद्वारा तुम्हारी स्तुति करते हैं।

८३–ब्रह्मा त इन्द्र गिर्वणः क्रियन्ते······।

(ऋ० ७६।३)

सायणभाष्य—हे गिर्वणः, इन्द्र, ब्रह्म मंत्राणि स्तोत्राणि ते त्वदर्थ-मस्माभिः क्रियन्ते।

अर्थ—पुरुमेध ऋषि कहते हैं कि हे स्तुत्य इन्द्र, हम तुम्हारेलिये यथार्थ स्तोत्रोंका निर्माण करते हैं।

८४—इन्द्र यस्ते नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत् ।

(ऋ० ८४।५)

सायणभाष्य—हे इन्द्र ! यो यजमानः, नवीयसीं नवतरां पुनःपुनः क्रियमाणतया मन्द्रां मदकरीं गिरं स्तुतिलक्षणां वाचं ते त्वदर्थम् अजीजनत्—उदपीपदत् अकार्षीदित्यर्थः ।

अर्थ—आंगिरस तिरश्ची ऋषि कहते हैं कि हे इन्द्र ! जिस यजमानने नवीन और मदकर मंत्रात्मक स्तुतिका निर्माण किया है उसकी रक्षा करो !

८५—उक्थं यदस्य जायते ।

(ऋ० ४७।३)

सायणभाष्य—यद्यदास्येन्द्रस्य उक्थम्—शस्त्रं जायते—प्रादुर्भवति ।

अर्थ—भृगुपुत्र कवि ऋषि कहते हैं कि जब इन्द्रका शस्त्ररूप (मंत्र) उत्पन्न होता है अर्थात् हम निर्माण करते हैं तभी वे हमारे लिये असीम धन प्रदान करते हैं ।

८६—स प्रत्नवन्नव्यसे विश्वाम् सूक्ताय पथः कृणुहि प्राचः ।

(ऋ० ६।६१।५)

सायणभाष्य—हे सोम ! त्वं प्रत्नवत् पुराण इव स्थितः, नव्यसे-नवीयसे नवतराय तस्मै सूक्ताय शोभनस्तुतिकामाय मह्यम् पथो मार्गान् प्राचः प्राचीनात् कृणुहि ।

अर्थ—हे सोम ! पूर्व समयकी तरह मेरे इस नवीन सूक्तको और मेरे मार्गको पुराने करो ! अर्थात् मेरे इस नवीन सूक्तको पुरस्कृत करो !

८७—गा अतो मतीर्जनयत स्वधाभिः ।

(ऋ० ६५।१)

सायणभाष्य—अतोऽस्मै सोमाय मतीर्मननीयाः स्तुतीः स्वधाभिः हविर्भिः सह जनयत—स्तोतारो जनयन् ।

अर्थ—कविपुत्र प्रस्कण्व ऋषि कहते हैं कि हे स्तोताओ, सोम केलिये हविके साथ मननीय स्तुत्यात्मक मन्त्रोका निर्माण करो।

८८—प्रकाव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति।

(ऋ० ९।७।७)

सायणभाष्य—उशनेव एतन्नामक ऋषिरिव काव्य कविकर्म स्तोत्रं ब्रुवाणः उच्चारयन् देवः स्तोता अयमृषिः वृषगणो नामदेवानामिन्द्रादीनां जनिम जन्मानि प्रविवक्ति-प्रकर्षेण ब्रवीति।

अर्थ—वसिष्ठ गोत्रज वृषगण ऋषि कहते हैं कि उशनानामक कविके समान काव्य (स्तोत्र) करते हुए इस मन्त्रके कर्ता ऋषि इन्द्रादि देवोका जन्म भलीभाँति जानते हैं।

८९—कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणीनना।

(ऋ० ११२।१)

सायणभाष्य—अहं कारुः स्तोमानां कर्तास्मि ततः पुत्रः भिषक् भेषजकृत्, उपलप्रक्षिणी उपलेषु भृष्टवान् यवान् हिनस्ति चूर्णयतीति।

अर्थ—यहाँ आंगिरस शिशु ऋषिने एक कुटुम्बका चित्र खींचा है। उस कुटुम्बका नेता कहता है कि मैं मन्त्रोका निर्माता हूँ। अर्थात् कवि हूँ और मेरा पुत्र भिषक् (वैद्य) है तथा मेरी पुत्री यवो को कूटनेका काम करती है। हम सब भिन्न भिन्न कार्य करते हुए भी एक स्थान में रहते हैं। इस मन्त्रसे यह ज्ञात होता है, कि उस समय मंत्र रचनेका भी एक पेशा था।

९०—यत्र ब्रह्मा पवमान छन्दस्यां ३ वाचं वदन्।

(ऋ० ११३।६)

सायणभाष्य—हे पवमान पूयमान सोम, त्वदर्थं छन्दस्यां सप्तच्छन्दोभिः कृतां तेषु भवां वाच वदन् उच्चारयन् ।

अर्थ—मरीचि कश्यप ऋषि कहते हैं कि हे सोम! तुम्हारेलिये सातों छन्दोंमें बनाई गई यह मन्त्रात्मक स्तुति करते हुए, पत्थरसे तुम्हारा अभिषव करते हुए और अभिषवसे देवोंका आनन्द करते हुए, ब्राह्मण जहाँ पूजित होता हो, वहाँ त्वरित होओ।

९१—ऋषे मंत्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन्गिरः।

(११४।२)

सायणभाष्य—ऋषिः स्वात्मानं प्रत्याह हे ऋषे! सूक्तद्रष्टः कश्यप, आत्मन् त्वं मंत्रकृतामृषीणां स्तोमैः स्तोत्रैः गिरः स्तुतिरूपा वाच उद्वर्धयन्नुपर्युपरिवर्धन्।

अर्थ—कश्यप ऋषि कहते हैं कि हे कश्यप ऋषि! मंत्र रचयिताओंने जिन स्तुत्यात्मक मन्त्रोंकी रचना की है, उनका आश्रय लेकर अपने वाक्यकी वृद्धि करो!

९२—इमा अग्ने मतयस्तुभ्यं जाताः।

(१०।७।२)

सायणभाष्य—हे अग्ने! इमा ईदृश्यः मतयः स्तुतयः तुभ्यं त्वदर्थं जाता—अस्मदादिस्तोतृमुखात् उत्पन्नाः।

अर्थ—त्रित ऋषि कहते हैं कि हे अग्ने! तुम्हारेलिये हमारे द्वारा यह मंत्रात्मक स्तुति उत्पन्न हुई है।

९३—युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिः।

(ऋ० १३।१)

सायणभाष्य—वां युवां पूर्व्यं ब्रह्म मंत्रमुच्चार्येति शेषः नमोभिः सोमादिहविर्लक्षणैरन्नैर्युजे—युनज्मि।

अर्थ—विवस्वान् ऋषि शकटद्वयकी स्तुति करते हुए कहते हैं कि हे शकटद्वय! प्राचीन समयमें उत्पन्न स्तुत्यात्मक मंत्रका उच्चारण करके सोमादिको लादकर पत्नीशालाके अन्तमें तुम दोनोंको ले जाता हूँ।

इस मंत्रमे आये हुए ब्रह्म शब्दका अर्थ सायणाचार्यने मंत्र किया है।

९४–ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः।
आग्नेयाहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् सत्यैः कव्यैः पितृभिर्घर्मसद्भिः।
(ऋ० १५।६)

सायणभाष्य—देवत्रा देवान् जेहमानाः क्रमेण गच्छन्तः होत्राविदः यज्ञान् सम्यक्कर्तुं वेदितारः अर्कैरर्चनीयैः स्तोत्रैः स्तोमतष्टासस्तातृषुः तृष्यन्ति। हे अग्ने! त्वं तैः पितृभिः आ अर्वाङ् आयाहि–आगच्छ कव्यैः कविभिः घर्मसद्भिः यज्ञासादिभिः।

अर्थ—यम-पुत्र शंख ऋषि कहते हैं कि हे अग्नि! जो पितर, हवन करना जानते थे और अनेक ऋचाओंकी रचना करके मंत्रात्मक स्तोत्र उपस्थित करते थे और जो अपने कर्मके प्रभावसे इस समय देवत्व प्राप्त कर चुके हो, उन्हें लेकर हमारे पास आओ!

९५–स्तोमं त इन्द्र विमदा अजीजनन्नपूर्व्यं पुरुतमंसुदानवे।
(ऋ० २३।६)

सायणभाष्य—हे इन्द्र! ते तुभ्यं सुदानवे विमदा विमदनामानो वयं स्तोमं–स्तोत्रविशेषम् अजीजनन्–जनितवन्तः कृण्वन्त इत्यर्थः।

अर्थ—विमद ऋषि कहते हैं कि हे इन्द्र! विमदवंशियोंने तुम्हें अतीव प्रतिष्ठित जानकर तुम्हारेलिये अनुपम और अतीव विस्तृत मंत्रात्मक स्तुति बनाई है।

९६–एवं वां स्तोममश्विनावकर्मा तक्षामभृगवो न रथम्।
(ऋ० ३९।१४)

सायणभाष्य—हे अश्विनौ, वामेतं स्तोमं स्तोत्रम् अकर्म-अकुर्म। भृगोवोन भृगव इव रथम् अतक्षाम-वयं स्तोत्रम् संस्कृतवन्तः।

अर्थ—कक्षीवान्‌की पुत्री घोषा कहती है कि जैसे भृगु सन्तानें रथ बनाती हैं, वैसे ही हे अश्विद्वय! हमने तुम्हारेलिये यह मंत्रात्मक स्तोत्र रचा है।

९७—भुवस्त्वमिन्द्र ब्रह्मणा महान्।

(ऋ० ५०।४)

सायणभाष्य—हे इन्द्र! त्वं ब्रह्मणा—अस्मत्कृतेन परिवृढेण स्तोत्रेण महान् भुवः—अभवः।

अर्थ—इन्द्र ऋषि कहते हैं कि हे इन्द्र! तुम हमारेद्वारा निर्मित मंत्रात्मक स्तोत्रसे महान् हुए हो।

९८—ये ते विप्र ब्रह्मकृतः सुते सचा वसूनां च वसुनश्च दावने।
प्रते सुम्नस्य मनसा यथाभुवन्मदे सुतस्य सोम्यान्धसः।

(ऋ० ५०।७)

सायणभाष्य—हे विप्र! ते ये ब्रह्मकृतः—स्तोत्रकर्तारः, सचा संघीभूताः सुतेषु सोमेषु वसूनां वसुनश्च दावने दानाय, ते सुम्नस्य सुखस्य लाभाय .... सोमस्य सोमसंबधिनोऽन्धसोऽन्नस्य मेद सति।

अर्थ—इन्द्र ऋषि कहते हैं कि हे इन्द्र! स्तोत्रोंके निर्माता कवि लोग नाना प्रकारके धनकी इच्छासे एकत्र होकर तुम्हारेलिये सोम यज्ञ करते हैं। वे सोमरूप अन्न प्रस्तुत होनेके पश्चात् जिस समय आमोद आह्लाद आरम्भ होता है, उस समय स्तुतिरूप साधनसे सुख लाभके अधिकारी हो। इससे स्पष्ट विदित होता है, कि बहुतसे कवि लोग सोमरसका पान करके उसके नशेमें मंत्र रचना करते थे।

ऋ० ९।२६।४ में तथा ९।१०१।५ में सोमको वाचस्पति कहा गया है। अथर्ववेद भाष्यकार पं० राजारामजीने अथर्ववेदके प्रथम मन्त्रका भाष्य करते हुए नीचे नोटमें लिखा है कि सोम पिया हुआ, मनुष्यको देवस्तुति (स्तोत्र) बोलनेमे उत्तेजना देता है अतः सोमको वाचस्पति अर्थात् वाक्पति कहा गया है। इससे भी हमारे पूर्वोक्त विचारकी पुष्टि होती है।*

९९—अध प्रियं शूषमिन्द्राय मन्म ब्रह्मकृतो बृहदुक्था दवाचि।
(ऋ० ५४।६)

सायणभाष्य—अध-संप्रति इन्द्राय प्रियं शूषं मन्म-मननीयं स्तोत्रं ब्रह्मकृतः=मंत्रकृतः, बृहदुक्थात् प्रभूतशस्त्रयुक्तात्, एतन्नामकादृषेर्मत्तो वाचि-उक्तमभूत्।

अर्थ—बृहदुक्थ ऋषि कहते हैं कि इन्द्रकेलिये मंत्रोके कर्ता बृहदुक्थ ऋषिने अर्थात् मैंने प्रिय और बलका स्तोत्र किया था।

१००—इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पितानऋतप्रज्ञातां बृहतीमविन्दत्। तुरीयं स्विज्जनय द्विश्वजन्यो यास्य उक्थमिन्द्राय शंसन्॥
(ऋ० ६७।१)

सायणभाष्य—धियं सप्तशीर्ष्णीं सप्तशिरस्कां यद्वा सप्तछन्दोमयशिरस्काम्—ऋतप्रजाताम—यज्ञार्थमुत्पन्नां बृहतीमिमां तन्वं नोऽस्माकं पितां गिरा अविन्दत्-लब्धवान्....

---

* पं० सातवलेकरजीने (ऋग्वेदका सुबोध भाष्य) के भाग ५ पृष्ठ ३२ पर लिखा है कि (परियत् कविः काव्या ऋ० ९।९४।३) यह सोम काव्यको स्फूर्ति देता है। इस रसको पाकर कविकी स्फूर्ति बढ़ती है और काव्य करते हैं। यहां सोम कविको स्फूर्ति देनेके कारण कवि ही है। [illegible]

इन्द्राय उक्थं स्तोत्रं शंसन् अयमयास्यो नाम ऋषिः पूर्वमेवं नोऽस्माकं पिता, अकार्षीत् ।

अर्थ—अयास्य ऋषि कहते हैं कि अंगिरा आदि हमारे पितरों ने यज्ञकेलिये सात छन्दोंवाले विशाल स्तोत्रकी रचना की थी। संसार के हितैषी अयास्य ऋषिने इन्द्रकी प्रशंसा करते हुए यह स्तोत्र बनाया ।

१०१—अग्नये ब्रह्म ऋभवस्ततक्षुरग्निं महामवोचा मा सुवृक्तिम् ।

(ऋ० ८।७)

सायणभाष्य—अग्नये ब्रह्म=स्तोत्रम्, ऋभवो मेधाविनः, ततक्षुः= अकुर्वन् ......।

अर्थ—वैस्वानर ऋषि कहते हैं कि अग्निकेलिये ऋभुवोंने मंत्रात्मक स्तोत्र बनाया है। हमने भी महान अग्निकी मन्त्रात्मक स्तुति की है।

१०२—क्ष्मयादिवो असमं ब्रह्मनव्यम् ।

(ऋ० ८६।३)

सायणभाष्य—क्ष्मया दिवो दिवः पृथिव्याश्चासमं नव्यं नवतरमन्यै- रकृतपूर्वं ब्रह्म=स्तोत्रमस्मा इन्द्रायार्चोच्चारय ।

अर्थ—विश्वामित्रके पुत्र रेणु ऋषि कहते हैं कि हे स्तोता, मेरे साथ मिलकर उन इन्द्रके लिए पहले दूसरोंसे न बनाया गया हो, ऐसे नवीन स्तोत्रको करो ! जो निकृष्ट न हो तथा जो द्यावा पृथिवीमें अनुपम हो ।

१०३—इमां प्रत्नाय सुष्टुतिं नवीयसो वोयमस्मा उशते शृणोतु नः ।

(ऋ० ९१।१३)

सायणभाष्य—प्रत्नाय उशते अस्मै अग्नये नवीयसीं नवतराम्=अन्यै-
रकृतपूर्वाम् सुष्टुतिं वोचेयमहं वक्ष्यामि ।

अर्थ—वीतहव्यके पुत्र अरुण ऋषि कहते हैं कि स्तोत्राभिलाषी उन प्राचीन अग्निकेलिये मैं अत्यन्त नूतन व सुन्दर मन्त्रात्मक स्तोत्र कहता हूँ, वे सुनो ।

१०४—हृदा मतिं जनये चारु मग्नये ।

(ऋ० ६।१।१४)

सायणभाष्य—हृदा-हृदयेन चारुं कल्याणीं मतिम्=स्तुतिम्, जनये जनयामि-उत्पादयामि ।

अर्थ—उन्हीं अग्निकेलिये मैं हृदयसे कल्याणकारी मंत्रात्मक स्तुति बनाता हूँ ।

१०५—एतं मे स्तोमं तना न सूर्ये……।

(ऋ० ६३।१२)

सायणभाष्य—मे मदीयमेतमिमं स्तोमं स्तोत्र ववृधन्त-ऋत्विजो वर्धयन्तु । अश्वम्-अश्वार्हं रथं तष्टेव संस्कृतं रथं प्रेरयति तद्वत् ।

अर्थ—पृथुपुत्र ताम्य ऋषि कहते हैं कि मेरे इस स्तोत्रकी स्तोता लोग वृद्धि करें । जैसे बढ़ई अश्वके खींचने योग्य सुदृढ़ रथ बनाता है वैसे ही मैंने इसे बनाया है ।

मुखसे मंत्र रचना—

१०६—अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया । अकारि रत्नधातमः ।

(ऋ० १।२०।१)

सायणभाष्य—जन्मने देवाय अयं स्तोमः स्तोत्रविशेषः, विप्रेभिः मेधाविभिर्ऋत्विग्भिरासया स्वकीयेनास्येन, अकारि निष्पादितः ।

अर्थ—मेधातिथि काण्व ऋषि कहते हैं कि रत्नोंके देनेवाले इस मंत्रात्मक स्तोत्रको ब्राह्मणोंने ऋभवोकेलिए बनाया है।

१०७—मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः।

(ऋ० ३८।१४)

सायणभाष्य—हे ऋत्विक्समूह! आस्ये—स्वकीये मुखे श्लोकं—स्तोत्रं मिमीहि—निर्मितं कुरु। तं च श्लोक ततनः विस्तारय, पर्जन्य इव। उक्थं शस्त्रयोग्यं गायत्रं गायत्रीछन्दस्कं सूक्त गाय—पठ।

अर्थ—कण्वोघौर ऋषि कहते हैं कि हे ऋत्विग्गण! तुम लोग अपने मुखसे मंत्रात्मक स्तोत्रकी रचना करो! मेघकी तरह उस स्तोत्रको विस्तृत करो! तथा गायत्री छन्दसे युक्त मंत्रोंका गायन करो!

मूल मंत्रमें "आस्ये" सप्तम्यन्त पद है, जिसका अर्थ पं० रामगोविन्द त्रिवेदीने अपने ऋग्वेदके अनुवादमे जोकि उन्होंने सायणाचार्यके अनुकूल बनाया है, उसमें आप लिखते हैं कि—"ऋत्विग्गण! अपने मुंहसे स्तोत्र बनाओ" इसी आधारपर हमने भी सप्तम्यन्त पदके स्थानपर तृतीयान्त पदका अर्थ किया है। यह व्य प्रत्यय वैदिक व्याकरणके अनुकूल भी है। तथा आर्यसमाजके सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पं० सातवलेकरजीने अपने 'ऋग्वेदका सुबोध भाष्य' नामक ग्रन्थके भाग ५ में इसी मंत्रका अर्थ करते हुए लिखा है कि "मुखमे ही प्रथम श्लोकको (अक्षरोंके प्रमाणसे) बनाओ, उसका पर्यजन्यके समान फैलाव करो और गायत्रीछन्दमे रचे काव्यका गायन करो।" इससे यह स्पष्ट सिद्ध है कि उस समय यज्ञोमें कविसम्मेलन होता था और कवि लोग अपनी अपनी रचनाएँ सुनाते थे।

वेदोंमें ऋषियोंके नाम

पं० सातवलेकरजी और वेद—

१—आर्य-समाजके सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् श्रीमान् पं० सातवलेकरजीने "ऋग्वेदका सुबोध भाष्य" प्रारम्भ किया है, उसके प्रथम भागमे ही—इन्द्रमिद्गाथिनः ७।१।१० का भाष्य करते हुए लिखते हैं कि—"इस सूक्तके प्रारम्भमें 'इन्द्रमिद्गाथिनो बृहत्' यह चरण है। इसमे "गाथिनः" पद है, वह सूक्तके कविका सूचक है। इस सूक्तका ऋषि 'मधुच्छन्दा' है, यह ऋषि (वैश्वामित्रः) विश्वामित्रका पुत्र है और विश्वामित्र (गाथिनः) गाथी या गाधि कुलमे उत्पन्न हुआ है, इसलिए मधुच्छन्दा भी 'गाथिनः' अर्थात् गाथि कुलका ही है। 'विश्वामित्रो गाथिनः' के सूक्त तीसरे मण्डलमे आरम्भसे अन्त तक हैं। बीचमें विश्वामित्र पुत्रोंके कुछ सूक्त हैं। पाठक इस दृष्टिसे तृतीय मण्डलके ऋषि देखें।"

२—मधुच्छन्दा ऋषिके पश्चात् ऋग्वेदमे मेधातिथि ऋषिके मन्त्र आते हैं। मेधातिथि कण्वगोत्रमे उत्पन्न ऋषि हैं। इस विषय मे सुबोध भाष्यके भाग २ में पं० जी लिखते हैं कि—"इस सूक्तके दो मन्त्रोमे 'कण्वाः, कण्वासः' यह पद है। पूर्व सूक्तमे 'नवीयसा गायत्रेण स्तवानः।' (ऋ० १।१२।११) नये गायत्री छन्दके छन्दसे अग्निकी स्तुति की जाती है। और इस सूक्तमें—

कण्वाः त्वा आ अहूषत। (२)

कण्वासः त्वां ईलते। (५)

'कण्व तेरी स्तुति करते हैं' ऐसा कहा है। इस सूक्तका ऋषि 'मेधातिथिः काण्वः' है। अर्थात् यह कण्व गोत्रमें उत्पन्न है, अतः इसका गोत्रज नाम 'कण्व' है। हमारे गोत्रज सब कण्व ऋषि अग्निकी स्तुति करते आये हैं, ऐसा यहाँ इसका आशय दीखता है। 'कण्व' पद 'कण्' धातुसे बनता है। 'कण्' धातुका अर्थ कराहना है। जो कराहता हुआ चिल्लाता है वह कण्व है। जो दुखसे

कराहता है वह कण्व है। यह अर्थ लेकर 'कण्वाः त्वा आ अहूषत। कण्वासः त्वां ईलते'। इनका अर्थ दुखसे त्रस्त हुए भक्त लोग तेरी स्तुति या उपासना करते हैं, ऐसा भी होना सम्भव है। पर पूर्व सूक्तमें जो नया 'गायत्री छन्दका सूक्त' करनेका उल्लेख है उसके साथ इसका सम्बन्ध देखनेसे यहाँ कण्व पद गोत्रवाचक प्रतीत होता है।" पृ० १६।

३—दीर्घतमाका पुत्र उशिक, और उशिकका पुत्र कक्षीवान् है। ऋग्वेद में मं० १।११६ सू० से १२५ तकके १४६ मंत्रोंका यह ऋषि है। सू० १।१२६ के प्रथम ५ मंत्र इसीके हैं तथा नवम मंडलमें ७४ वें सूक्त के ६ मंत्र इसीके है। अर्थात् १४६+५+६=१६० मंत्र ऋग्वेद में इसके है। मेधातिथिके इस सूक्तमें (कक्षीवन्तं य औशिजः) औशिजकक्षीवान् ऋषिकी उन्नति होनेका वर्णन है। अतः मेधातिथि के पूर्वका यह कक्षीवान् होना उचित है।" भा० २ पृ० २८

४—इस सूक्त (मं० ८।१) के ऋषि निम्नलिखित हैं—

मंत्र १–२ घोरऋषिका पुत्र प्रगाथ ऋषि, जो कण्वका दत्तक पुत्र बन गया था।

मंत्र ३।२६ कण्व गोत्रमें उत्पन्न मेधातिथि और मेध्यातिथि।

मंत्र ३०-३३ प्लायोगीका पुत्र आसंग राजपुत्र।

मन्त्र ३४ आंगिरा ऋषिकी कन्या आसंगकी भार्या शश्वती स्त्री ऋषिका।

'मेध्यातिथि ऋषिका नाम मं० ३० में आया है।

'प्लायोगि आसंग' का नाम मं० ३३ में आया है। केवल—

'आसंग' का नाम मं० ३२ में भी है।

'शाश्वती' का नाम मन्त्र ३४ में भी है।

'काण्व' का नाम मंत्र ८ में है। पृ० ५२

इस सूक्त (मं० ८।२) में निम्नलिखित ऋषिनाम आये हैं-

कण्वाः (मं० १६), प्रियमेधाः (मं० ३७), कण्वासः (मं० ३८),

काण्वः मेध्यातिथिः (मं० ४०), ये ऋषिवाचक पद मंत्रोंमें आये हैं और ये ही इस सूक्तके ऋषि हैं। विभिन्दुः' (मं० ४१) नाम एक राजाका इसमें आया है, जिसने प्रियमेधको दिए दानका उल्लेख है।" पृ० ६०।

६—"इस सूक्त (मं० ८।३) मे निम्नलिखित ऋषिनाम आये हैं-

कण्वाः, भृगवः, प्रियमेधासः (मं० १६), कौरयाण पाकस्थामा (मं० २२-२४), भृगुः प्रस्कण्वः (मं० ६), ऋमुः (मं० ८) इनमें काण्व गोत्रका इस सूक्तका ऋषि भी है, तथा कुरुयाण-पुत्र पाकस्थामा राजाके दानका वर्णन (मं० २१-२२) में है। पौर (पुरु राजाका पुत्र) रुशम, श्यावक, कृप (मं० १२) ये नाम भी इस सूक्त में आये है।" पृ० ६५।

७—"'प्रियमेघ' यह एक ऋषि-नाम इस सूक्त (मं० ८ सू० ३२) के ३०-वें मन्त्रमें आया है। यह आंगिरस गोत्र मे उत्पन्न ऋषि हैं। इसके मन्त्र ऋचा ८।२ (मं० ४०), ८।६८ (मं० १६), ८।६६ (मं० १८), ८।८७ (मं० ६), ६।२८ (मं० ६) मे है (कुल मंत्र ८६) हैं।"

"इस सूक्त के १७ वें मंत्रमें 'पन्ये ब्रह्म कृणोत' अर्थात् 'प्रशसनीय (देवता) का मन्त्र या स्तोत्र करो', ऐसा कहा है। वेदके 'मंत्रपति मत्रकृत् और मन्त्रद्रष्टा' ऋषि होते हैं। इनमेसे 'मन्त्रकृत्' ऋषियोका यह यह मंत्र स्पष्टीकरण करता है।" पृ० ६६।

८—"ऋग्वेदके सप्तम अनुवाकमें हिरण्यस्तूपके ७१ मंत्र हैं, नवम मण्डलमें २० हैं और दशम मण्डलमें उसके पुत्र अर्चन् ऋषि के ५ मंत्र हैं। सब मिलकर ६६ मंत्र इसके दर्शनमें हैं। हिरण्यस्तूप का वर्णन ऐतरेय ब्राह्मणमे इस प्रकार है:—

'इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचमिति सूक्तं शंसति। तद्वा एतत्प्रिय इन्द्रस्य सूक्तं निष्कैवल्यं हैरण्यस्तूपम्, एतेन वै सूक्तेन हिरण्यस्तूप आङ्गिरस इन्द्रस्य प्रियं धाम उपागच्छत्, स परमं लोकमजयत्।" (ऐ० ब्रा० ३।२४)

अग्निर्देवतानां, हिरण्यस्तूप ऋषीणा, बृहती छन्दासां० (श० ब्रा० १।६।४।२) 'इन्द्रस्य नु वीर्याणि' यह सूक्त (ऋ० १।३२) का है। यह इन्द्रका बड़ा प्रिय काव्य है, यह आंगिरस गोत्रमे उत्पन्न हिरण्यस्तूप ऋषिका है। इस सूक्तके पाठसे उसने इन्द्रका प्रिय धाम प्राप्त किया, और उससे श्रेष्ठ लोक प्राप्त किया। इस प्रकार हिरण्यस्तूप ऋषिका यह (ऋ० १।३२ वाँ) सूक्त है ऐसा ऐतरेय ब्राह्मणमे कहा है। शतपथमें ऋषियोंमें हिरण्यस्तूप ऋषि प्रशंसित हुआ है, ऐसा कहा है। ब्राह्मण ग्रंथोमे ये ही इस ऋषिके नामके उल्लेख हैं।

निम्नाङ्कित मन्त्रमे इस ऋषिका नाम आता है—

हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा त्वांगिरसो जुह्वे वाजे अस्मिन्।
एवा त्वार्चन्नवसे वन्दमानः सोमस्येवांशुं प्रतिजागराहम्।
(ऋ० १०।१४९।५)

'(मेरे पिता) आंगिरस गोत्रमे उत्पन्न हुए हिरण्यस्तूप ऋषिने सविता देवका जैसा काव्य गान किया था वैसा ही मैं (उसका पुत्र) अर्चन् ऋषि आपकी उपासना करता हूँ'। यहाँ अर्चन् ऋषिने अपना नाम जैसा कहा है वैसा ही अपने पिता तथा गोत्रका नाम भी कहा है।" भा० ४ पृ० ३।

६—कण्व ऋषिके मन्त्र ऋग्वेदमें १०१ हैं, इन मन्त्रोमें ऋषियों तथा राजाओंके नामोका उल्लेख निम्न प्रकार है—

"(ऋ० ४।३६) के मंत्र १० में 'मेध्यातिथिः काण्वः' तथा मन्त्र ११ और १७ में भी मेध्यातिथिके नाम हैं। इसके अतिरिक्त धन-स्पृत (मं० १०), उपस्तुत (मं० १० और १७), तुर्वश, यदु, उग्रदेव, नववास्त्व, बृहद्रथ, तुर्वीति (मं० १८) ये नाम भी इसी सूक्तमें हैं। ये नाम कण्वके सूक्तमे हैं। अब प्रस्कण्वके सूक्तोंमें ऋषिनाम देखिये-

ऋ० १।४५ के मन्त्र ३ में प्रस्कण्वका नाम आया है। इसके अतिरिक्त प्रियमेध, अत्रि, विरूप, अंगिरा ये नाम भी इसी मंत्रमें हैं। 'प्रियमेध' का नाम पुनः मन्त्र ४ में आया है। इसी सूक्तके ५ वें मन्त्रमें ऋषिने अपने गोत्रका नाम 'कण्व' कहा है।

ऋ० १।४६ के नवम मन्त्रमें 'कण्वासः' पद है, यह इसका गोत्रनाम है। ऋ० १।४६ के मन्त्रमे 'कण्वासः' पद है, यही पद मंत्र ४, ५, १० में भी है।

ऋ० १।४६ के मन्त्र ४ में 'कण्वाः' पद है, यह ऋषिका गोत्र-नाम है। ऋ० ८।४६ के मन्त्र ५ और १३ में 'कण्व' नाम है। इसी सूक्तके मन्त्र ६ और १० में 'मेध्यातिथि, नीपातिथि, कण्व, त्रसदस्यु, पक्थ, दशव्रज, गार्श्य, ऋजिश्वा' ये नाम हैं।

इस प्रकार कण्व और प्रस्कण्व तथा अन्य ऋषियोंके तथा राजाओंके नाम इन सूक्तोमें आये हैं। भाग ५ पृ० ४।

१०—तथा च—कण्व शब्दको नीलकण्ठ भट्ट 'सुखमय' इस अर्थसे ग्रहण करते हैं। बृहद्देवतामें कण्वके विषयमे जो उल्लेख पाया जाता है, उसमें लिखा है कि, घोरनामा ऋषिके कण्व और प्रगाथ ये दो पुत्र थे। जबकि ये दोनों पुत्र अरण्यमे रहा करते थे, तब प्रगाथके द्वारा कण्वपत्नीके सम्बन्धमें कुछ अविनयपूर्ण व्यवहार हुआ। कण्व प्रगाथको शाप देनेकेलिये उद्यत हुए। तब प्रगाथने उनकी क्षमा मांगकर कण्व और कण्वपत्नी इन दोनोंको माता-पिता मान लिया। आगे चलकर कण्व तथा उनके वंशज इन्होंने मिलकर ऋग्वेदके अष्टम मण्डलकी रचना की।

सम्भव है कि कण्वका कुल यदु और तुर्वश इनका पौरोहित्य करता होगा। ऋ०में कण्वकुलोत्पन्न देवातिथि इन्द्रकी प्रार्थना करता हुआ दिखाई देता है कि 'तेरी कृपासे यदु और तुर्वश ये सुखी हुए मुझे दिखाई दे।'

महस्ते घृष्णो अभिन्द्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम। (ऋ० ८।४।७)

कई ग्रन्थोंमें तथा ऋग्वेदमें इस पुरातन ऋषिका नामोल्लेख किया हुआ पाया जाता है। उदाहरणार्थ—

भुवत्कण्वे वृषा द्युम्न्याहुतः क्रन्ददश्वो गविष्टिषु। (१।३६।८)

यामस्य कण्वो अदुहत् प्रपीनाम्। (अथर्व ७।१५।१)

कण्वः कक्षीवान पुरुमीढो अगस्त्यः। (१८।३।१५)

यामस्य कण्वोऽदुहत्प्रपीनाम्। (वा० य० १७।७४)

कण्वो हैतान्तु प्रैषान्ददर्श। (सांख्यायन ब्रा० २८।८) पृ० ४।

कण्व स्वय आंगिरस गोत्रोत्पन्न है। इस कुलकी उत्पत्ति पुरु वंशसे हुई थी। कुछ स्थानोंमे ऐसा उल्लेख है कि कण्व मतिनारपुर अप्रतिरथसे पैदा हुए। परन्तु एक स्थानपर कण्वको अजमीढपुत्र बताया है। इस प्रकार अनेक कण्वोंका वर्णन वैदिक वाङ्मयमें उपलब्ध होता है। किन्तु मन्त्र-रचयिता प्रथम कण्व ऋषि हैं। जिनका मन्त्रोंमें उल्लेख है।

११—"इस सूक्त (मं० १ सू० ४५) के प्रस्कण्व ऋषि हैं। इस का नाम इस सूक्तके तृतीय मंत्रमें है। (प्रस्कण्वस्य हव श्रुधि। मं० ३) प्रस्कण्व ऋषिकी प्रार्थना सुनो, ऐसा अग्निसे कहा है। इस मन्त्रमें प्रस्कण्वके पूर्व समयके चार ऋषियोका उल्लेख है। प्रियमेधा, अत्रि, विरूप और अङ्गिरा। इन ऋषियोंकी प्रार्थना जैसी सुनी थी, वैसी प्रभु मेरी (प्रस्कण्वकी) प्रार्थना सुनें, यह मन्त्रका आशय है।

प्रियमेघ (आंगिरसः) ऋ० ८।२।१—(४०), ६८—(१६), ६९—(१८), ८७—(६), ९।२८ (६) कुल मंत्र ८६।

अत्रिः (भौमः) ऋ० ५।२७—(६), ३७–४३—(७९), ७६—(५), ७७—(५), ८३–८६—(२७), ९।६७।१०–१२ (३), ८६।४१–४५ (५) कुल मन्त्र १०३।

विरूप (आंगिरसः) ८।४३-(३३), ४४-(३०), ७५-(१६) कुल मन्त्र ७६।

अङ्गिराः—अङ्गिरा ऋषिके मन्त्र अथर्ववेदमें बहुत है, इसलिये अथर्ववेदका नाम 'अङ्गिरा वेदः' ऐसा हुआ। ये चार ऋषि प्रस्कण्वके पूर्व समयके प्रतीत होते हैं। क्योंकि 'जैसी इनकी प्रार्थना सुनी गई थी, वैसी मेरी सुनो, ऐसा इस मन्त्रमे कहा है। म० ४ में 'प्रयमेध' का नाम पुनः आया है'। ५ वें मन्त्रमें प्रस्कण्व ऋषि अपना गोत्र कहता है। (कण्वस्य सूनवः' म० ५) कण्वके पुत्र जिन मन्त्रोंसे तुम्हारी प्रार्थना करते थे वे ही ये मन्त्र हैं। वैसी प्रार्थना हम करते हैं, इसलिए इनको सुनो। पृ० ४१।

१२—"इस सूक्त (म० १ सू० ४७) मे सूक्तकर्ता ऋषिका और उसके पूर्वजोका वर्णन निम्न प्रकार आया है—

(१) कण्वासः वां ब्रह्म कृण्वन्ति (मं० २)—कण्वपुत्र या कण्व-गोत्रमे उत्पन्न ऋषि तुम्हारा स्तोत्र करते हैं। यहाँ (कृण्वन्ति) 'करते हैं' पद है।

(२) सुतसोमाः कण्वासः युवां ह्वन्ते (मं० ४)—सोमरस निकालकर कण्वगोत्रके ऋषि तुम्हें बुलाते हैं, तुम्हारी प्रार्थना करते हैं।

(३) कण्वानां सदसि सोम पपथुः (मं० १०)—कण्वोंकी सभा मे सोमपान तुम दोनोंने किया था।

(४) युवां कण्वं प्रावतम् (म० ५) तुम दोनोंने कण्वकी सुरक्षा की थी। इस प्रकार कण्व ऋषिका और कण्वके गोत्रमें उत्पन्न हुए ऋषियोंका उल्लेख स सूक्तमें है।" पृ० ४७।

१३—(मं० १ सू० ४८) में "त्वां (उषसं) पूर्वे ऋषय जुहुरे (म० १४)—प्राचीन ऋषियोंने उषाका काव्य किया था। वैसा ही काव्य हम कर रहे हैं, अतः—

वः स्तोमान् अभिगृणीहि (मं० १४)–हमारे स्तोत्रोंको भी सुनो और उनकी प्रशंसा करो। यहाँ जैसा पूर्व ऋषियोने उषा देवताका काव्य किया था वैसा हम नूतन ऋषि भी स्तोत्र कर रहे हैं, ऐसा कहा है।" पृ० ५१।

१४—इस सूक्त (मं० १ सू० ५१) के मन्त्र ५ और १३ में 'कण्व' का नाम आया है। यह इसी सूक्तके ऋषि प्रस्कण्वका पिता या गोत्र प्रवर्तक है। कण्व ऋषिके मंत्र इसी ग्रंथके प्रारम्भमें दिये हैं। 'मेध्यातिथि और नीपातिथि' ये भी कण्वके गोत्रमें उत्पन्न ऋषि हैं। मेध्यातिथि के मन्त्र ऋ० ८।१।३।२६ (म० २७), ८।३ में मन्त्र २४ हैं, ८।३३ में मन्त्र १६ हैं, (सब) मिलकर ७० मन्त्र हुए।

नीपातिथिके मन्त्र ऋ० ८।३४।१-१५ कुल मन्त्र १५ हैं। इसके अतिरिक्त त्रसदस्यु, पक्थ, दशव्रज, गोशर्य, ऋजिश्वा ये नाम इस सूक्तके १० वें मन्त्रमें हैं। इनके ऋग्वेदमें ये स्थान हैं—

ऋजिश्वा—भारद्वाजः—ऋ० ६।४६-५२ (म० ६३), ६।६८ (म० १२), ६।१०८।६, ७ (मं० २) कुल मन्त्र ७७ हैं।

त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः—ऋ० ४।४२ (मं० १०), ५।२७ (मं० ६), ६।१८० (मं० १२) कुल मन्त्र २८ हैं। पक्थ, दशव्रज, गोशर्यके मंत्र मिलते नहीं हैं। ये ऋषि प्रस्कण्व ऋषिके पूर्वके प्रतीत होते हैं।" पृ० ५६।

१५—"गौतम ऋषिका पुत्र नोधानामक ऋषि है। ऋग्वेद मं० १ के ५८ से सूक्त ६३ तक इसके सूक्त हैं। तथा ऋ० के मं० ८ का ८८ वाँ सूक्त और नवम मण्डलमें ६६ वे का सूक्त इसी ऋषिका है। अथर्ववेदमें भी इस ऋषिके मंत्र हैं।" इसके विषयमें पं० सातवलेकरजी अपने सुबोध भाष्यके ७ वे भागमें लिखते हैं कि—

"ऋ० ६।८८ सूक्तके प्रथम दो मन्त्र अथर्ववेदमें दो बार आये हैं। अथर्ववेदके नोधाके मन्त्र ऋग्वेदके ही हैं, इसलिये उनका पृथक् विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। अथर्व (२०।३५)

का ऋषि ऋग्वेदमे नोधा गौतम है, अथर्व—बृहत्सर्वानुक्रमणीमें इसका ऋषि नोधा लिखा है। पर विकल्पसे भरद्वाज भी कहा है, वह नितान्त अशुद्ध है। अथर्व—सर्वानुक्रमणीमे इस प्रकारकी भूले बहुत है। इसीलिये यह सूक्त भरद्वाजका नहीं है, नोधाका ही है। अथर्ववेदमें नोधा ऋषिका उल्लेख निम्नाङ्कित मन्त्रोमे है—

तं श्यैत च नौधसं च सप्तर्षयश्च ॥ २६ ॥
श्यैतस्य च वै स नौधसाय च सप्तर्षिभ्यश्च ॥ २७ ॥
श्यैतस्य च वै स नौधसस्य सप्तर्षीणाञ्च ॥ २८ ॥ (१५।२६-२८)

'नौधस्' का यह उल्लेख स्पष्ट है, ऐतरेय ब्रा० मे इसका नाम दो-तीन बार आया है—

बृहता साविमां नौधसे नैवे य ममू जिन्वति। (ऐ० ब्रा० ४।२७)
अस्मा इदु प्रतवसे तुरायेति नोधाः,
त एते प्रातः सवने षलहस्तोत्रियाच्छस्त्वा,
माध्यंदिनेऽहीन सूक्तानि शंसति। (ऐ० ब्रा० ६।१८)
नौधसञ्च कालेयं चानूच्ये (ऐ० ब्रा० ८।१२, १७)
'नौधस्' नामक साम गान है, जो नोधा ऋषिका गाया है।

'अस्मा इदु' (ऋ० १।६१) यह सूक्त नोधा ऋषिका है। नोधा के मन्त्र राज्याभिषेकके समय बोले जाते हैं। यह ऐतरेय ब्रा० में नोधा ऋषिके विषयमें कहा है। ऋग्वेदमें इस ऋषि (नोधा) का नाम निम्नलिखित मन्त्रोमें आया है—

सद्यो भुवद् वीर्याय नोधाः। (ऋ० १।६१।१४)
सनायते गोतम इन्द्र नव्यम्,
सुनीथाय नः शवसान नोधाः। (ऋ० १।६२।१३)
नोधः सुवृक्तिं प्रभरा मरुद्भ्यः। (ऋ० १।६४।१)
नोधा इवाविरकृत प्रियाणि। (ऋ० १।१२४।४)
इन मन्त्रोमें 'नोधा' ऋषिका नाम आया है और उसका गोत्र

भी 'गोतम' कहा है। ये मन्त्र यहाँ दिये हैं। नोधाके विषयमें इतना ही पता लगता है। पञ्चविंश ब्राह्मणमें भी थोड़ा सा उल्लेख आया है।" तथा "मं० १ सू० ६० के मन्त्र ७ में (वय गौतमाः सः) हम गोतम गोत्रमें उत्पन्न हुए ऋषिगण ऐसा अपना गोत्र, नाम 'नोधा' ऋषि बता रहा है।

ऋ० १।५८ मे 'भृगवः' पद भृगु गोत्रके ऋषियोका वाचक दीखता है। ऋ० १।५६ में 'भरद्वाज' पद है। 'शातवनेय' पद है। शातवनेय, यह राजा भरद्वाज ऋषिका आश्रयदाता प्रतीत होता है। ऋषि भरद्वाज शातवनेयका पुरोहित होगा।" पृ० १५।

१६—नोधा ऋषिके पश्चात् ऋ० मं० १ के सू० ६५ से ७३ तक तथा मण्डल ६ का सू० ६७ पराशर ऋषिका है।

पराशर ऋषिके मन्त्रोंमें अग्नि देवताके ही मन्त्र विशेषतया हैं। अग्नि और सोमके सिवाय अन्य देवतापर इस ऋषिके मन्त्र नहीं हैं। अथर्ववेदमें पराशर ऋषिके मन्त्र नहीं हैं।

'पराशरः' पद, निघन्टु ४।३ में पद नामोंमें लिखा है। इसका विवरण श्री यास्कमुनि निरुक्तमें ऐसा लिखते हैं—

पराशरः पराशीर्णस्य वसिष्ठस्य स्थविरस्य जज्ञे। 'पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः' (ऋ० ७।१८।२१) इत्यपि निगमो भवति। इन्द्रोऽपि पराशर उच्यते, पराशातयिता यातूनाम्। 'इन्द्रो यातूनामभवत्पराशरः' (ऋ० ७।१०४।२१) इत्यपि निगमो भवति।

निरुक्त (६।६।३०। (१२१)) अत्यन्त वृद्ध वसिष्ठका (माना हुआ) पुत्र पराशर है। इन्द्रको भी पराशर कहते हैं, क्योंकि वह शत्रुओंका बड़ा दमन करता है। इस विषयमें दो मन्त्र देखने योग्य है—

प्रये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः।
न ते भोजस्य सख्यं मृषन्ताधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान्।
(ऋ० ७।१८।२१)

इन्द्रो यातूनामभवत्पराशरो हविर्मथीनामभ्याविवासताम् ।
अभी दु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एतिरक्षसः ॥
(ऋ० ७।१०४।२१, अथ० ८।४।२१)

'पराशर' शतयातु और वसिष्ठ ये तीनो ऋषि तेरी भक्ति करके यज्ञगृहमें बडे आनन्दित होरहे है । ये तीनो तेरी मित्रताका कभी निरादर नहीं करते हैं । सब विद्वानोकेलिये शुभदायक दिनोका ही उदय होजावे ।' इस मन्त्रमें पराशर, शतयातु और वसिष्ठ इन तीनों का नाम है और यह मत्र वसिष्ठका है । ऊपर दिया हुआ दूसरा मन्त्र भी वसिष्ठ ऋषिका ही है—"इन्द्र दुष्ट शत्रुओंका पूर्णनाश करता है ये शत्रु यज्ञके हविका नाश करते थे । इन्द्रने इनका नाश ऐसा किया, जैसे कुल्हाड़ेसे वनका नाश होता है। अथवा मिट्टीके वर्तन जैसे तोड़े जा सकते हैं।" यहाँ इन्द्रका विशेषण 'परा-शर' (दूर करके नाशकर्ता) इस अर्थका आया है। पूर्व मन्त्रमे यह नाम ऋषिका नाम है, और यहाँपर यह पद इन्द्रका सामर्थ्य बतला रहा है। ऋग्वेदमें इन दो ही मन्त्रोमें 'पराशर' पद आया है।"

भाग ८ पृ० २ ।

आगे पृ० २३ पर श्री प० जी लिखते हैं कि—

"पराशर ऋषिके कुल मन्त्र १०५ ऋग्वेदमें हैं । अन्य वेदोमे इस ऋषिके मन्त्र नहीं हैं। इन १०५ मन्त्रोमे ९१ मन्त्र अग्नि देवताके हैं और शेष १४ मन्त्र सोम देवताके है । इसलिए प्रथम अग्नि-देवताके मन्त्रोका मनन करते हैं । पराशरके इस मंत्रसंग्रह-रूप काव्यमे उपमा, रूपक, तुलना आदिकी इतनी भरमार है, कि कई मन्त्रोमे तो प्रत्येकमे चार चार उपमाएँ है, और एकसे एक अधिक रोचक है। इतनी उपमाएँ किसी अन्य ऋषिके काव्यमें नहीं हैं।"

१७—ऋग्वेदमे गोतम ऋषिका स्थान बहुत ऊँचा है । रघुगण

ऋषिका यह पुत्र है । ऋ० मं० १ सू० ७४ से ९३ तक, २० सूक्त इनके निर्मित हैं । तथा म० ६ के ६७ सू० के ३ मन्त्र इनके हैं और ऋ० मण्डल १० का १३७ वें सूक्तका मन्त्र ३ भी इन्हींका है। गोतम ऋषिके दो पुत्र मन्त्र निर्माता ऋषि हुए हैं। १—नोधा, जिसका वर्णन किया जा चुका है । २—वामदेव है । वामदेवका ऋग्वेदका चतुर्थ मण्डल पूरा निर्मित किया हुआ है । यह चतुर्थ मण्डल ५८९ मन्त्रोंका है । इसमें वामदेव ऋषिके मन्त्र ५६६ हैं । २३ मन्त्र दूसरे ऋषियोंके भी हैं । इसके लिये पं० सातवलेकरजी लिखते हैं कि—

"गोतम ऋषिका वेदोंमें नाम कहाँ तक आया है सो अब देखिये !"

नोधा ऋषिके मन्त्रोंमें—

तं त्वा वयं पतिमग्ने रयीणां प्रशंसामो मतिभिर्गोतमासः ।

(ऋ० १।६०।५)

इन्द्र, ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।

(ऋ० १।६१।१६, अथ० २०।३६।१६)

सनायते गोतम इन्द्र नव्यम्, अत्वाग्नि० । (ऋ० १।६३।९)

अतक्षद् ब्रह्म हरियोजनाय । (ऋ० १।६२।१३)

गोतम ऋषिके मन्त्रोंमें—

अकारि त इन्द्र गोतमेभि एवाग्नि गोतमेभिर्ऋतावा विप्रेभिर-स्तोष्ट जातवेदाः । (ऋ० १।७७।५)

अभि त्वा गोतमा गिरा जातवेदो विचर्षणे ॥१॥

तमु त्वा गोतमो गिरा रायस्कामो दुवस्यति ॥२॥ (ऋ० १।७८)

अपूतास्तिग्म शोचिषे वाचो गोतमाग्नये । भरस्व० ॥

(ऋ० १।७९।१०)

सिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे । (ऋ० १।८५।११)

ब्रह्मकृण्वन्तो गोतमासो अर्कैः० ।

सस्वहं यन्मरुतो गोतमो वः ॥ (ऋ० १ ८८।४-५)

दिवः स्तवे दुहिता गोमतेभिः । (ऋ० १।६२।७)

कक्षीवान् ऋषिके मन्त्रोंमें—

त्वरञ्जपो न पानाय राये सहस्राय तृप्यते गोतमस्य ॥

(ऋ० १।११६।६)

अगस्त्यो (मैत्रावरुणिः) ऋषिके मन्त्रोंमें—

युवां गोतमः पुरुमीलहो अत्रिः दस्रा हवते अवसे० ।

(ऋ० १।८३।५)

कुल उनतीस मन्त्र गोतम ऋषिके ऋग्वेदसे अथर्ववेदमें लिये हैं इनमें १-५७।१-६ ये छः मन्त्र ऋग्वेदमे सव्य ऋषिके हैं, जो अथर्ववेदमे गोतमके नामपर लगाये दीखते हैं । यह अथर्वसर्वानुक्रमकी अशुद्धि है, इनका ऋषि ऋग्वेदका ही योग्य है और यही अथर्ववेदमे लिखना चाहिये । ये ऋग्वेदके ही मन्त्र हैं, इसलिए इनका लेख दुबारा नहीं किया है ।

वामदेव ऋषिके मन्त्रोंमें—

तन्मापितुर्गोतमा दान्वियाय । (ऋ० ४।४।११, का० ६।११)

अवीवृधन्त गोतमा इन्द्र त्वे स्तोमवाहसः । (ऋ० ४।३२।१२)

नोधा ऋषिके मन्त्रोंमें—

आत्वाय मर्क उतये ववर्तति यं गोतमा अजीजनत् ।

(ऋ० ८।८८।४)

(अथर्ववेदमें) मृगार ऋषिके मन्त्रोंमें—

यौ गोतममवथः ॥ (अथ० ४।२६।६)

अथर्वा ऋषिके मन्त्रोंमें—

भरद्वाज गौतम वामदेव० । मृडता नः । (अथ० १८।३।१६)

इतने ऋषियोंके इन मन्त्रोंमें 'गोतम' पद आया है और यहाँके निर्देश मननीय हैं । (वयं गोतमासः त्वा प्रशंसामः) हम गोतम ऋषि तेरी प्रशंसा करते हैं । 'गोतमासः ब्रह्माणि अक्रन' गोतम ऋषियोंने स्तोत्र किये । (गोतमः नव्य ब्रह्म अतक्षत्) गोतम ऋषिने यह नया सूक्त तैयार किया । (गोतमेभिः ब्रह्माणि अकारि) गोतम ऋषियोंने अनेक सूक्त किये । (गोतमेभिः अग्निः अस्तोष्ट) गोतमों के द्वारा अग्नि प्रशंसित हुआ । (गोतम दुवस्यति) गोतम स्तुति करता है । (गोतम ! अग्नये वाचः भारस्व) हे गोतम ! अग्निके लिये वाणीसे स्तोत्र भरदे । (गोतमासः ब्रह्म कृण्वन्तः) गोतमोंने स्तोत्र किये । गोतमेभिः दिवः दुहिता स्तवे) गोतमोंने उषाकी स्तुति की । (गोतमः अवसे हवते) गोतम अपनी सुरक्षाकेलिये स्तुति करता है । (गोतमाः इन्द्रमवीवृधन्त) गोतमोंने इन्द्रकी बधाई की (गोतमा यमजीजनन्) गोतमोंने स्तोत्रको जन्म दिया । इस तरह पूर्वोक्त मन्त्रोंमें गोतमोंने अग्नि, इन्द्र आदि देवताओंके स्तोत्र बनाये, ऐसा कहा है । यहाँ 'अक्रन्, अतक्षत्, अकारि, कृण्वन्तः' ये क्रियापद विचार करने योग्य हैं । 'अतक्षत्' क्रियापद तो लकड़ीसे रथ निर्माण करनेके समान स्तोत्र निर्माण करनेका भाव बता रहा है ।

यहाँ 'गोतमाः, गोतमासः' ये पद अनेक 'गोतम' थे, ऐसा भाव स्पष्टरूपसे बता रहे हैं । अर्थात् यह पद गोतमके वंशमें उत्पन्न ऋषियोंका वाचक है । 'गोतम' पदसे मूल 'गोतम' ऋषिका बोध होता है । पर 'गोतमासः' पद गोतम कुलमें उत्पन्न अनेक ऋषियोंका वाचक है । सम्भव है, कि गोतम ऋषिके गुरुकुलमें जो भी विद्वान होंगे उनका सामान्यसे यह नाम भी होगा ।

उक्त मन्त्रोमें कुछ अन्य बातें भी देखने योग्य हैं । (तृष्णजे

गोतमाय उत्सं सिञ्चन्) प्याससे गोतमके पानी पीनेकेलिये पानी का हौज भर दिया। (तृष्यते गोतमस्य पानाय अपः क्षरम्) गोतम को पानी पीनेकेलिये मिले, इस कारण पानीका प्रवाह बहा दिया। (यौ गोतममवथः) जिन दोनों अश्विदेवोने गोतमकी सुरक्षा की थी। इससे पता लगता है, कि गोतम ऋषिके आश्रममे जल नहीं था। अश्विदेवा ने बडी दूरसे जलकी नहर लाकर आश्रमके हौज भर दिये, जिसके वाद वहाँ जलकी विपुलता होगई। श० ब्रा० १४।१। १०।१८ मे गोतम ऋषिका इतिहास आया है।" पृ० ५,६ भाग ६।

तथा च, "इस मन्त्र १ सू० ७८मे गोतम ऋषिका नाम और उसका गोत्र भी कहा है—

रहूगणाः अग्नये वचः अवोचाम (मन्त्र ५)

गोतमाः गिरा अभि प्रणोनुमः। (म० १)

रहूगणके पुत्र गोतम है यह वात यहाँ सिद्ध होती है। इस लिये 'गोतमो राहूगणः' ऐसा इस ऋषिका नाम हरएक सूत्रपर दिया है।" तथा "इस सूक्तमे अङ्गिरा ऋषिका नाम आया है। 'अङ्गिरस्वत् हवामहे' अङ्गिरा ऋषिने जैसी स्तुति की थी, वैसी ही हम कर रहे है। इस वर्णनसे अङ्गिरा ऋषि गोतमके पूर्व समयका प्रतीत होता है। अङ्गिराः-रहूगणः गोतमः, यह वंश है। गोतमका पिता रहूगण और पितामह अङ्गिरा ऋषि है।" पृ० २२।

आगे पृ० ३७ पर आप लिखते है कि—

"यत्र उक्थ्यः कारुः ग्रावा वदति। (१।८३।६)

जहाँ प्रशसनीय कारीगर कुशलतासे यज्ञ कर्म करनेवाला मन्त्रो के रचयिता ऋषि मंत्र गाते है और सोम कूटनेके पत्थरोका शब्द होता है।"

२८—कुत्स ऋषिः—

ऋग्वेदमे गोतम ऋषिके पश्चात् कुत्स ऋषिके सूक्त है। यह मं० १ सू० ९६ से ९८ तक तथा सू० १०१ से सू० १०४ तक और

१०६ से ११५ तक एवं मं० ६ सू० ६७ के ४५ से मन्त्र ५८ तक तथा च, अथर्ववेद काण्ड १० के सू० ८ का भी यही ऋषि है।

कुत्सके कुलका विचार

"कुत्स ऋषि अनेक होचुके हैं, उनका वर्णन यहाँ करते हैं। देखिये सायण भाष्यमें कहा है—

"अत्र काचिदाख्यायिका श्रूयते। रुरुनामकः कश्चिद्राजर्षिः, तस्य पुत्रः कुत्साख्यो राजर्षिरासीत। स च कदाचित्, शत्रुभिः सह युयुत्सुः संग्रामे स्वयमशक्तः सन् शत्रूणां हननार्थमिन्द्रस्याह्वानं चकार।" इत्यादि।

अर्थात् एक कथा सुनी जाती है। रुरुनामक एक राजा था, उसका पुत्र कुत्स था। वह अपने शत्रुसे लड़नेमें असमर्थ होनेके कारण सहायताकेलिये इन्द्रको बुलाता था। इन्द्रने उसके शत्रुओंका वध किया। इससे दोनोकी मित्रता होगई। एक समय कुत्स और इन्द्र इकट्ठे बैठे थे, उस समय इन्द्रकी पत्नी शची इन्द्रसे मिलनेकेलिये वहां आगई। किन्तु वहाँ इद्र और कुत्स समान वेश धारण किये बैठे थे, इसलिये शची पहिचान न सकी, कि कौनसा इद्र है। यह भाव निम्नलिखित मन्त्रमें आया है।

आ दस्युघ्ना मनसा याह्यस्तं भुवत्ते कुत्सः सख्ये निकामः।
स्वे योनौ निषदन्तं सरूपा वि वां चिकित्सदृतचिद्ध नारी॥४।१६।१०

अर्थात् (हे इन्द्र!) हे इन्द्र! (दस्युघ्ना मनसा अस्तम् आ याहि) शत्रुका वध करनेकी इच्छासे तू कुत्सके घर आया है (कुत्सः च ते सख्ये निकामः भुवत) कुत्स तेरी मित्रताको भी चाहता ही है (स्वे योनौ निषदतम) आप दोनो अपने घरमें बैठे हैं। (ऋतचित् नारी सरूपा वां वि चिकित्सत) सत्य जाननेकी इच्छा करनेवाली तेरी स्त्री दोनोंका समान रूप देखकर आप दोनोके विषयमें संदेह करने लगी।

"कुत्सके वर्णनमें कुत्सको 'आर्जुनेय' कहा है। इसका अर्थ ऐसा होता है, कि यह कुत्स 'अर्जुनी' नामक स्त्रीका पुत्र था। इस विषयमें निम्नलिखित मन्त्र प्रमाण हैं—

१—याभिः कुत्समार्जुनेय शतक्रतू॥ (ऋ० १।११२।२३)

२—अहं कुत्समार्जुनेयन्यृञ्जे॥ (४।२६।१)

३—त्व ह त्यदिन्द्र कुत्समाव ' शुष्ण कुवयम्''' ....
अरन्धय-आर्जुनेयाय शिक्षन् (७।१६।२, अथ० २०।३७।२)

४—वहत्कुत्स मार्जुनेयं शतक्रतुः। (८।१।११)

कुत्सकी माताका नाम ऋग्वेदमें चार बार और अथर्ववेदमें एक बार आया है। वे मन्त्रभाग ऊपर दिये हैं। कुत्सके लिये इन्द्रने इभका नाश किया, ऐसा भाव निम्नलिखित मन्त्रमें है—

अहं पितेव वेतसूँ रभिष्टये तुग्र कुत्सायस्मदिभ च रन्धयम्।
(१०।४६।४)

'मैं (इन्द्र) ने कुत्सके लिए, पिता अपने पुत्रका हित करनेके समान, वेतसूका अभीष्ट सिद्ध कर दिया और उसके शत्रुका वध किया।" भाग १०।

१६—त्रित ऋषिः—कुत्स ऋषिके पश्चात् ऋग्वेदमें त्रित ऋषि के मन्त्र हैं। 'त्रित आप्त्य एक ऋषि था। जिसके देखे सूक्त ऋग्वेद में हैं। इसके नामका उल्लेख जैसा ऋग्वेदमें है, वैसा ही अथर्ववेद में भी है 'त्रित' पदका अर्थ 'तीर्णतमः' अर्थात् अज्ञानसे पूर्णतया मुक्त परमज्ञानी, क्लेशोंसे पूर्णतया छूटा हुआ है। ज्ञान और विज्ञानसे सम्पन्न ऐसा इसका अर्थ है। 'अपां पुत्रः आप्त्यः' जलों का पुत्र विद्युत् अग्नि है, वही आप्त्य त्रित है। अग्नि जैसा तेजस्वी ऋषि ऐसा इसका भाव है। यह विभावसुका पुत्र है ऐसा एक मन्त्र में कहा है, वह मन्त्र यह है—

विभावसुका पुत्र त्रित

(वत्सप्रिः भालन्दनः । अग्निः)

इमं त्रितो भूरि अविन्दद् इच्छन् वैभूवसो मूर्धनि अघ्न्यायाः ।
स शेवृधो जात आ हर्म्येषु नाभिः युवा भवति रोचनस्य ॥
(१०।४६।३)

'(वैभूवसःत्रितः) विभावसुके पुत्र त्रितने इस भूमिके ऊपर अग्नि को प्राप्त करनेकी इच्छा की। वह अग्नि घरोंमें उत्पन्न हुआ और पश्चात् वह प्रकाशका केन्द्र बना।'

यहाँ त्रितका पिता विभावसु है, ऐसा लिखा है। 'आप्त्य त्रित' और 'वैभूवस त्रित' ये एक ही हैं, या दो विभिन्न हैं, इसकी खोज होनी चाहिये। इसके विषयमे वेदमन्त्रोंमें पता नहीं मिला। यदि अन्यत्र किसीको कुछ पता लगे तो वह अवश्य प्रसिद्ध करे। त्रितकी स्त्रियोके विषयमें आगे दिये मन्त्रमे उल्लेख है—

त्रितकी स्त्रियाँ

(श्यावाश्व आत्रेयः । पवमानः सोमः)

आदीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्ति अद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ (९।३८।२)

'(ये त्रितस्य योषणः) त्रितकी स्त्रियाँ पत्थरोंसे हरिद्वर्ण सोमको कूटतीं और इंद्रके पीनेकेलिये रस निकालती हैं।'

यहाँ त्रितकी स्त्रियाँ सोमरस निकालती हैं और इंद्रकेलिये तैयार करती हैं, ऐसा लिखा है। अन्यत्र यज्ञमें ऋत्विज सोमरस निकालते हैं। यहाँ घरमें घरकी स्त्रियोंद्वारा सोमरस निकालनेका वर्णन है। अर्थात्—यह पेय घरेलू है। त्रित यज्ञ करता था, इससे उसकी गणना देवोंमें की जाती थी, ऐसा अगले मन्त्रसे प्रतीत होता है—

देवोंमें त्रितकी गणना

(गृत्समदो भार्गवः शौनकः । विश्वेदेवाः)

अहिर्बुध्न्योऽज एकपादुत । त्रित ऋभुक्षाः सविता चनो दधेऽपां नयात् ॥ (२।३१।६)

"अहिर्बुध्न्यः" अज एकपात्, त्रितः, ऋभुक्षाः, सविता, अपां नयात् ।" इन देवोंमे त्रितकी गणना की है । अर्थात् त्रित ऋषि भी है और देव भी है । अथवा ऋषि होता हुआ देवत्वको प्राप्त हुआ था । क्योंकि यह त्रितके समान शूर था, देखो—

त्रितके समान इन्द्रका शौर्य

(सव्य आंगिरसः । इन्द्रः)

इन्द्रो यद् वज्री धृषमाणोऽन्धसा भिनद् वलस्य परिधीरिव त्रितः ।
(१।५२।५)

'अन्नसे उत्साहित हुए वज्रधारी इन्द्रने, त्रितके समान ही वलके दुर्गकी दीवारोको तोड़ दिया ।'

इस मन्त्रमें कहा है, कि इन्द्रने जो शत्रुके किले तोड़ दिये, वह कर्म त्रितके कर्मके समान ही था । यहाँ इंद्रके शौर्यके साथ त्रितके शौर्यकी तुलना की है । त्रित और इन्द्रकी युद्ध-शौर्यके विषयमें समता यहाँ दिखायी है । देव वीरोंके समान ऋषि भी शूर, वीर, धीर तथा युद्धमे निपुण होते थे, ऐसा इस मन्त्रसे सिद्ध होता है । यही भाव अगले मन्त्रमे देखो—

लड़नेवाला त्रित

(पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः)

अनुत्रितस्य युध्यतः शुष्मम्-आवन् उत क्रतुम् । अन्विन्द्र वृत्रतूर्ये
(८।७।२०)

'वृत्रके साथके युद्धमें इन्द्रके साथ रहकर युद्ध करनेवाले त्रितके बलको और कर्तृत्वशक्तिको तुमने बढ़ाया, या सुरक्षित किया।' यहाँ त्रित इन्द्रके साथ रहकर वृत्रके साथ लड़ता है। इसलिए मरुतोंने त्रितकी सहायता की और त्रितका बल बढ़ाया। जैसे मरुत् इंद्रकी सहायता करते थे वैसे वे त्रितकी भी सहायता करते थे। इससे भी यह सिद्ध होरहा है कि, त्रित भी इंद्रके समान शूर-वीर था। त्रित युद्ध करनेके लिए अपने शस्त्रास्त्र तीक्ष्ण करके सदा सज्ज रखता था।" भाग ११।

ब्रह्म आदि शब्द

उपर्युक्त मन्त्रोंमें ब्रह्म, स्तोत्र, स्तोम, उक्थ, श्लोक, वाक्, मन्त्र, मन्म, गिर्, वाक्, वचस्, शस्त्र आदि आये हैं। जिनका अर्थ, सायण आदि सभी मान्य भाष्यकारोंने मन्त्र या मन्त्रसमूह अर्थात् सूक्त आदि किया है। जैसा कि उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट है। किन्तु एक विद्वान्ने हमारे पास यह लिखकर भेजा था, कि ब्रह्म आदि उपर्युक्त शब्दोंका अर्थ वैदिक-साहित्यमें मन्त्र आदि नहीं है। इसलिए हम यहाँ इस विषयको भी स्पष्ट करना चाहते हैं।

सर्वप्रथम हम ब्रह्म शब्दके ऊपर ही विचार करते हैं। क्योंकि इसी शब्दका अधिक प्रयोग हुआ है।

ब्राह्मण-ग्रन्थ और ब्रह्म

ब्रह्म शब्दके अर्थ, ब्राह्मण ग्रन्थोंमें निम्नप्रकार किये हैं—

"वाग्ब्रह्म" (गो० २।१०)

"वाग्वैब्रह्म" (ऐ० ६।३) श० २।१।४।१०।१४।४।१।२३,

"वागिघब्रह्म" (ऐ० २।१५।४)

"वागिति ब्रह्म" (जै० उ० ३।४।६)

इत्यादि स्थलोंमें वाक् शब्दका अर्थ ब्रह्म किया है।

तथा च—इसी प्रकार "वेदोब्रह्म" (जै० उ० ४।२५।३)

"एतद्वैयजुः ब्रह्मरचोहाः" (श० ४।१।१।२०)

उपर्युक्त स्थानोंमें वाक्को ब्रह्म कहा गया है। और वाक् शब्द का अर्थ करते हुए ब्राह्मण-ग्रन्थोंमे लिखा है कि—

"वाग्वै वृहती" श० १४।४।१।२२)

"वागित्यृक्" (जै० उ० १।६।२)

"वागेव ऋग्वेदः" (श० १४।४।३।१२)

इत्यादि प्रमाणोंसे स्पष्ट सिद्ध है कि वाक् शब्दका अर्थ ऋग्मत्र तथा ऋग्वेद है।

तथा च ब्राह्मण-ग्रन्थोमें लिखा है कि—

"ब्रह्म वा ऋक्" (कौ० ७।१०) तथा शतपथ ब्राह्मण (३।३।४।१७) में आये हुए ब्रह्म शब्दका अर्थ मन्त्र ही किया है। तथाच, श० प० ब्रा० में स्पष्ट लिखा है कि "ब्रह्म वै मन्त्रः" (७।१।१।५) यहाँपर स्पष्टरूपसे ब्रह्मका अर्थ मन्त्र किया है।

किन्तु एक विद्वान्का कथन है कि यहाँ ब्रह्मको मन्त्र बताया है, न कि मन्त्रको ब्रह्म। उनकी सेवामें हम निवेदन करना चाहते हैं कि वे पूरी कण्डिकाका तथा उसके सायणभाष्यका अवलोकन करें। कण्डिका निम्न प्रकार है—

"ब्रह्म वै पलाशो ब्रह्मणैव तदवसितान्व्युदूहति मंत्रेण ब्रह्मवै मंत्रो ब्रह्मणैव तदवसितानव्युदूहति तामुदीचिमुदस्यति।"

इस कण्डिकामें स्पष्टरूपसे मंत्रेण कहकर उसका अर्थ करते हुए लिखा है कि "ब्रह्मवै मंन्त्रः" अर्थात् मन्त्र ब्रह्म है।

श्री सायणाचार्यने भी यहाँ हमारे ही मतकी पुष्टिकी है। अतः यह सिद्ध है कि ब्राह्मण ग्रन्थोंमें भी ब्रह्मका अर्थ मन्त्र भी है।

निरुक्त व ब्रह्म शब्द

नि० ४।१।६ में "तत्र ब्रह्म इतिहासमिश्रं ऋङ्‌मिश्रं गाथामिश्रं भवति" यह पद आया है। ऋग्वेदके "त्रितं कूपे अविहितम्" सूक्त की व्याख्या करते हुए यह वचन कहा गया है। इस पदमें 'तत्र' शब्द विशेष ध्यान देने योग्य है। क्योंकि यह तत्र शब्द ऋग्वेद के "त्रितं कूपे"········इस सूक्का द्योतक है। इसपर दुर्गाचार्य लिखते हैं कि—

"तत्र ब्रह्मेतिहासमिश्रम। तत्र तस्मिन सूक्ते ब्रह्म, इतिहासमिश्रम् इतिहासयुक्तमित्यर्थः। "तद् यथा—'त्रितः कूपेऽवहितो देवान् हवत ऊतये"—इत्येवमादि (ऋ० सं० १, १०, ५, १७)" "ऋग्मिश्रं" "गाथामिश्रं" च "भवति"।

इसका अनुवाद करते हुए पं० सीताराम जो शास्त्री भिवानी निवासी लिखते हैं, कि—"इससे भाष्यकारने यह दिखाया है कि यह भी एक सूक्तोंका स्वभाव है। उनमें इतिहास भी होता है।" तथा च—प्रकरणसे भी यहाँ ब्रह्म शब्दका अर्थ सूक्त ही होता है।

इसी प्रकार (नि० अ० १०) में "ब्रह्मणस्पतिः" की व्याख्या करते हुए निरुक्तिकार यास्कने "ब्रह्मणस्पतिः, ब्रह्मणः पाता पालयिता वा लिखकर हमारे मतकी पुष्टि की है। यहाँपर दुर्गाचार्य लिखते हैं कि—

ब्रह्म=अन्नम्, ऋगादि वा, अर्थात् ब्रह्म=अन्न अथवा ऋगादि का पालन करनेवाला होनेसे ब्रह्मणस्पति कहलाता है। इससे सिद्ध है कि निरुक्तिकारके मतमें भी ब्रह्म शब्दका अर्थ मंत्र व सूक्त आदि है।

"तैत्तिरीयसंहिता" जिसका संपादन पं० सातवलेकरजीने किया है, उसकी भूमिकामें प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् प० गजानन्दजी शर्माने "मन्त्राः ब्रह्मवाचकाः" यह सुर्खी देकर इस विषयमें अनेक प्रमाण उपस्थित किये है। यथा—

(१) विश्वामित्रस्य रक्षति "ब्रह्मेदं" भारतं जनम्) ऋ० ३।५३।१२)

(२) "ब्रह्माणि" मन्दन्गृणतामृषीणाम् (ऋ० १०।८६।१६)

(३) "ब्रह्मणा" ते ब्रह्म युजा युनज्मि (ऋ० २।३५।४,
अथ० २०।८६।१)

(४) नि"र्ब्रह्मभि"रधमो दस्युमिन्द्र (ऋ० १।३३।६)

(५) ज्येष्ठ राजं "ब्रह्मणां" ब्रह्मणस्पते (ऋ० २।२३।१,
तै० सं० २।३।१४३, का० १०।१३)

(६) गूलहं सूर्यं तमसाऽपव्रतेन तुरीयेण "ब्रह्मणा"ऽविन्द दत्रिः
इति (ऋ० ५।४०।६)

(७) ते च ऋगादयो मन्त्राः वाग्रूपाः वाच एव प्रत्यक्ष ब्रह्म-रूपाः परोक्षेण परमेण ब्रह्मात्मना मिथुनीभूताः, सत्याः, ब्रह्मवस्तुवत् नित्याः सत्यधर्मयुक्ताः, परोक्षस्यापि परब्रह्मणो यथावत् स्वरूपतत्त्वावगमे प्रत्यक्षप्रमाणभूताश्च भवन्ति। तथा च (ऋङ् मन्त्रवर्णो) "यावद्ब्रह्मविष्ठितं तावती वाक्" इति (ऋ० १०।११४।८ ऐ० आ० १।३।८) तस्येदमुपन्या-स्यानब्राह्मणम् । "यत्र हक्वच ब्रह्म तद् वाक्" यत्र वा वाक् तद् वा ब्रह्मेत्येतदुक्त भवति" इति (ऐ० आ० १।३। ८) वाच्यवाचकयोरभेदस्तादात्म्यञ्च क्वचित्त् तदन्यतरद्या सर्वेषां शास्त्रचिन्तकानां शब्द प्रामाण्यवादिनामभिमतं न्यायसिद्धं प्रसिद्धतर वस्तुतत्त्वम। अत एव प्रत्यक्षं ब्रह्मैव वाक्, वागेव प्रत्यक्षं ब्रह्म, परोक्षं परं ब्रह्मैव, तस्याः, अधिपतिः परमः पुरुषः, इति, तत्त्वदर्शनेन वाग्ब्रह्मणो-स्तयोः, ब्रह्मब्रह्मणस्पतिशब्दाभ्यां, वेदेषु असकृदभिष्टुतिः सर्वथा सगच्छते। "वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये" (ऋ० १०।८१।७) "ज्येष्ठराज ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पते" (ऋ० म० २।

२३।१) "एष उ एव ब्रह्मणस्पतिः" वाग्वै ब्रह्म तस्या एष पतिः" इति औपनिषदं ब्राह्मणम्। (बृ० उ० १।३।२१)

इसी प्रकार काण्वसंहिताकी भूमिकामें श्री पं० सातवलेकरजीने "कण्वा ब्रह्म कृण्वन्ति" सुर्खी देकर अनेक प्रमाणोंसे इस विषयकी पुष्टि की है। हम उनमेंसे केवल दो प्रमाण उपस्थित करते हैं—

(१) "कण्वासो वां ब्रह्म कृण्वन्त्यध्वरे तेषां सशृणुतं हवम्" (ऋ० १।४७।२) इस मन्त्रका निम्न अर्थ किया है—"कण्वा वामश्विनोर्युवयोर्यागे ब्रह्मस्तोत्ररूपं मन्त्रसमूहं कृण्वन्ति कुर्वन्ति। तत्तु यागेऽध्वरे गीयते। तेषां कृण्वानां हवमिममाह्वानं शृणुतमिति।

(२) "कृण्वास्त्वा ब्रह्मभिः स्तोमवाहस इन्द्रायच्छन्त्या गहि। (८।४।३) इस मन्त्रका निम्न अर्थ किया है—देवातिथिः काण्व इन्द्रस्तवे कथयति, 'यत्कण्वा, हे इन्द्र! त्वां स्तोमवाहराः स्तोमानां वोढारो ब्रह्मभिः सूक्तैः सहायच्छन्ति, आगच्छन्ति, त्वां प्राप्नुवन्ति'।

तथा च कौत्स्य सूत्रमें स्पष्टरूपसे लिखा है कि "ऋचं गाथां ब्रह्म परं जिगासन्" (१३५।७६) अर्थात् ब्रह्म शब्द गाथा और ऋचाका वाचक है।

तथा च तै० ब्रा० १।३।२।६ में कहा है—"यद्ब्रह्मणः शमलमासीत् सा गाथा नाराशँस्यभवत्" यहांपर भी ब्रह्म शब्दका अर्थ ऋग्वेद ही है।

तथा च आपस्तम्ब श्रौत सूत्रमें भी स्पष्ट है कि "शौन शेपमाख्यायते" ऋचोगाथामिश्राः परः शताः परः सहस्रा वा" १८।१६ अर्थात् शौनशेपके उपाख्यानसे यह प्रतीत होता है कि बहुत सी ऋचाएँ गाथामिश्र होती हैं। इसीको निरुक्तकारने इस प्रकार व्यक्त किया है—

"तत्रेतिहासमिश्रमृग्मिश्रं गाथामिश्रं भवति" तथा च आश्वलायन गृह्यसूत्रके टीकाकार नारायण लिखते हैं—"गाथा नाम ऋग्विशेषः" (३।३।१)। अर्थात्—विशेष प्रकारके ऋग्वेदके मन्त्रोंका

नाम गाथा है। इस प्रकार ऋग्वेदमें शौनशेपकी कथावाले सूक्तको सभी आचार्योंने गाथा और इतिहासमिश्र बताया है। तथा च इसी बातको निरुक्तिकारने भी सूक्त शब्दको पर्यायवाची ब्रह्म शब्द रखकर विवेचन किया है।

उपर्युक्त अनेक पुष्ट प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध है कि ब्रह्म शब्द का अर्थ वेद, मन्त्र, सूक्त, ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदादि भी होता है।

श्लोक शब्द

जिस प्रकार ब्रह्म शब्द मन्त्रवाचक है, उसी प्रकार श्लोक शब्द भी मन्त्रवाचक है। यथा—

शतपथब्राह्मण (१४।७।२।११) में यजुर्वेदके "अन्धन्तमः प्रविशन्ति" इस मन्त्रको श्लोक कहा है। तथा च—बृहदारण्यकोपनिषद् (अ० ४।३।११) मे "तदेते श्लोका भवन्ति" लिखकर आगे मन्त्र लिखे गये हैं, इससे स्पष्ट सिद्ध है कि उपनिषद्कार श्लोक शब्द से मन्त्रका अर्थ ग्रहण करते हैं। तथा च—श्री शंकराचार्यने भी इसका भाष्य करते हुए स्पष्ट लिखा है कि—"एते श्लोका मन्त्रा भवन्ति" तथा इसी प्रकार (बृ० १।५।२३) में "अत्यैष श्लोको भवति" लिखकर भी उपनिषत्कार मन्त्रको उधृत करते हैं। तथा यहां भी श्री शंकराचार्य "एष श्लोको मन्त्रो भवति" लिखकर श्लोक का अर्थ मन्त्र करते हैं।

तथा च—छान्दोपनिषद् (८।६।६) में "तदेष श्लोकः" कहकर श्लोकका अर्थ मन्त्र करते हैं) इसी प्रकार (७।२६।२) में भी इसी प्रक्रिया के अनुसार "तदेव श्लोकः" कहकर मन्त्र उपस्थित किया गया है।

तथा च—(५।१०।८) मे भी इसी प्रकार श्लोक कहकर मन्त्र उद्धृत किया है। तथा—(५।२।८) मे भी श्लोक शब्दसे मन्त्र ग्रहण किया गया है। पुनश्च—(२।२७।२) मे भी यही क्रम है। इसी प्रकार

यजुर्वेद (अ० १८।१) में आये हुए श्लोक शब्दके अर्थ, महीधर आदि सभी आचार्योंने मन्त्र किये हैं।

वाक् शब्द

वैदिक निघण्टुमें वाक्के ५७ नाम आये हैं, उनमें श्लोक, ऋक्, गाथा, अक्षरम्, वाक्, अनुष्टुप आदि भी हैं। इनमें स्पष्ट रूपसे ऋक् मन्त्रोंके वाक् शब्दका प्रयोग हुआ है। क्योंकि ये सब शब्द समानार्थक है। गाथा शब्दके अपने निरुक्त भाष्यमें श्री दुर्गाचार्य लिखते हैं कि—"ऋक्प्रकार एव कश्चित् गाथेत्युच्यते" अर्थात् ऋक् मन्त्रोंके विशेष प्रकारका नाम गाथा है। अतः सिद्ध हुआ कि ये समस्त शब्द, एकार्थ अर्थात् ऋचाके वाचक हैं।

तथा च—वाक् शब्दके अर्थ ब्राह्मण ग्रन्थोंमे निम्न प्रकार किये हैं—

१—"वाग्वैबृहती" (श० १४।४।१।२२)

२—"वागेव संस्तुप् छन्दः" (श० ८।५।२।५)

३—"वाग्वा अनुष्टुप्" (कौ० ५।६)

४—"वागित्यृक्" (जै० उ० ४।२३।४)

५—"वागेव ऋग्वेदः" (श० १४।४।३।१२)

६—"वाग्ब्रह्म" (कौ० उ० २।१०)

७—"वागिति तद्ब्रह्म" (जै० उ० २।९।६)

८—"वागुक्थम्" (श० १।५)

९—"वाग्घिराज्ञम्" (ऐ० ३।४४)

१०—वाक् शंसः" (ऐ० २।४)

११—"वाग्वैरथन्तरम्" (ऐ० ४।२८) इत्यादि प्रमाणोंसे स्पष्ट सिद्ध है कि बृहती, अनुष्टुप्, संस्तुप्, ऋक्, ब्रह्म, उक्थ आदि शब्द समानार्थक हैं।

शस्त्र और स्तोत्र

"प्रउगं शसति", "निष्केवल्यं शसति" इत्यादि वाक्योंमें शंसति क्रियाके द्वारा जिनका विनियोग होता है, वे शस्त्र कहलाते हैं तथा "आज्यैः स्तुवते", "पृष्ठैः स्तुवते" इत्यादि वाक्योंसे स्तुवते या स्तौति क्रियाके द्वारा जिन मन्त्रोंका विनियोग होता है, वे स्तोत्र कहलाते हैं। एवं स्तोत (मन्त्र) गाये जाते हैं और शस्त्र गाये नहीं जाते। उपर्युक्त प्रमाणसे स्पष्ट सिद्ध है, कि ऋग्वेदके मंत्रों को ही स्तोत्र कहते हैं। अतः स्तोत्र, मन्त्र, सूक्तादि शब्द एकार्थ-वाचक हैं। प्रमाणार्थ निरुक्त दैवत काण्ड अध्याय १२ को देखें।

"ऋध्याम स्तोम सनुयाम वाजमानो मन्त्र सरथेहोपयातम्।"

यहाँपर आये हुए मन्त्रका अर्थ 'मननीयं स्तोत्रं' किया है। तथा उक्त मंत्रमें आये हुए स्तोम शब्दका अर्थ भी स्तोत्र, अर्थात् सूक्त ही है, इसमें स्तोतको ऋध्याम अर्थात् ऋध्यास (वर्द्धयेम) बढ़ानेकी प्रार्थना की गई है। इसी प्रकार स्तोम, उक्थ आदि सम्पूर्ण शब्द मन्त्रवाचक प्रसिद्ध ही हैं। अतः उनपर लिखना कोई आवश्यक नहीं। क्योंकि इसमे विद्वानोका मतभेद भी नहीं है।

दो प्रकारके ऋषि

वैदिक वाङ्मयमे दो प्रकारके ऋषि माने गये हैं। १—मन्त्रकृत् ऋषि, २—मन्त्रपति ऋषि। यथा—

नम ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्रपतिभ्यः मा मां ऋषयो मन्त्रकृतो मन्त्रपतयः परादुः माऽहं ऋषीन् मन्त्र-कृतो मन्त्रपतीन् परादाम्। (तै० आ० ४।१)

इसी बातकी पुष्टि पुराणकारोने निम्नप्रकारसे की है—

उतथ्यश्च भरद्वाजस्तथा वाजश्रवा अपि।
आयाप्यश्च सुवित्तिश्च वामदेवस्तथैव च॥ १०१॥

औगजो बृहदुक्थश्च ऋषिर्दीर्घतपास्तथा ।
कक्षीवांश्च त्रयस्त्रिंशत् अङ्गिरसोवराः ।
एते मन्त्रकृतः सर्वे काश्यपांस्तु निबोधत ॥ १०२ ॥

तथा च—अद्रिपेत्र, ह्यरूपश्च वीतहव्यः सुमेधसः ।
वैन्यः पृथुर्दिवोदासः प्रश्वारो गृत्समानभः ।
एकोनविंशदित्येते ऋषयो मन्त्रवादिनः ॥ ६७ ॥
(वा० पु० अ० ५६)

यहाँपर दो प्रकारके ऋषि बतलाये गये हैं, १—मन्त्रकृत् और २—मन्त्र-व्याख्याता । पुराणोंमें इन मन्त्रकृत् ऋषियोंके वंशका विशद्‌रूपसे वर्णन किया गया है । वेदोंका ध्यानपूर्वक अध्ययन करनेसे स्पष्ट विदित हो जाता है कि यहाँपर मन्त्रकृत् ऋषि बताये गये हैं । प्रायः उन्होंने और उनके वंशजोंने ही मन्त्रोंका निर्माण किया है ।

तथा च—"अहिर्बुध्न्यसंहिता" अ० ११ में लिखा है—

अथ कालविपर्यासाद् युगभेद समुद्भवे ।
त्रेतादौ सत्वसंकोचाद्रजसि प्रविजृम्भिते ।
अपान्तरतमानाम मुनिर्वाक् संभवो हरेः ॥
कपिलश्च पुराणर्षिरादिदेव समुद्भव ।
हिरण्यगर्भो लोकादिरहं पशुपतिः शिवः ।
उदभूत्तत्र धीरूप मृग्यजुः साम संकुलम् ।
विष्णु संकल्पसम्भूतमेतद् वाच्यायनेरितम् ॥

अर्थात्—वाक्‌का पुत्र "वाच्यायन" अपर नाम अपान्तरतमा था । (कालक्रमके विपर्यय होनेसे त्रेता युगके आरम्भमें) विष्णुकी

आज्ञासे अपरन्तरतमा, कपिल और हिरण्यगर्भ आदिकोंने क्रमशः ऋग्यजु सामवेद सांख्यशास्त्र और योग आदिका निर्माण किया। अर्थात् कपिलदेवने सांख्य दर्शन बनाया और हिरण्यगर्भने योग-दर्शन बनाया तथा अपान्तरतमाने ऋग्, यजुः व सामवेदका निर्माण किया। तथा वा० पु० अ० ५६ में लिखा है "कि प्रतिमन्वन्तरं चैव श्रुतिरन्या विधीयते" ॥ ५६ ॥ अर्थात् प्रत्येक मन्वन्तर के समय नवीन श्रुतियोंकी रचना की जाती है। प्रत्येक देवताके लिए ऋग्, यजुष्, साम जिस रीतिसे पूर्व बनाए जाते थे, इसके अलावा आगे चलकर श्लोक ८५ से ९० तक मन्त्रकर्ता (मन्त्रकृतः) ऋ० के नामोंका भी उल्लेख है। तथा च, वा० पु० अ० ५६ में ४ या ५ वर्षका युग माना जाता था। और उन वर्षोंके नाम अग्नि सूर्य, सोम, वायु, आदि दिये हैं। इससे विदित होता है कि अग्नि आदिसे वेदोंकी उत्पत्ति किस तरह है। वह वर्णन भी इन अग्नि आदि संवत्सरोंसे उत्पत्ति चलानेका संकेत कर रहा है। इससे हमारी कल्पनाकी पुष्टि होती है।

वेद-निर्माता ऋषि

वायुपुराण, ब्रह्माण्डपुराण और मत्स्यपुराणमें वेदकर्ता ऋषियों का निम्न प्रकारसे वर्णन आया है—

भृगुर्मरीचिरत्रिश्च ह्यङ्गिराः पुलहः क्रतुः।
मनुर्दक्षो वसिष्ठश्च पुलस्त्यश्चेति ते दश ॥
ब्रह्मणो मानसा ह्येते उद्भूता स्वयमीश्वराः
परत्वेनर्षयो यस्माद् स्मृतास्तस्मान्महर्षयः ॥
ईश्वराणां सुता ह्येते ऋषयस्तान्निबोधत।
काव्यो बृहस्पतिश्चैव कश्यपश्च्यवनस्तथा ॥

उतथ्योवामदेवश्च अगस्त्यश्चौशिजस्तथा ।
कर्दमो विश्रवाः शक्तिर्वालखिल्यास्तथार्वतः ॥
इत्येते ऋषयः प्रोक्तास्तपसा चर्षितां गताः ।
ऋषिपुत्रानृषीकांस्तु गर्भोत्पन्नान्निबोधत ॥
वत्सरो नग्नहूश्चैव भरद्वाजस्तथैव च ।
ऋषिर्दीर्घतमाश्चैव बृहदुक्थः शरद्वतः ॥
वाजश्रवाः सुवित्तश्च वश्याश्वश्च पराशरः ।
दधीचः शंशपाश्चैव राजा वैश्रवणस्तथा ॥
एते मन्त्रकृतः सर्वे कृत्स्नशस्तान्निबोधत ।
भृगुः काव्यप्रचेताश्च दधीचो ह्यात्मवानपि ॥
(वायु० पु० अ० ५६) (ब्र० पु० २।३२।६२) (म० पु० १४५।५८)

अर्थात्—भृगु, मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, मनु, दक्ष, वसिष्ठ, पुलस्त्य, काव्य, बृहस्पति, कश्यप, च्यवन, उतथ्य, वामदेव, अगस्त्य, औशिज, कर्दम, विश्रवा, शक्ति, वालखिल्य, अर्वत, वत्सर, नग्नहू, भरद्वाज, दीर्घतम, बृहदुक्थ, शरद्वत, वाजश्रवा, सुवित्त, वश्याश्व, पराशर, दधीच, शंशपा, वैश्रवण, प्रचेता इत्यादि समस्त ऋषियोंको वेदमन्त्रोंका निर्माता कहा गया है ।

तथा च, इतिहासमें भी इस बातकी निम्न प्रकारसे पुष्टि होती है, कि—ब्राह्मण वेदोंके निर्माता थे, "मज्झिमनिकाय" २।५।६ में बुद्ध के श्रावस्तीमें विहार करनेका उल्लेख है, वहाँ उन्होंने कहा है—"जो वेदोंके कर्ता, मन्त्रोंके प्रवक्ता, ब्राह्मणोंके पूर्वज ऋषि थे"—अट्टक, वामक, वामदेव, विश्वामित्र, जमदग्नि, अङ्गिरा, भारद्वाज, वसिष्ठ, कश्यप, भृगु आदि ।"

इस प्रकारके प्रबल प्रमाणोंसे वेदोंका ऋषियों द्वारा निर्मित होना सिद्ध होता है । किन्तु इतनेपर भी साम्प्रदायिक विद्वानोंका

कथन है, कि यहाँ मन्त्रोंके दर्शक होनेका भाव है, निर्माता आदिका नहीं। वे अपनी पुष्टिमे कहते हैं कि—

ऋषिर्दर्शनात् (निरुक्त) तथा च ऋषयो मंत्रद्रष्टारः।

आदि अनेक प्रमाणाभास देकर अपना मन सन्तुष्ट करते हैं। किन्तु यहाँपर यह शंका उत्पन्न होती है कि मन्त्रद्रष्टासे क्या अभिप्राय है? क्या साइनबोर्डपर लिखे हुए मन्त्रोंको देखनेवालोंका का नाम ऋषि है, अथवा किसी व्यक्तिविशेषके स्थानपर मन्त्र रख रखे हैं, जहाँ ये ऋषि लोग देखने जाते हैं। तब ये भोले भाई कहते हैं—कि मन्त्र 'द्रष्टा' का अर्थ है 'मन्त्रार्थद्रष्टा'। परन्तु जो प्रश्न पूर्व थे वही अब भी है। अर्थात् मन्त्रार्थ क्या चीज है, जिस को ऋषि लोग देखते थे? कोई पर्वत था, मनुष्य था अथवा कोई पशु-पक्षी था जिसको देख लेते थे और ये ऋषि बन जाते थे। फिर भाइयोंकी बुद्धिपर जोर पड़ता है तो कहते हैं, कि ऋषि लोग योग समाधि द्वारा मन्त्रोंके अर्थोंको देखा करते थे। यथा—

ऋषिरतीन्द्रियार्थद्रष्टा मन्त्रकृत्। (सायण)

अर्थात् ऋषि अतीन्द्रियार्थ द्रष्टा होनेसे मंत्रकार कहे गये हैं। परन्तु यहाँ प्रश्न होता है, कि जो वस्तु इन्द्रियोंसे परे है उसका देखना कैसे हो सकता है? यदि कहो—देखनेके अर्थ अनुभवके हैं तो भी नहीं बनता, क्योंकि अनुभव किसका? यदि कहो कि मंत्रके अर्थका, तो मन्त्रका अर्थ तो है ही नहीं। उसका अनुभव कैसा? क्या स्वरूपके दर्शनकी तरह दर्शन करते थे? यदि कहो अर्थ तो विद्यमान था तब सभी दर्शन कर सकते थे।

इनकी क्या विशेषता थी? यदि कहो, कि सबको तो वे ऋषि नहीं दिखलाते थे तो बात दूसरी है।

मन्त्र-द्रष्टा तथा मन्त्रार्थ-द्रष्टाकी उपर्युक्त व्याख्याओंमे शब्दाडम्बरके अतिरिक्त कुछ भी सार नहीं है। जो भाई ऋषिका अर्थ मन्त्रद्रष्टा आदि करते हैं और (ऋषिर्दर्शनादादि) प्रमाण उपस्थित करते

हैं उनको निम्नलिखित प्रमाणोंपर विचार करना चाहिए—

ऋषीणामपि मन्त्रब्राह्मणदर्शिनाम् । 'शङ्करभाष्य'
वेदान्त १।३।३३

यहाँपर शंकराचार्यजीने ऋषियोंको मन्त्रोंका दर्शक तथा, ब्राह्मण-ग्रन्थोंका भी दर्शक लिखा है। अब जो भाई दृश् धातुका अर्थ करोति नहीं मानते उनके मतमें इस सूत्रकी क्या सगति लगेगी। या तो उनको मन्त्र और ब्राह्मण-ग्रंथ दोनोको ईश्वरोक्त मानना पड़ेगा। अथवा दोनोको ऋषिकृत, दोनो ही बातोंमें उभयतः 'पाशारज्जुन्याय' से उन्हींके पक्षका खण्डन होता है। तथा च—

स एतं त्रिवृतं सप्त तन्तुमेकविंशतिसंस्थं यज्ञमपश्यत् ॥
(गो० पू० १।१२)

य एव मन्त्रब्राह्मणद्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते खल्वितिहास-पुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति ॥
(४।१।६२ वा० भा० न्या०)*

उपर्युक्त सभी प्रमाणोंमें यज्ञ करनेवालेको 'यज्ञमपश्यत्' कहा है अर्थात् यज्ञ किया। तथा दूसरेमें भी ऋषियोंको मंत्र (वेद) और ब्राह्मण ग्रंथोका 'द्रष्टा' कहा है तथा उन्होने ही इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र आदि भी देखे, ऐसा कहा है। इससे स्पष्टसिद्ध है कि मन्त्र बनानेवालोंको ही मन्त्रद्रष्टा कहते थे और वे कृत अर्थमें आदरार्थ दृश् धातुका प्रयोग करते थे। इसीलिये जहाँ २ ऋषियोंको मंत्रद्रष्टा कहा है वहाँ वहाँ मन्त्रकर्तासे ही अभिप्राय है।

तथा च, न्या० अ० २।१।६७ की व्याख्या करते हुए वात्स्यायन मुनि लिखते हैं कि—

य एवाप्ता वेदार्थानां द्रष्टारः प्रवक्तारश्च त एवायुर्वेदप्रभृतीनामिति

यहाँपर आचार्यने वेदो तथा वेदार्थके साथ साथ ऋषियोक

है और वादीके मतमें कर्ताका अर्थ 'दर्शक' है, परन्तु मित्रोको खुश करनेकेलिये उनके अर्थको स्वीकार करके इसकी परीक्षा करते हैं।

१—प्रथम बात तो यह है कि 'ऋषिर्दर्शनात्' यह वाक्य पहले आया है और इसके पश्चात् आया है 'कर्ता स्तोमानाम्' जिसका स्पष्ट अभिप्राय है, कि ऋषिने दर्शकके स्पष्ट अर्थ करनेको यह पिछली पंक्ति कही है। अतः ऋषिका अभिप्राय दर्शक शब्दसे 'कर्ता' का ही है। क्योंकि अन्तिम निर्णय ही मान्य होता है।

२—'ऋषिर्दर्शनात्' यह निरुक्ति ऋग्वेदमें आये हुए ऋषि शब्द की है। अब यदि वादी चाहे ऋषिको द्रष्टा माने अथवा कर्ता माने, परन्तु व्यक्ति विशेष तो मानता है। अतः दर्शक माननेपर भी वेदोंमे ऋषिका (जो व्यक्ति विशेष है) वर्णन मानना पड़ेगा, ऐसा माननेपर वादीका सम्पूर्ण मनोरथ धूलमें मिल गया। क्योंकि दोनों अवस्थामें उनके अपने सिद्धान्तकी हानि है। वास्तवमें जितना इस विषयपर विचार किया जाता है, उतना ही ईश्वरीय ज्ञानके पक्षका नाम शेष रह जाता है। अतः हमारा पक्ष युक्ति और प्रमाणसे संगत है एवं सर्वमान्य है।'

निरुक्त, १०।४२ मे "अवसवेत्" शब्दपर विचार करते हुए लिखा है कि—

अभ्यासे भूयां समर्थं मयते यथाहो दर्शनीयाहो दर्शनीयेति।

अर्थात्—यह अभ्यास प्रायः देखा जाता है। जैसे, दर्शनीयाहो दर्शनीय इति अतः यहां भी अवसवेत् शब्द दो बार आया है और विशेषार्थ द्योतक है।

अथवा 'तत्पुरुच्छेपस्य शीलम्' यह पुरुच्छेप ऋषिका स्वभाव है, जोकि इस प्रकारकी वह कविता बनाता है, जिससे एक पद दो बार आवे। इस प्रमाणसे ऋषि-विषयक जितनी समस्यायें थीं वे सब हल हो गईं। अब किसीको ननु नच करनेका अवकाश ही

महर्षि यास्कने नहीं छोड़ा। यदि यास्क मन्त्रोंको ईश्वरकृत मानते होते तब तो उनको यहां पुरुच्छेपका शील न बतलाकर ईश्वरका स्वभाव बतलाना चाहिये था परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। अतः स्पष्ट है कि निरुक्तकार पुरुच्छेप ऋषिको मन्त्र-कर्ता मानते थे। यदि आप पुरुच्छेपका अर्थ ही ईश्वर करें तब तो आपपर और भी आपत्तिका पहाड़ आकर गिर पड़ेगा। क्योंकि यह द्विरुक्त सब मन्त्रोंमें तो है नहीं, कुछ मन्त्रोंमें है। अतः जिनमें यह द्विरुक्त है वे ही मन्त्र ईश्वरकृत ठहरेंगे, अन्य नहीं। अतः यहां ईश्वर अर्थ कदापि नहीं लिया जा सकता। जो पाठक इस पुरुच्छेप ऋषिकी इस काव्य पटुताको देखना चाहें वे इस ऋषिके बनाये मन्त्रोंका दर्शन करें। उनको प्रत्यक्ष इस ऋषिके स्वभावका पता लग जावेगा। इसके मन्त्र, ऋग्वेद मं० १ सू० १२७ से १३९ सूक्त तक हैं।

इसी स्थान पर दुर्गाचार्य अपनी व्याख्या में लिखते हैं कि—

पुरुच्छेपस्य मन्त्रदृशः शीलम्
स हि नित्यमभ्यस्तैः शब्दैः स्तौति।

अर्थात् यह पुरुच्छेप मन्त्र-द्रष्टाका स्वभाव है। क्योंकि वह नित्य अभ्यस्त शब्दोंसे ही स्तुति करता है। जो लोग मन्त्र द्रष्टा शब्द देखकर 'डूबतेको तिनकेका सहारा' इस कथनके अनुसार इसका सहारा लेते हैं, उन्हें यहां विशेष निराश होना पड़ेगा।

क्योंकि जो मन्त्र दर्शक होगा वह तो अपने नित्यके अभ्यस्त शब्दोंके अर्थको जाननेका प्रयत्न करेगा अथवा उसे जानेगा और यदि करेगा भी तो वह स्तुति वेदमें क्यों लिखी

जाती। अतः स्पष्ट है, कि पुरुच्छेप ऋषिने अपने नित्यके अभ्यस्त शब्दों द्वारा कविता बनाकर स्तुति की और वही स्तुति ऋग्वेदमें है। अतः जहाँ जहाँ मन्त्र-द्रष्टा ऋषि लिखा है, वहाँ वहाँ कर्ता अर्थ ही अभिप्रेत है। यह निश्चित होगया।"

तथाच—वर्तमान समयके सर्वश्रेष्ठ विद्वान आचार्य सामश्रमी अपने 'निरुक्तालोचन नामक' ग्रन्थ में लिखते हैं कि—

"द्रष्टत्वं कर्तृत्वञ्चाभिन्नमेव प्रायः, तत्र अतीव प्राचीनानामज्ञेय-कालिकानामेव कृते दृष्टमिति व्यवहारो नान्यत्रेत्येव विशेषः। तदिमानि "दृष्टं साम (४।२।७)"—इत्यादि पाणिनिसूत्रीयाणि "वसिष्ठेन दृष्टं वासिष्ठं साम" इत्यादीनि वृत्तिकृदुदाहरणानि द्रष्टव्यानि; तथैव "य आंगिरसः शौनहोत्रो भूत्वा भार्गवः शौनकोऽभूत्, स गृत्समदो द्वितीय मण्डलमपश्यत" इत्येवमादीन्यनुक्रमणी-वचनादीनि च। किञ्चितन्निरुक्तकारोऽप्याह तथा—"ऋषेरत्तपरि-धूतस्यैतदार्षम (६।५।४)" इति। "मत्स्यानां जालमापन्नानामेतदार्षम् (६।५।४)" इत्यादि च।

दृष्टे तत्रैवार्थे कृत इति व्यवहारोऽपि नादृष्टचरः।

तथा ह्यैतरेयके ब्राह्मणे—"देवाह वै सर्वचरो सत्रं निषेदुस्ते ह पाप्मानं नापजघ्निरे। तान् होवाचार्बुदः काद्रवेयः सर्प ऋषि-मन्त्रकृत् (६।१।१)" इति।

निरुक्तेऽप्येवं दृष्टान्तो न दुर्लभः। तथाहि—"इदञ्चमेऽदादि-दञ्चमेऽदादित्यृषिः प्रसङ्ख्या ह सुवास्त्वा अधितुग्वनि (४।२।७)" इत्यादि च। यास्कपूर्वप्रवादा अप्यत्र सह गृहीताः सन्ति, तत्राप्यस्त्वेव कृतकत्वप्रसिद्धिर्मन्त्राणाम्। तथाहि—"तत्रेतिहासमाचक्षते"—विश्वामित्रऋषिः सुदासः पैजवनस्य पुरोहितो बभूव। ... स वित्तं

गृहीत्वा विपाट्छुतुद्रयोः सम्भेदमादयावनुययुरितरे । स विश्वामित्रो नदीं तुष्टाव गाधा भवतेत्यपि, द्विवदपि बहुवत् (२।७।२)" इत्यादि । तथा—"धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा (३।१।७)" इति पाणिनीयस्य सूत्रस्य व्याख्यानावसरे प्रसगतो भगवता पतञ्जलिनापि भापितम्—"ऋषिः पठति—'शृणोत ग्रावाणः' इति—इति । स्तवनपठनादिकञ्च कृतिविशेष एव, तदेवं मंत्रकर्तृत्व मंत्रद्रष्टृत्व च वस्तुतोऽभिन्नमिति स्फुटम् ।"

भावार्थ यह है, कि वैदिक साहित्य मे दृश् धातु तथा कृ धातु अभिन्न अर्थ मे प्रयुक्त हुई हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि अति प्राचीन कालिक महर्पियों के लिए ही कृत अर्थ मे दृश् धातु का विशेप प्रयोग हुआ है । जैसे कि 'दृष्ट साम' वसिष्ठेन दृष्टं वासिष्ठं-साम' इत्यादि उदाहरण देखे जाते हैं । इसी प्रकार 'य आंगिरसः शौनहोत्रो भूत्वा भार्गवः शौनकोऽभूत्, स गृत्समदो द्वितीयं मण्डलमपश्यत्' इत्यादि सर्वानुक्रमणिका के प्रमाण भी इसी बात की पुष्टि करते हैं। तथा निरुक्तकारने भी 'ऋषेरत्तपरिद्यूतस्यैतदार्षम्, मत्स्यानां जालमापन्नानामेतदार्षम्' इत्यादि वाक्योसे उक्त विषय को पुष्ट किया है । इसी प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण आदि ग्रन्थो में भी कृत अर्थ मे दृश् धातु का व्यवहार दृष्टिगोचर होता है । निरुक्त आदिके वाक्यो से भी, जो कि हम ऊपर लिख चुके हैं, इसी विषयकी पुष्टि होती है। तथाच (नि० ४।२।७) में यास्कने इसी विषयपर होनेवाले महर्षियोके पूर्वप्रवाद भी संगृहीत किये हैं। इससे भी मन्त्रोका ऋषिकर्तृत्व सिद्ध होता है । तथाच— (नि०२।७।२)मे 'तत्रेतिहासमाचक्षते' आदिसे भी यही प्रकट होता है । इसी प्रकार 'धातोः कर्मणः' इत्यादि पाणिनीय सूत्रकी व्याख्या करते हुये भगवान् पतञ्जलिने भी 'ऋषिः पठति' आदिमे पठ् और श्रु आदि धातुओका अर्थ भी कृत अर्थ ही माना है। इसलिये यह सिद्ध है, कि मन्त्रद्रष्टाका अर्थ मन्त्रकर्ता ही है।

निरुक्तका एक और प्रमाण

ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्ता (नि० १०।१०)

प० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु, जोकि आर्यसमाजमे एक तपस्वी एवं योग्य विद्वान् हैं। उन्होंने 'आर्यसिद्धान्तविमर्श' नामक पुस्तकमें जो कि आर्य सार्वदेशिक सभाने छपवाई है, 'निरुक्तकार और— वेदमें इतिहास' नामक लेखद्वारा प्रमाणित कियाहै—

आप लिखते हैं, कि "मन्त्रोके अर्थोंमे जहाँ जहाँ आख्यान-इतिहास बनाये गए हैं वे सब उन उन ऋषियोने ऐसा कहनेकी प्रीति-प्रेमके कारण बतलाये हैं।"

समीक्षा—मन्त्रों के अर्थोंमें आख्यान-इतिहास बनाये गये हैं, यह भाव निरुक्तके किस पदसे लिया है, यह तो पण्डितजी जानें। सम्भव है 'ऋषेर्दृष्टार्थस्य' का यह भाव समझते हों। यदि ऐसा है तब तो हमे अत्यन्त खेद है। क्योकि मेरी उनपर विशेष श्रद्धा है। अतः मेरा अपना विचार है, कि ऐसा नहीं है। क्योकि मूलमे दृष्टार्थस्य, ऋषेः का विशेषण है। अतः दृष्टार्थ ऋषिका यह प्रेम है, कि वह किसी बातको आख्यानरूपसे वर्णन करे, यह ही इसका स्पष्ट अर्थ है। अब दृष्टार्थका झगड़ा रहता है। यहाँ मन्त्रद्रष्टाका अभिप्राय मन्त्रकर्तासे ही है, यह हम पूर्व ही सिद्ध कर चुके हैं। तथा च, यहाँ प्रीतिका अर्थ प्रेम करना भी भारी भूल है। पीतिका अर्थ स्तुति है। यही अर्थ विद्यामार्तण्ड प० [illegible] भिवानीनिवासीने अपने हिन्दी निरुक्तमे किया है। [illegible] प्रकार पूर्वमे पुरुच्छेपका स्वभाव बतला चुके हैं, [illegible] पिका यह स्वभाव है, कि वह अपनी कविता [illegible] है। तथा उनमें वह इन्द्रादिक ऐतिहासिक

पुरुषोंका भी वर्णन करता है। दृष्टार्थका अभिप्राय यह भी है, कि जिसने मन्त्रोक्त देवताकी गति आदिका अनुभव किया और पश्चात् उसका अपनी कवितामे वर्णन कर दिया। अतः मन्त्रकार और मंत्रद्रष्टाका एक ही अर्थ है। यदि आपके अर्थको स्वीकार करें तो भी आपके स्वार्थकी सिद्धि नहीं होती। क्योंकि मन्त्रोके अर्थोंमें जो इतिहास वनाये हैं, वे किसने वनाये हैं? तथा मन्त्रोंके अनुकूल वनाये हैं अथवा प्रतिकूल? यदि कहो ईश्वरने वनाये हैं, तव तो आपके सिद्धान्तकी हानि। यदि ऋषियोने वनाये हैं, तो क्या मंत्रों के अनुकूल वनाये हैं? यदि हाँ! तव तो वे इतिहास मंत्रोंके ही होगये। यदि कहो प्रतिकूल वनाये हैं, तो आपकी परिभाषामें ऋषिका अर्थ, मंत्र प्रतिकूलार्थ द्रष्टा हुआ। जोकि आपको मान्य न होगा। जहाँ तक इसपर तर्क उठाया जावे वहीं तक आपके सिद्धान्तकी कलई खुलती है। यदि हम इन सव प्रश्नोको न भी करें तो भी एक और प्रश्न रहता है। और वह यह है कि वे अर्थ कहां हैं? जिनमें इतिहास वनाये गये हैं? यदि कहो, मन्त्रोमें ही वे अर्थ हैं तव तो हमारे मतकी पुष्टि। और यदि कहो, कि अन्य स्थानोमे हैं, तव निरुक्तकार तो मन्त्रका उदाहरण देता है। इसलिए आपका कथन निरुक्त-विरुद्ध है।

यह गृत्समद ऋषि मं० २ सू० २, ३ तथा ८ से २६ तक, तथाच सू० ३० से ४२ तक सूक्तोका यही ऋषि है। इसके काव्यकी यह विशेषता, जो हमने वतलाई है वह उस जगह प्रत्यक्ष दीखती है।

अतः जो हमने अर्थ किया है 'इस ऋषिका ऐसी कविता बनाने का यह शील है' यही अर्थ निरुक्तकारकी मनसाके अनुकूल है। तथाच-

वृहदारण्यकोपनिषद्में एक कथा आई है, जिसमें लिखा है, कि एक समय श्वेतकेतु पाञ्चाल-परिषद्मे गया। वहां उसने कुछ प्रश्न किये। उनका उत्तर देते हुए ऋषिने कहा है कि—

अपि न ऋषेर्वचः श्रुतम् ।

अभिप्राय यह है, हमने ऋषिका वचन सुना है, यह कह कर 'द्वे सृती अशृणव पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम' (ऋ० १०।८८।१५) यह मन्त्र कहा है, उपस्थित किया गया है । अतः मन्त्र ऋषि-कृत हैं, न कि ईश्वरकृत ।

तथाच, यस्य वाक्य स ऋषिः, सर्वानुक्रमणिका आदिमें भी भी स्पष्ट कहा है । किं बहुना, प० शिवशङ्कर 'काव्यतीर्थ', जो कि आर्य विद्वानोमे शिरोमणि माने जाते थे, उन्होने 'वैदिक इतिहासार्थ-निर्णय' मे वेदोको ईश्वर-कृत सिद्ध करनेके लिये अपनी संपूर्ण शक्तिका व्यय किया है । इस पुस्तकसे उनका विशाल पाण्डित्य प्रत्यक्ष सिद्ध है। आगे चलकर इसी पुस्तकके पृ०१३० पर यह लिखा है, कि 'अगस्त ऋषि प्रार्थना करते हैं, अर्थात् ये मन्त्र अगस्त ऋषिकी प्रार्थनारूप काव्य हैं।' यद्यपि इनके मतमें ऋषिके अर्थ प्राणके हैं, परन्तु ये वाक्य तोअगस्त ऋषिके हैं। यह तो उन्होने मान ही लिया है ।

इन उपर्युक्त प्रमाणोसे यह सिद्ध होगया, कि वेदोके कर्ता अनेक ऋषि हैं । ऐसा सिद्ध होनेपर प० भगवद्दत्तजी बी० ए०ने "ऋग्वेदपर व्याख्यान" नामक पुस्तकमे एक नई युक्ति दी है । आप लिखते हैं कि—

"मन्त्रकार आदि शब्दोके अर्थ मन्त्र बनानेवाला नहीं करना चाहिये, क्योकि हम लोकमे सुवर्णकार आदि शब्दोको देखते हैं, तो क्या ये लोग सुवर्णको बनाते हैं, इसी प्रकार यहाँ 'मन्त्रकार' शब्द है । अतः 'मन्त्रकार' का अर्थ यह हुआ—

१—मन्त्र तथा मन्त्रार्थका अध्यापक ।

२—मन्त्रो को लेकर विनियोग करनेवाला ।

३—यज्ञादिकमें मन्त्रोंके प्रयोजनका निर्देश करनेवाला।

४—प्राचीन मन्त्रोंको लेकर उनका नया जोड़-तोड़कर उनका विशेष भाव बतलानेवाला।

तथाच—ऋषिकृत, तनूकृत, ज्योतिषकृत, पुरुकृत, मासकृत, पथिकृत, स्तेयकृत आदि वैदिक शब्दोंका भी कहीं किसी गुण और कहीं किसी द्रव्यको प्रगट करनेका भाव मिलता है। अतः यहाँ भी ग्रंथकार आदि शब्दोंसे आपके भाव नहीं लिए जा सकते।"

यह कथन उनके मतकी पुष्टि नहीं करता, अपितु उनका विरोधी है। क्योंकि सुवर्णकार न तो सोनेका अध्यापक है और न सुवर्णार्थ का। तथा ना ही सोनेका विनियोग बतलाता है और न उसका प्रयोजन, न उसका विशेषभाव। यह बातें तो सर्राफ आदि भी बता देते हैं। किन्तु उनको सुवर्णकार नहीं कहा जाता। सुवर्णकार तो सुवर्णको नये रूप (आभूषण आदि)मे परिवर्तित कर देता है। इसीलिए वह सुवर्णकार कहलाता है। किन्तु उनके ऋषि तो एक मन्त्रके एक अक्षरको भी इधर उधर नही कर सकते। ग्रथके अध्यापकको ग्रंथकार कहना भारी भूल है। इसी प्रकार अन्य (ऋषिकृत आदि) शब्दोसे भी आपका अभिप्राय सिद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि एक मनुष्यको शिक्षा देकर विद्वान् बनानेवालेको ऋषिकृत कहना बिलकुल उसी अर्थमें है जिस अर्थमे हम मन्त्रकारका अर्थ ले रहे हैं। कुम्भकार, अयस्कार, सुवर्णकार, ग्रंथकार, चित्रकार आदि शब्दोंका अर्थ है—कारणरूपसे वस्तुको कार्यरूपमे परिणत करनेवाला। बस, यहाँ भी यही अर्थ है। अर्थात् अपने भावोंको कवितारूपी शब्दोमे प्रकट करनेवाला, शब्दोंको बनानेवाला नहीं, अपितु शब्दोको कवितारूपमे करनेवाला है। यही भाव अन्य ग्रंथकारोंके लिये भी है। फिर ये मन्त्र तो ईश्वरकृत माने जावें, अन्य ग्रन्थ न माने जावें, यह पक्षपात क्यो? पं० भगवद्दत्तजीकी दो

बातें यहाँ विचारणीय है। एक तो प्राचीन मन्त्रोको लेकर नया तोड़-जोड़कर उनका विशेषभाव बतलाना। दूसरे आपने चित्रकार, ग्रथकार, सूत्रकार आदि शब्दोमे भी उदाहरण दिये है। आपका कथन है कि—"यदि सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जावे तो संसारमे नूतन वस्तु कोई उत्पन्न ही नहीं होती। सब पदार्थोंमे रूपका परिवर्तन मात्र किया जाता है। अतः उन उन प्रतीत होनेवाले पदार्थोंके कर्ता वास्तवमें उन उन पदार्थोंका तोड-जोड़ करनेवाले होते हैं।"

इस प्रकार प०जीने अपने कथनसे यह सिद्ध कर दिया कि मन्त्रकारका अर्थ वही है जो चित्रकार, ग्रथकार, कुम्भकार आदिका है। हम भी मन्त्रकार शब्दका अर्थ यही लेते हैं।

जिस प्रकार एक कुशल चित्रकार अनेक रङ्गोंके मेलसे एक चित्र बना देता है अथवा जिस प्रकार पण्डितजीने अनेक ग्रन्थोका तोड जोड़ कर (ऋग्वेदपर व्याख्यान) यह ग्रन्थ बना दिया है और आप ग्रथकार कहलाते हैं। इसी प्रकार अनेक मन्त्रोका अथवा शब्दोंका तोड़-जोड़ करके जो 'नये प्रतीत होनेवाले मन्त्र बनाते थे, उन ऋषियोका नाम मन्त्रकार है।' हम भी इसी अर्थमे मत्रकार शब्दका अर्थ लेते हैं, तथा अन्य सभी विद्वानोने भी इसी अर्थका आश्रय लिया है।

एक प्रश्न यहाँ और भी उठता है, कि यदि अध्यापक अथवा प्रचारक आदि लोग मन्त्रकर्ता कहलाते है तो आजकलके आर्य-पण्डित अथवा भजनीक आदि सभी मन्त्रकर्ता कहलाने चाहियें। तथा अबसे पूर्व भी असख्य विद्वान्, प्रचारक, अध्यापक, भाष्यकार, लेखक कण्ठस्थ करनेवाले होचुके हैं। उन सबको भी मन्त्रकारकी उपाधि क्यो न मिली? दुःख तो यह है, कि वेदोंके ज्ञाता अनुपम प्रचारक महर्षि दयानन्दको भी वेदकारकी उपाधि प्रदान नहीं की गई। इस कन्जूसीका क्या कारण है, यह समझमें नहीं आता।

आगे आप लिखते हैं कि—

"जिस ऋषिका नाम जिस मन्त्रपर है उस ऋषिसे पूर्व भी मंत्र थे ? यथा अजीगर्त कक्षीवानका उदाहरण है।

तथाच—एक मन्त्रके अनेक ऋषि भी हैं, तो क्या उन सबने मिलकर यह मन्त्र बनाया था। तथा एक ही मन्त्र जो स्थानान्तरमें या अन्य संहितामें आता है तो उसका ऋषि भी पृथक् होता है वह मन्त्र किस ऋषिका बनाया हुआ मानोगे ?"

उपर्युक्त प्रश्न उसी समय हो सकते हैं जब हम यह मानते हों, कि जिन मन्त्रोंपर ऋषियोंका नाम लिखा है उन मन्त्रोंके बनानेवाले वे ही ऋषि थे। हमारे सिद्धान्तानुसार तो जब मन्त्रोंका संग्रह होता था उस समय जिस ऋषिद्वारा जो मन्त्र प्राप्त होता था उस का नाम उस मन्त्रपर लिख दिया जाता था। चाहे वह बनाने वाला हो या रक्षक हो। हमारे सत्य-सिद्धान्तके आगे पूर्वोक्त प्रश्नोंका कुछ भी सार नहीं है।

रहस्यमय एक प्रमाण

तान्वासतान्संपातान् विश्वामित्रः प्रथममपश्यत्
तान् विश्वामित्रेण दृष्टान् वामदेवोऽसृजत्
स हे चां चक्रे विश्वामित्रो यान्वाहं सम्पातान्
दर्शयंस्तान् वामदेवोऽसृजत् कानिन्वहं हि
सूक्तानि सम्पातान् तत्प्रतिमान् सृजेयमिति।

(गो० उ० प्र० ६ कं० १)

अर्थ—ऋग्वेदके सम्पात्त सूक्तको विश्वामित्रने पहले देखा (बनाया) परन्तु वामदेवने उनको बना दिया, (अर्थात् अपने नाम

से प्रगट कर दिया कि यह सूक्त मैंने बनाया है) विश्वामित्रने विचार किया, कि अब मैं कौनसे मन्त्रोका सम्पात नामसे बनाऊँ, तो उसने दूसरे मन्त्रोका सम्पात नामसे बनाया। उपर्युक्त प्रमाणसे निम्न लिखित बातें स्पष्ट होजाती है।

१—दृश् धातुका अर्थ बनाना है, क्योंकि अपश्यत् तथा असृजत् शब्दोका यहाँ एक ही अर्थ है।

२—एक व्यक्तिके बनाये हुए मन्त्रोका दूसरा ऋषि अपने नाम से प्रगट कर देता था, जैसा कि आज कल भी क्षुद्र लोग करते हैं।

आगे पण्डितजीने अपनी पुस्तक "ऋग्वेदपर व्याख्यान" में निम्नलिखित आक्षेप भी लिये हैं—

१—मन्त्रकारका अर्थ है—विचारकर्ता, अर्थात् 'मन्त्र' के अर्थ 'विचार' के हैं। दूसरे यदि मन्त्रकृत शब्दका अर्थ—मन्त्र बनाने वाला करोगे तो—मन्त्रकृतोवृणीते, "यथार्षिमन्त्रकृतो वृणीते" इति विज्ञायते, (दक्षिणस्त उदङ्मुखो मन्त्रकारः) 'पारस्करगृह्यसूत्र' इत्यादि सूत्रोमे आये हुए मन्त्रकार, मन्त्रकृत आदि शब्दोका क्या अर्थ होगा? यदि यहाँ भी मन्त्रकृतका अर्थ 'मन्त्र बनानेवाला' ही करोगे तब तो वेद इन सूत्रग्रंथ-कालमें बनते थे—ऐसा मानना पड़ेगा। परन्तु यह मत किसी भी ऐतिहासिक विद्वान्को स्वीकृत नहीं हो सकता। यदि अन्य अर्थ लोगे, तो जो अर्थ यहाँ ग्रहण करते हो वही अर्थ, वेदोमें तथा ब्राह्मण ग्रथोमें आये हुए मन्त्रकृत आदि शब्दोका करना उचित है।

समीक्षा—विद्वान् लेखकने पूर्वपक्ष कुछ थोड़ेसे मंत्रोको रखकर बड़ी बुद्धिमानीसे उत्तर देनेका प्रयत्न किया है। इसमे कोई सदेह नहीं है, वेदविषयक स्वाध्याय भी आपका अपरिमित है, यह भी

निर्विवाद है। परन्तु हम तो सत्यकी गवेषणाके लिये उसपर परीक्षककी दृष्टिसे विचार कर रहे हैं।

१—आपका यह कथन कि पूर्वपक्षमें दिये जाने वाले प्रमाणों में मंत्र शब्दका अर्थ 'विचार' है यह एक प्रकारका वाक्छल प्रतीत होता है, मैं इस कार्यको पण्डितजीके योग्य नहीं समझता हूँ।

किं बहुना, महर्षि दयानन्दजीने भी—"अयं स्तोमो देवाय जन्मने विप्रेभिः अकारि रत्नधातमः" इस मन्त्रके भाष्यमें स्तोमका अर्थ 'स्तुति' समूह तथा अकारि का अर्थ 'करते हैं' ऐसा ही किया है।

तथाच—मन्त्र शब्दका अर्थ 'विचार' वैदिक साहित्यमें उपलब्ध नहीं होता। ब्राह्मण ग्रंथोंमें स्पष्ट लिखा है कि—

"वाग्वै मन्त्रः" (श० ६।४।१।७)

"ब्रह्म वै मन्त्रः" (श० ७।१।१।५)

"वाग्धि मन्त्रः" (श० १।४।४।११)

अर्थात् वाक् ही मन्त्र है। यहाँ वाक् शब्दसे भी वेद ही गृहीत है। उपर्युक्त प्रमाणोंमें ही 'वै' आदि शब्दोंका प्रयोग करके ऋषिने अन्य अर्थका स्पष्ट खण्डन कर दिया है।

तथाच—ब्रह्मकृत आदि अनेक शब्द हैं जो कि मन्त्रके ही अर्थों में हैं, उनको आपने पूर्वपक्षमें रखनेकी कृपा की है। यहां ब्रह्मका अर्थ ईश्वर नहीं हो सकता, तथा नाही विचार हो सकता है। अतः तन्त्रकृत आदि शब्द जो वेदोंमें आये हैं उनका अर्थ विचार करनेवाला कदापि नहीं हो सकता। इन प्रमाणोंको हम आगे रखेंगे। जिससे पाठक स्वय जान जावेंगे कि पण्डितजीका अर्थ, अर्थ कहलानेका अधिकारी नहीं है। विशेष क्या, मन्त्र शब्दका 'विचार' अर्थ अत्यन्त नवीन है, जो कि वेद-मन्त्रोंके आधारपर ही निर्मित किया गया है।

अभिप्राय यह है, कि वैदिकसाहित्यमें मन्त्रका अर्थ 'वेद-मंत्र' ही है था और है। परन्तु जिस समय इनका ही अधिक विचार होता था उस समय लोगोंने मन्त्रके अर्थ 'विचार' कर दिये। अतः वेदोंमे आये हुए मन्त्रके अर्थ 'विचार' कदापि नहीं होसकते।

दूसरा समाधान भी आपके अभिप्रायकी पुष्टि नहीं करता क्योंकि श्रौत सूत्रोंमें जो मन्त्रकार आदि शब्द आये हैं वे रूढिवाद को लेकर आये हैं' अर्थात् पूर्व समयमे उस क्रियाके लिए मन्त्र बनानेवालेका ही वरण होता था, इसमे कुछ भी सन्देह नहीं है। परन्तु बादमें यह रूढ़ि पड़ गई कि प्रत्येक यज्ञमें, प्रत्येक कालमें उसका वरण करने लगे। इसलिये इससे तो आपके सिद्धान्तकी हानि ही होती है, पुष्टि किसी भी प्रकार नहीं होती।

तथाच—आपके कथनानुसार भी मन्त्रकारका अर्थ है—"मंत्र-द्रष्टा"। जैसा कि आपने इसी पुस्तकमें लिखा है, तो क्या आप इस समय मंत्रद्रष्टा ऋषियोंका सद्भाव मानते हैं। यदि हां, तब तो उनका नाम प्रकट करनेकी कृपा करनी चाहिये। यदि नहीं, तो इस समय मन्त्रकार कहकर किसका वरण करते है?

यदि कहो विचारकका, तब तो खण्डन-मण्डन करनेवाले सभी विचारक हैं। पुनः विशेषता क्या रही, तथा मण्डन करनेवालोंके भी अनेक सम्प्रदाय हैं। उनमे किस सम्प्रदायके व्यक्तिका वरण करोगे? यदि आर्यसमाजका, तो क्यों?

तथाच।—समाजमें भी अनेक प्रकारके विचारक हैं। कोई वेदोंमें मिलावट मानता है कोई नहीं मानता, कोई एक ऋषिपर प्रगट हुए मानता है, कोई चारपर, कहां तक लिखें? "मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना" है। इसलिये यह युक्ति भी आपके पक्षका पोषण नहीं करती। तथा निरुक्तकारने इसको स्पष्ट कर दिया है, कि ऋषि, मन्त्रोंके कर्ता थे, उनके अध्यापक आदि नहीं थे।

तथाच—आगे पं० भगवद्दत्त जीने 'ऋग्वेद पर व्याख्यान' अपनी पुस्तकमें वेदको ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध करनेके लिए वामदेव सूक्त का आश्रय लिया है, इसीके बलपर आपने मोटे अक्षरों मे लिखा है किः—

"ऋग्वेद, शब्दार्थ सम्बन्धरूपसे किसी मनुष्यकी कृति नहीं।"

अर्थात्—आपको इस प्रमाण पर बड़ा अभिमान है, हम भी उस पर पूर्णरूपसे विचार करते हैं। (ऋग्वेद, मं० ४ सू० १-४१) तक तथा (४५ से ४८ तक) सूक्तोका ऋषि वामदेव है; इन्हींमें वे सम्पात सूक्त भी हैं। जिनको विश्वामित्रने बनाया था और वामदेव ने अपने नामसे प्रगट कर दिया था। पं० भगवद्दत्तने ऋग्वेद मं० ४ सू० २६ के ३ मंत्रोको अपनी पुस्तकमे लिखा है, तथा उन पर किये गये पाश्चात्य विद्वानोके भाष्यकी एव सायणाचार्यादि भारतीय विद्वानोंके भाष्यकी समालोचना की है, तथा श्री स्वामी दयानन्दजीके भाष्यको ही सर्वोत्तम बतलाकर यह सिद्ध किया है कि वे ईश्वरकृत हैं।

हम भी पाश्चात्य विद्वानोंके भाष्योंके तथा भारतीय विद्वानोंके भाष्योंके अनुयायी नहीं हैं। अतः हमको उस विषयमें कुछ नहीं लिखना। परन्तु स्वामीजीके भाष्यकी विवेचनात्मक दृष्टिसे परीक्षा करनी है। स्वामीजीका भाष्य निम्नप्रकार हैः—

स्वामी भाष्य—

१—"हे मनुष्यो! जो मैं सृष्टिको करने वाला ईश्वर, विचार करने और विद्वान्के सदृश सम्पूर्ण विद्याओंके जानने वाला और सूर्यके सदृश सबका प्रकाशक हूँ और मै सम्पूर्ण सृष्टिकी कक्षा अर्थात् परम्परामें युक्त, मन्त्रोके अर्थ जानने वालेके सदृश बुद्धिमान् के सदृश सब पदार्थोके जानने वाला हूँ, और मैं सरल विद्वान्से

उत्पन्न किये हुए वज्रको अत्यन्त सिद्ध करता हूँ, और मैं सबके हित की कामना करता हुआ सम्पूर्ण शास्त्रोंको जानने वाला विद्वान् हूँ उस, मुझको तुम देखो।"

२—"हे मनुष्यो! जो सबका धारण करने और सबका उत्पन्न करने वाला मैं ईश्वर धर्म्मयुक्त, गुण, कर्म, स्वभाव वालेके लिए पृथ्वीके राज्यको देता हूँ, मैं देने वाले मनुष्यके लिए वर्षाको प्राप्त कराऊँ, मैं प्राणो व पवनोको प्राप्त कराऊँ, जिस मेरी कामनाको करते हुए विद्वान् लोग बुद्धिको जाननेके लिए अनुकूल प्राप्त होते हैं उस, मुझको तुम देखो।"

३—"हे मनुष्यो! जो मैं आनन्द स्वरूप और आनन्द देने वाला मैं जगदीश्वर प्रथम मेघके अत्यन्त असंख्यात उत्तम वेशों वा प्रवेशोंसे उत्पन्न निन्नानवे पदार्थोंके साथ प्रेरणाको करूँ, सबमे ही मिलने योग्य जगत्‌मे जिस विज्ञानस्वरूप प्रकाशके देने वाले अतिथियोको प्राप्त हो वा प्राप्त करावे, उसकी रक्षा करूँ। उस मेरी उपासना करो और वह आनन्दयुक्त होता है।"

इसपर पण्डितजीकी सम्मति

"यही एक अर्थ है जो पूर्वोक्त सब आक्षेपोंसे रहित है। इसपर कोई आक्षेप नहीं किया जा सकता। इसके अनुसार इन मन्त्रोकी रचना किसी ऋषिकी नहीं की जा सकती, प्रत्युत यह रचना तो ऋषि परर्मर्षि परमात्माकी अपनी है।"

हमारी भी इच्छा नहीं होती कि इसपर कुछ आक्षेप करें, इसके दो कारण हैं—

१—यह भाष्य महर्षि दयानन्दजीका है, जिसमे मेरी अत्यन्त श्रद्धा है।

२—मेरे मित्र पं० भगवद्दत्तजीका यह आग्रह है, कि इसपर कोई आक्षेप नहीं हो सकता।

भला इसपर आक्षेप करके कौन अपने मित्रका क्रोधभाजन बने, परन्तु सत्यकी रक्षार्थ इसपर विचार करना ही पड़ता है।

१—इस भाष्यसे ईश्वरका ईश्वरत्व कुछ भी नहीं रहा, क्योंकि इसमें ईश्वरको विद्वान्के सदृश ज्ञाता, विचारक, मन्त्रार्थ जानने वालेके सदृश, बुद्धिमान्के सदृश जानने वाला, सब शास्त्रोंको जाननेवाला ही ईश्वर है, तो साधारण पुरुषमें और ईश्वरमें क्या अन्तर है? इसमें एक बात और विचारणीय है, कि इसमें ईश्वरकी उपमा विद्वानोंसे दीगई है, जिसमें ईश्वरसे तो विद्वान् ही श्रेष्ठ सिद्ध होगये। अस्तु; जो हो।

परन्तु फिर भी यह कैसे सिद्ध होगया, कि ये मन्त्र ईश्वर-रचित हैं। क्या इसलिए कि इस भाष्यमे ईश्वर, अपने आप ही प्रशंसा करता है जो कि स्व-आत्मप्रशंसाके सिवाय कुछ गौरव नहीं रखती।

३—यदि इसी प्रकारके भाष्योंसे कोई पुस्तक ईश्वरीय ज्ञान हो सकती है तो संसारमें एक भी पुस्तक ऐसी नहीं बचेगी जिसको ईश्वरकृत न कहा जा सके। यदि संदेह हो तो परीक्षा करके देख सकते है। फिर इन्हीं पुस्तकोंमे ऐसी क्या विशेषता है जिससे इन को तो ईश्वरकृत माना जावे तथा औरोंको न माना जावे।

४—धर्मयुक्त गुणकर्म स्वभाववालोंको यदि ईश्वर पृथ्वीका राज्य देता है तो आर्यसमाजपर उसकी क्रूर-दृष्टि क्यों?

५—पवनों वा प्राणोंको ईश्वर किससे प्राप्त कराता है तथा किसको आज्ञा देकर कराता है। अथवा उससे प्रार्थना करके कराता है किंवा लोभ, लालच देकर कराता है।

६—वे निन्यानवे पदार्थ कौनसे हैं जिनके साथ ईश्वर प्रेरणा

करता है। तथाच अत्यन्त उत्तम वेश या प्रवेश क्या हैं, जिनमें ईश्वर प्रेरणा करता है। ये पदार्थ निन्यानवे ही क्यों रखे? पूरे १०० तो कर देने चाहियें थे। प्रतीत होता है, इन मन्त्रोंका ईश्वर सौ तक गिनती नहीं जानता था।

प० भगवद्दत्तजीने प्रयत्न किया, कि उपर्युक्त भाष्यकी कमियों को पूरा किया जावे, इसीलिये उन्होने अपनी इस पुस्तकमे भाष्यके सम्पूर्ण शब्द न लिखकर संक्षेपमे लिखा है। अब हम मन्त्र तथा उनका स्पष्टार्थ करते हैं—

अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवान् ऋषिरस्मि विप्रः।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जेऽहं कविरुशना पश्यतामा ॥१॥
अहं भूमिमददामार्य्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनुकेतमायन् ॥२॥
अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं नवसाकं नवतीः शम्बरस्य।
शततमं वेश्यं सर्वताता दिवोदासमतिथिग्वं यदावम् ॥३॥
(ऋ० मं० ४ सू० २६)

१—अर्थ-मैं पहले मनु हुआ, सूर्य हुआ, तथा कक्षीवान् ऋषि हुआ, विद्वान हुआ। मैं आर्जुनेय कुत्स हुआ, मैं उशना कवि हुआ, मैं सब कार्य्योंको सिद्ध करनेवाला हूँ। मुझको देखो।

२—मैंने खेती करनेवालोको भूमि दी, मैंने दानी पुरुषको अन्न दिया। (वृष्टि नाम अन्नका है)। (गो० प० ४।४।५)

मैं तेज धारण कराऊँ, देवता लोग मेरी इच्छाके अनुकूल चलें।

३—मैंने सोमके प्रतापसे शम्बर (असुर) के निन्नानवे पुरोंको एक साथ नष्ट किया, मैंने दिवोदासके १०० नगरोंकी सब ओरसे रक्षा की।

यह है सरल और स्पष्ट अर्थ, उपर्युक्त मन्त्रोंका। अब वाचक-वृन्द अपने आप परिणाम निकाललें कि उपर्युक्त वाक्य किसके हैं। इन मन्त्रोंमें आये हुए प्रत्येक शब्दसे ऐतिहासिक पुरुषोंके नाम प्रगट होते हैं, परन्तु फिर भी बिलकुल स्पष्ट करनेके लिए मन्त्रकार ने कुछ शब्द ऐसे रखे हैं, जिससे किसी प्रकारका सन्देह न रहे। यथा, कक्षीवान् ऋषिरस्मि, आर्जुनेयकुत्स, उशना कवि दिवोदास, शम्बरके निन्नानवे किले अथवा नगर।

उपर्युक्त सभी नाम प्रसिद्ध ऐतिहासिक पुरुषोंके हैं, कक्षीवान् को तो स्वयं वेद भगवानने बतलाया है। 'ऋषि' का अर्थ ईश्वर करना वैदिक-साहित्यसे विपरीत है। तथाच—कक्षीवान्को ताँड्य-ब्राह्मणमें 'औशिजः' व्यक्ति विशेष लिखा है। इसके पिताका नाम दीर्घतमा था, यह प्रसिद्ध ही है। जिसको सायण भाष्यमें देख लें।

२—कुत्सके लिए निरुक्तमे स्पष्ट 'ऋषिः कुत्सो भवति' लिखा है जिसका वर्णन हम पहले कर चुके हैं। तथाच—उशना कवि भी प्रसिद्ध कवि हो चुके हैं, (कवीनामुशना कविः) गीतामें लिखा है। दिवोदास, शम्बर असुर, तथा उसके नगर आदिका नाश, ये सब प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटनायें हैं, जो कि दाशराज्ञ युद्धके समय घटी थीं।

तथाच—इनसे ईश्वरका ग्रहण नहीं हो सकता। क्योंकि किसी भी संस्कृत पुस्तकमे ईश्वरका वर्णन उपर्युक्त नामोंसे नहीं आया। परन्तु हमारे अर्थकी पुष्टिमें सम्पूर्ण वैदिक-साहित्य विद्यमान है। अब रह गया यह प्रश्न कि ये बातें इस ऋषिने कहाँ कहीं और कैसे कही? इसके विषयमें सभी भाष्यकारोंने भारी भूल की है। अतः हम सबसे प्रथम इस भ्रमके उस मूलकारणको आपके सन्मुख रखते हैं।

गर्भे नु सन्न वे वाम वेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा ।
शतं मा पुरा अयसी रत्तन्नधश्येनो जवसा निरदीयम् ॥

अर्थात्—ऋषि कहता है कि मैंने इन देवोंके सम्पूर्ण जन्मोंको गर्भमें जाना । धातुके १०० किलोने मेरी रक्षा की । अब मैं श्येन की तरह उपस्थित हूँ, मैं जोरसे निकल आया । श्री स्वामीजी महाराजने तो इन मन्त्रोके अर्थमे बड़ी भारी भूलकी है । यथा—(मं० ४ सू० २७ मं० १) का स्वामी भाष्य—हे मनुष्यो ! जैसे मैं विद्वान्, गर्भमे वर्तमान इन श्रेष्ठ पृथ्वी आदि पदार्थ वा विद्वानोंके सम्पूर्ण जन्मोंको अनुकूल जानता हूँ, जिस मेरो सुवर्ण वाली वा लोह वाली सौ नगरी रक्षा करती हैं । इसके अनन्तर सो मैं बाज-पक्षीके सदृश इस शरीरसे अत्यन्त वेगके साथ शीघ्र निकलूं ।

समीक्षा—प्रथम तो स्वामीजीने ईश्वरको विद्वान् बनाकर गर्भमें स्थित कर दिया । यह अच्छा किया । क्योकि यह स्वतन्त्र रहकर विशेष उद्दण्ड होगया था । कभी विहारमें भूचाल उत्पन्न कर देता था तो कभी क्वेटामें, ऐसे उपद्रवीकी स्वतन्त्रता छीनकर स्वामीजीने बुद्धिमानी हीका काम किया है । परन्तु इसको यहाँ चैन कहाँ है, इसीलिए बाजकी तरह अत्यन्त वेगके साथ अत्यन्त शीघ्र भागना चाहता है । हमारी सम्मतिमे तो ऐसे खतरनाक व्यक्तिको इस जेल से निकलने नहीं देना चाहिये । यदि निकल जाये तो जमानत ले लेनी चाहिये । ऐसा न हो कि अबकी बार यह हाथ ही न आवे और संसार दुःखी हो जावे ।

दूसरे यह विद्वान् गर्भमें स्थित ही पृथ्वी आदिके और विद्वानों के जन्मोको अनुकूल जानता है । यदि ऐसा है तो प० भगवद्दत्तजी ने व्यर्थ ही (सायण पर रोष प्रगट करनेके लिए) कई पृष्ठ काले किये । एक आश्चर्य है कि इस विद्वान्ने विद्वानोंके ही जन्मोको अनुकूल क्यों जाना ? क्या मूर्ख लोग इसके अनुकूल नहीं हैं ?

एक बात यह बतलाना और भूल गये—कि इसने यह नहीं बतलाया कि किस देशके विद्वानोको अनुकूल जानता है ? और न किसी भाषाका संकेत किया। सम्भव है गर्भके दुखोंके कारण सम्पूर्ण बाते न बता सका हो। इन्हीं दुःखोके कारण तो यह भागना चाहता है।

३—लोहे या सोनेके १०० नगर (शहर) रक्षा करते हैं। यह १०० शहर यह भी लोहे या सोनेके इस विद्वान्‌की माताके पेटमें बतलाते हुए स्वामीजीको इतना विचार कर लेना चाहिए था कि वह बेचारी किस प्रकार जीवित रहेगी। मालूम नहीं एक-एक नगरीमें कितने-कितने आदमी थे तथा कितने पशु-पक्षी थे। प्रतीत होता है इन नगरियोंका राजा कोई नहीं था। लावारिस माल था इसीलिए ये नगरियाँ उठाकर ऐसे सुरक्षित स्थानमें रखी गई हैं। अथवा डाकुओंके भयसे ऐसा किया गया होगा।

अब, जब वेद ही इस बातको लिख रहा है कि यह ज्ञान गर्भमें हुआ तो पण्डितजीको सायणपर इतना क्रोध क्यो आया। इन मन्त्रोंमे गर्भ और श्येन ये दो शब्द ऐसे हैं जिनमें सम्पूर्ण गुप्त रहस्य निहित है। मेरी तो धारणा है कि इन शब्दोमे वेदके बहु-भागका रहस्य भरा हुआ है। अतः हम इन शब्दोके भावको एवं अभिप्रायको प्रथम दर्शाते है।

१—स्वामीजीने, सायणने तथा अन्य विद्वानोने भी यहाँ गर्भ के अर्थ माताके गर्भके ही समझ लिये। इसीलिये सम्पूर्ण बातें अस्त-व्यस्त और बेशिर पैरकी लिखी गईं, जिससे वेद वचोंका मजाक सा बन गया। इसमें वेदको ईश्वरीय ज्ञानके वायुयानपर चढ़ानेवालोंकी ही अधिक कृपा है।

गर्भ—वास्तवमें यहां गर्भके अर्थ सम्वत्सरके हैं जिसका वर्णन हम विस्तारपूर्वक करेंगे। अब तो संक्षेपसे इस विषयमें प्रमाण देते

हैं। यथा—सम्वत्सरो वाच गर्भाः पञ्चविंशः, तस्य चतुर्विंशतिरर्ध-मासाः सम्वत्सर एव गर्भाः पञ्चविंशति। (श० ८।४।१।१६)

अर्थात्—सम्वत्सर गर्भ है, २५ (पचीस), जिसके २४ तो अर्ध-मास हैं, और यह पच्चीसवां विशेष, इसी विशेषमे यह यज्ञ होता था, तथा उस समय बड़ी २ सभायें होती थीं और कविसम्मेलन भी होता था, इन सब बातोंका वर्णन हम विस्तारपूर्वक सप्रमाण आगे करेंगे, पाठक आगेके पृष्ठोंपर देखें। इसी यज्ञको देवोंका जन्म कहते थे, क्योंकि इससे विद्वान् उत्पन्न होते थे। बस, इसी यज्ञमे अर्थात् सम्वत्सरमे इस मन्त्रकर्ता ऋषिको उपर्युक्त ऐतिहासिक घटनाओंका ज्ञान हुआ था, तथा विद्वानों (कक्षीवान् आदि) के जीवन-चरित्र भी उसने सुने थे। अर्थात् गर्भसे अभिप्राय है सम्वत्सरमे होनेवाली सभायें। ये सभायें युगान्तरमे अर्थात् चौथे वर्षमे होती थीं, इसी चतुर्थ वर्षका नाम सम्वत्सर है।

श्येन—अब रह गया श्येन, जिसके अर्थ हैं चन्द्रवंशियोंमेंसे निकलकर सूर्यवंशियोंमे आ मिलना, यथा—

यदाह श्येनोऽसि इति, सोमं वा एतदाहैष ह वा अग्निर्भूत्वा अस्मिँल्लोके संश्यायति।

(गो० पू० ५।१२)

अर्थात् तू श्येन है यह कहता है, तो वह सोमकी प्रशंसा करता है, क्योंकि यह सोम ही अग्नि होकर (श्येनरूपसे) इस लोकमे घूमता है। अर्थात् जो सोम अग्नि होकर लोकमे चलता (घूमता) है, उसे श्येन कहते हैं। अभिप्राय यह है कि जो सोमवंशी, सूर्यवंश के पक्षमे जा मिलते थे उनकी श्येन संज्ञा थी, उन्हींमेंसे वामदेव भी एक था। जिसने अपनेको कहा कि मैं श्येनरूपसे उपस्थित हूँ। प्रकृत विषय यह है कि यहां गर्भके अर्थ है सम्वत्सरमे होनेवाली सभा,

तथा श्येनके अर्थ हैं, चन्द्रवंशसे सूर्यवंशमे सम्मिलित होना। अथवा क्षत्रियसे-ब्राह्मण बनना*। ये क्षत्रिय और ब्राह्मण वैदिक-युगमे जातिविशेष नहीं थी, अपितु सम्प्रदाय थे। तथा इनके सिद्धान्तोंमें भो भेद था, अतः वामदेव ऋषि अथवा अन्य कोई ऋषि जिसने ये मन्त्र बनाये हों, वह ऐसा व्यक्ति है जो ब्राह्मण सम्प्रदायमे दीक्षित हुआ है, विश्वामित्र इस विषयमें इतिहासप्रसिद्ध व्यक्ति है जोकि क्षत्रियसे ब्राह्मण हुआ था; गोपथके प्रमाणसे (जिनको हम आगे लिखेंगे) यह सिद्ध है, कि इन मन्त्रोंका रचयिता विश्वामित्र है, विश्वामित्रने अपनी इस रचनाको वामदेवको दिखलाया था तथा उस (वामदेव) ने इन मन्त्रोंको अपने नामसे प्रकट कर दिया था। विश्वामित्र भी एक अभिमानी राजा था, यह उसके जीवनसे प्रत्यक्ष है। अतः वामदेवने अपना विश्वामित्र आदि किसी अन्य ऋषिने अपने अपने भावोंको उपर्युक्त कविता में प्रगट किया, यह वर्णन काव्य-शैलीसे ही किया गया है, दार्शनिक ढङ्गसे नहीं। इस प्रकार कवितायें पहिले भी होती थीं तथा अब भी होती हैं। बस, यदि इस वर्णन-शैलीसे ही वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं तो बाकीकी भी सब कवितायें ईश्वरकृत होजावेंगी। प्रथम तो पूर्वसमयकी कविता 'भगवद्गीता' को ही लेलें, जो वर्णन जिस शैलीसे इन मन्त्रोमे है, वही वर्णन उसी शैलीसे गीतामें भी है, यथा—

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥ २१ ॥

वेदानां सामवेदोस्मि देवानामस्मि वासवः।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥ २२ ॥

---

*निरुक्तमें इन्द्र अर्थ भी श्येन का है। (अ० ११)

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥ २३ ॥
महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥ २५ ॥
अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥ २६ ॥
उच्चैःश्रवः समश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणाञ्च नराधिपम् ॥ २७ ॥
आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ।
प्रजनश्चास्मि कंदर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥ २८ ॥
(गी० अ० १०)

तथाच—स्वामी रामतीर्थजीकी कविताओंमे भी यही शैली है; तथा वर्तमान समयकी छायावादकी कवितायेंभी इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। हां! एक भेद, इन कविताओंमे और वेदिक कावताओंमें अवश्य है। यह है, नवीनताका और प्राचीनता का। यही भेद बतलाकर पं०जीने गीताका समाधान किया है। यदि इसका नाम युक्ति है तो अवश्य वेद ईश्वरीय ज्ञानरूपी पर्वतपर चढ़ सकते हैं। इसको हम भी स्वीकार कर लेते हैं, परन्तु इस युक्तिसे एक बात सिद्ध होगई है, वह यह कि जिस समय वेद बने थे अथवा आर्य पुरुषोंकी भाषामे प्रगट हुए थे उस समय वेद ईश्वरीय ज्ञान नहीं थे, क्योंकि उस समय वेद नवीन थे; और पं० भगवद्दत्तजीके कथनानुसार जो नवीन होता है वह ईश्वरीय नहीं हो सकता। अतः यह सिद्ध होगया कि वेदोंको ईश्वरीय ज्ञान माननेकी भ्रान्ति या कल्पना बिलकुल नवीन है। आज भी प्राचीन पुस्तकें ईश्वरीय ज्ञान समझी जाने लगी हैं। यथा—गीता, गुरुग्रन्थसाहब और

कुछ कालबाद सत्यार्थप्रकाश भी ईश्वरीय ज्ञान होनेवाला है। अभी भी आर्यसमाजमें वेदोंसे अधिक मान्यता या इज्जत सत्यार्थप्रकाश की है। कई भाइयोंको तो हमने स्वयं कहते सुना है कि जब इसमें सब बातें वेदानुकूल हैं और वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं तो सत्यार्थप्रकाश भी ईश्वरीय ज्ञान हुआ; उसके विरुद्ध न होनेसे।

इसी प्रकार स्वामी जी का भी आसन ईश्वर से एक आसमान ऊपर बिछाये जानेका प्रयत्न हो रहा है, परन्तु क्या करें बेचारे, समय उनका साथ नहीं देता। श्री पं० भद्रवद्दत्तजीने एक युक्ति और बड़ी सुन्दर दी है, आप कहते हैं, कि श्रीकृष्णने परमात्माको जानकर अपनेमें परमात्माकी ओरसे अहंभाव धारण किया था। यदि ऐसा है तो क्या अन्य व्यक्ति किसी प्रकारका अहंभाव धारण नहीं कर सकते। यदि कर सकते हैं तो बस, विश्वामित्र और वामदेवने भी ऐसा ही किया।

फिर ये उपर्युक्त मन्त्र ईश्वरीय कैसे होगये। यदि कृष्णजीके सिवाय अन्य कोई ऐसा नहीं कर सकता तो क्यों? बस, यह सिद्ध होगया, कि वेद ईश्वरीय ज्ञान अथवा ईश्वरकृत नहीं हैं, अपितु गीता आदिकी तरह मनुष्य रचित हैं।

तथाच—'ऐतरेयारण्यक' (२—५) में भी—'उक्तं ऋषिणा' कहकर इसी मन्त्र को उपस्थित किया है। तथा मन्त्र देकर लिखा है कि—'वामदेव एवमुवाच'।

इसमें भी वामदेवने ऐसा कहा है अर्थात् यह ऊपरका वृत्तान्त वामदेव ऋषिने कहा, यह स्पष्ट है। यदि वेद ईश्वरीय ज्ञान होते, अथवा इन मन्त्रों में ईश्वरका वर्णन होता तब तो ब्राह्मणग्रन्थमें यह कहा जाता कि 'ईश्वरीय एवमुवाच'। 'उक्तं ऋषिणा' से परमात्मा का अभिप्राय समझना घोर अन्याय है।

शतपथका प्रमाण—

ब्रह्म वा इदमग्र आसीत् । तदात्मानमेवावेदहं ब्रह्माऽस्मीति तस्मात् तत्सर्वमभवत् तद्यो देवानां प्रत्य-बुध्यत स एव तदभवत् तथर्षीणां तथा मनुष्याणाम् ॥२१॥

तदेतत् पश्यन्नृषिर्वामदेवः प्रतिपेदे । (अहं मनुरभवं सूर्यश्चेति) तदिदमप्येतीदं य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदं सर्वं भवति ॥२२॥

(श० कां० २४ प्र० ३ ब्रा० १)

अर्थ—पहिले ब्रह्मा ही एक था, उसने यह जाना कि मैं ब्रह्मा हूँ। उससे यह सब होगया। जो जो देवोंमें ऐसा जानता है वह भी वैसा ही होता है, वैसे ही ऋषियोमे से तथा मनुष्योंमें से भी।२१।

इसी प्रकार वामदेवने अपने आपको ब्रह्मा जाना और कहा, कि मैं मनु हुआ और मैं सूर्य हुआ इति। अतः अब भी जिसे यह ज्ञान होजाता कि मैं ब्रह्मा हूँ, वह भी यह सब कुछ होजाता है।२२।

श्री प०भगवद्दत्तजीने भी उपर्युक्त ब्राह्मण का उल्लेख किया है, किन्तु अर्थमें खेंचातानी करके अपने भाव इस ब्राह्मण से कहलानेका प्रयत्न किया है। परन्तु बुरी तरह असफल हुए हैं। अब यह स्पष्ट होगया कि, शतपथकार ऋषि भी इन मन्त्रोको ऋषिप्रणीत मानते हैं। तथा जो भाव गीता मे है अथवा अन्य किसी अद्वैतवादीकी कवितामें होसकता है, उसी भावसे ऋषिने पूर्वोक्त मन्त्रोंको बनाया है; ईश्वरने नहीं।

प्रश्न—ब्राह्मणकारोंका प्रायः यह नियम है कि प्रतीक रखकर अपनेही वेदकी व्याख्या करते हैं। तथा जब कोई दूसरे वेदकी

बात कहनी होती है, तो ब्राह्मणकार सम्पूर्ण मन्त्रको लिखते हैं सो शतपथब्राह्मण तो यजुर्वेदका है और उपर्युक्त मन्त्र हैं ऋग्वेदके। पुनः यहां मन्त्रका प्रतीक ही क्यों रक्खा। सम्पूर्ण मन्त्र क्यों नहीं लिखा ?

उत्तर—प्रथम तो यह कोई नियम नहीं है। यदि थोड़ी देरके लिए हम आपकी बात मान भी लें तो इससे आपके पक्षकी पुष्टि कैसे होसकती है। अपितु—इससे तो यही सिद्ध होता है कि ये मन्त्र यजुर्वेदमें भी थे। अब किसी कारण से उसमें नहीं रहे, तथा और भी मन्त्र ऐसेही निकल गये हैं।

प्रश्न—हम आज भी देखते हैं कि वेद मन्त्रोंके पदोको लेकर ऐसेही कार्य्य चलाये जाते हैं।

यथा 'सत्यं ब्रवीमि' (ऋ० १०।१२७।६)

'अहमेव स्वयमिदं वदामि' (ऋ० १०।१२५।५)

अर्थात् मैं सत्य कहता हूँ, तथा मैं ही स्वयं यह कहता हूँ। वामदेवने भी इसी प्रकार मन्त्रों द्वारा अपने भाव प्रगट किये थे; न कि उसने मन्त्र बनाये थे।

उत्तर—यह है—पक्षपातका प्रत्यक्ष उदाहरण। भला 'सत्य कहता हूँ' इस वाक्यमे और 'मैं मनु था' 'मैं ही सूर्य था' इस वाक्यमें कुछ भेद है या नहीं ? यदि कुछ भेद नहीं है तब तो ठीक है, और यदि कुछ भेद है, जो कि प्रत्यक्षही दीखता है तो बोदी दलीलका आसरा लेकर आपने अपने मतकी सिद्धि समझी, यह बालवत् क्रीडाके अतिरिक्त और क्या है ?

एक मनुष्य कहता है कि मैं वैश्य हूँ, मैंने पहले बी० ए० पास किया, फिर शास्त्री, अब डाक्टरी कर रहा हूँ और फिर मैं अपना

व्यापार करूँगा, इत्यादि वाक्योंसे मूर्खसे मूर्ख भी यह समझ लेगा कि यह मनुष्य अपना जीवन सुना रहा है।

तथा च—एक मनुष्य कहता है कि 'मैं सत्य कहता हूँ, मैं स्वयं कहता हूँ' इन वाक्योंसे आर्य पुरुषोंके सिवाय अन्य तो कोई ीवन चरित्र नहीं समझ सकता। फिर इन शब्दोंका सामंजस्य ो क्या है, जो इनका उदाहरण दिया।

था च—

एतान् भावानधीयाना ये चैत ऋषयो मताः।
सप्तैते सप्तभि श्चैव गुणैः सप्तर्षयःस्मृता॰ ॥ ६३ ॥
दीर्घायुषो मन्त्रकृत ईश्वरा दिव्यचक्षुष॰।
वृद्धा॰ प्रत्यक्षधर्माणो गोत्रप्रवर्तकाश्च ये ॥ ६४ ॥
(वा० पु० अ० ६१)

अर्थ—इनमें सप्तऋषियोको तथा उनके वंशजोंको मन्त्र-कर्त्ता कहा है। भृगु, अत्रि, अंगिरा, वशिष्ठ, विश्वामित्र, अगस्त्य और कश्यप ये सप्तऋषि हैं। वास्तवमें वेदोंके स्वाध्यायसे भली-भाँति ज्ञात होजाता है कि इन्हीं सप्तऋषियोंका तथा इनके वंशजोंकाही वर्णन वेदोंमे प्रायः आता है। ये ही प्रजापति आदि उपाधियोसे विभूषित थे।

यथा—वेद भी इसीका समर्थन करता है—

तन्नुनः पूर्वे पितरो नवग्वा॰ सप्त विप्रासो अभिवाजयन्तः।
(ऋ० ६।२२।२)

अर्थात् नौ महीनेमें यज्ञ करने वाले पुरातन सप्तसंख्यक मेधावी हमारे पितर अङ्गिरा आदिने इन्द्रको बलवान् अथवा अन्नवान् करते हुए स्तुतियों अर्थात् मन्त्रसमूह द्वारा उनका

स्तवन किया था। इत्यादि मन्त्रों द्वारा निर्विवाद सिद्ध है कि अङ्गिरा आदि चिरन्त (पुरातन) ऋषियोंके वंशजों द्वारा वेदोंका निर्माण हुआ है। वेदों के अध्ययन से भी यह बात स्पष्ट सिद्ध होजाती है, तथा वायुपुराणादि आर्ष ग्रन्थोंने भी इसी बातकी पुष्टि की है।

प्रश्न—वेदोमें ही वेदोंकी उत्पत्तिका वर्णन ईश्वरसे बताया गया है।

यथा—तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥
(ऋ० १०।९०।९)—(यजु० ३१।७)

अर्थात्—उसी यज्ञरूप परमात्मासे ऋक्, यजुः, साम और अथर्ववेद उत्पन्न हुये। तथा च—

कालादृचः समभवत् यजुः कालादजायत।
(अथर्व० कां० १९ सू० ५४।३)

अर्थात्—उस कालवाचक परमात्मासे ऋग्वेद, यजुर्वेद आदि पैदा हुए। तथा च—

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा अधिश्रिताः ॥
(अथर्व० ११।७।२४)

अर्थात्—उसी परमात्मासे ऋक्, यजु, साम, अथर्ववेद और पुराणादि उत्पन्न हुए।

इत्यादि अनेक प्रमाणोसे सिद्ध है कि वेद ईश्वरसे उत्पन्न हुए हैं।

उत्तर—इन मन्त्रोंमें तो क्या, सम्पूर्ण वैदिक साहित्यमे कहीं भी ईश्वरसे वेदोंकी उत्पत्तिका वर्णन नहीं है।

वेदोंमें तो जैसा कि हम प्रमाणों द्वारा सिद्ध कर चुके हैं, अनेक ऋषिद्वारा वेद-निर्माणका समर्थन है । यहाँ इन मन्त्रोंमें, यज्ञ, काल और उच्छिष्ट आदि शब्द अश्वमेधादि यज्ञ तथा संवत्सर के वाचक हैं । यथा—

यज्ञोंके समय मन्त्र-रचना

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि कउतच्चिकेत ।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शंकवोऽर्पिता षष्ठिर्नचलाचलासः ।

(ऋ० १।१६४।४८)

इसका भावार्थ यह है कि सम्वत्सररूपी कालचक्रके १२ महीने तथा ३६० दिन होते हैं, एवं तीन ऋतुऐं होती है ।

ब्राह्मणग्रथोंमें भी इसके प्रमाण मिलते हैं, यथा—

त्रयो वा ऋतवः सम्वत्सरस्य ।

(श० प० ३।४।४।१७)

तथा च—

संवत्सरो वै प्रजापतिरग्निः तस्य वा एतस्य संवत्सरस्य प्रजापते सप्त च शतानि च विंशति च अहोरात्राणि ॥

(श० १०।४।२।१-२))

अर्थात्—ऋतुए तीन तथा ७२० दिनरात होते हैं, । इन प्रमाणोंसे यह सिद्ध होता है कि पूर्व समयमे, वर्ष ३६० दिनका माना जाता था । परन्तु वास्तवमें वर्ष होता है २६५¼ दिनका । अतः एक वर्षमें सवा पाँच दिन बढ़ते थे । वे लोग इन सवा पाँच दिनकी कमीको चौथे वर्षमें पूरा करते थे । उस समय पूरे २१ दिन बढ़ जाते थे । इसीलिए चौथे वर्षमें २१ दिनका एक और मास

बढ़कर उस चौथे वर्षको १३ मासका करते थे । इस चौथे-वर्षके अन्तिम २१ दिनोंमें राष्ट्रपतिकी राजधानीमें अश्वमेध, पुरुषमेध और सर्वमेधादि यज्ञ होते थे। उस यज्ञके समय कवि लोग अपनी अपनी कविताएँ बनाकर ले जाते थे। उन्हींका नाम मन्त्र होता था। इस विषयमें अनेक प्रमाण शास्त्रोंके हैं।

इन्हीं चार वर्षोंका नाम पूर्व समयमें युग था। युगान्तमें वेदों की उत्पत्तिका वर्णन जो हम पूर्व लिख चुके हैं इसी चतुर्थ वर्षसे अभिप्राय है। तथा यज्ञसे वेदोंकी उत्पत्तिका भाव भी यही है कि इन अश्वमेधादि यज्ञोंके लिये मन्त्र बनाये जाते थे। तथा इसी काल से वेदोंकी उत्पत्तिके कथनका अभिप्राय है कि कालरूप सवत्सरके लिए मन्त्र बनाये जाते थे। तथा च—यही भाव उच्छिष्टसे वेदोकी उत्पत्तिका है कि उच्छिष्ट अर्थात् बचे खुचे जो २१ दिन हैं उनसे वेद प्रगट हुए, अर्थात् उस समयके लिए बनाये गए । इस प्रकार सबकी सङ्गति लग जाती है। इसी समय पूर्वके मन्त्रोंका संग्रह होता था। तथा नये मन्त्रोंकी रचना होती थी। इस युगके प्रथम वर्षका नाम इद्वत्सर था तथा दूसरेका नाम अनुवत्सर था व तीसरेका नाम परिवत्सर और चतुर्थका नाम सवत्सर होता था इस अन्तिम संवत्सरमें यज्ञ आदि होते थे।

संवत्सरवेलायां प्रजा वाचं प्रवदन्ति ॥

(श० ७।४।२।३८)

अर्थात्—संवत्सरके समय, (चौथे वर्ष अश्वमेधादिके समय*) प्रजा वाचं काव्यं कुर्वन्ति, अर्थात् उस समय आपसमें मुशायरा होता था। तथा च, लिखा भी है कि—

*ये अश्वमेधादि यज्ञ, राजा जनमेजयने बन्द किये । क्योंकि उनमें घृणित विकार होगये थे। उसी समयसे मन्त्ररचना भी बन्द होगई।

सम्वत्सरो वै देनानां जन्म ॥

(श० ८।७।३।२१)

अर्थात्—सम्वत्सर विद्वानोंका जन्म है (उत्पादक) है।

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि उस समय विद्वान् कवियोंको पारितोषिक तथा उपाधियां दी जाती थीं। इसीसे विद्वान् उन्नति करते थे तथा अन्य पुरुषोंको भी विद्वान् बनकर प्रतिष्ठा प्राप्त करनेका उत्साह होता था। इसीलिये भारतवर्षमे विद्वान् होते थे। उसी समय उन विद्वानोसे पाश्चात्य देशोंके मनुष्य विद्या-दान लेने आते थे। इसीका नाम मन्वन्तर था, वेद स्वय कहता है—

युगे युगे विदथ्यं गृणद्भ्योरयिं यशसं धेहि नव्यसीम्।

(ऋ० ६।८।५)

अर्थात्—ऋषि कहते है कि प्रत्येक युगमें नये मन्त्र बनानेवालो को (हमें), आप धन तथा यश प्रदान करो, अर्थात् पारितोषिक और उपाधि दो। तथा च—

सम्वत्सरो वै प्रजापति अग्नि, सऋचो व्यौहत्...... ॥

(श० १०।४।२।१८)

अर्थात् सवत्सर ही प्रजापति अग्नि (ब्रह्मा) है। जब उस प्रजापतिने (सम्वत्सरमें) ऋग्वेदका सकलन किया तो उसकी संख्या १२००० बृहती हुई, इतने ही उसके बनाये हुए मन्त्र थे। (एतावत्योऽर्चोयाः प्रजापतिसृष्टाः) पुनः उसने यजुर्वेद और सामवेदका सग्रह किया तो यजुर्वेद ८००० और सामवेद ४००० बृहतियोका हुआ, इतने ही प्रजापतिके मन्त्र बनाये हुए थे। यह संकलन आज से १०००० वर्ष पूर्व हुआ; उस समय तीन ही वेद थे तथा उनकी मन्त्रसंख्या संभवतः २४००० थी। पुनः इन्हींमेसे लेकर एक चतुर्थ वेदकी रचना हुई है, इसमे कुछ भी सन्देह नहीं है।

इस प्रकार उपर्युक्त प्रबल प्रमाणों से यह बात सिद्ध होगई कि वेद सम्वत्सरके अन्तमें बने थे। तथा उनका पुनः संकलन भी होता था।

प्रजापतिरकामय महान् भूयान् स्यामिति, स एताश्वमेधं महिमानौ ग्रहावपश्यत्, तावजुहोन् ततो वै स महान् भूयान् अभवत् ॥

(श० १३।२।५)

अर्थात् प्रजापति संवत्सरको बड़ा होने की इच्छा हुई, उसकी इच्छा पूर्ति कराने वाले दो ग्रह उसको अश्वमेध मे दिखलाई दिये। उसने उनसे अश्वमेध यज्ञ किया। उस (यज्ञ)से वह बड़ा हुआ। इसका स्पष्ट भाव यही है कि उस समय बड़े वर्षमे अश्वमेध यज्ञ किया जाता था। तथा च—२१ यूप इस यज्ञ में होते हैं। उसका भी अभिप्राय यही है, कि यह शेष बचे हुए २१ दिन तक होता था।

असौ वा आदित्य एकविंशः सो अश्वमेधः ॥

(श० १३।५।१।५)

प्रजापतिर्वा अश्वमेधः ॥

(श० १३।२।२।१३)

उपर्युक्त प्रमाणोंसे सिद्ध है, कि उस (चतुर्थ) वर्षमें अश्वमेधादि यज्ञ होते थे, तथा उस समय मन्त्र बनाकर ऋषि लोग लाते थे और उनको पुरस्कार तथा उपाधियाँ वितीर्ण की जाती थी। जिससे उनका यश भी फैलता था और उनको भोजनादिकी चिन्ता भी नहीं रहती थी। इसीलिए वे लोग रातदिन तत्व-विचार में निमग्न रहते थे। महाभारतकी एक कथासे ज्ञात होता है, कि ऐसे ऋषियोंकी संख्या एक लाख अड़तीस हजार थी। ये सब

मन्त्र-रचयिता रातदिन तत्व-विचारमें लगे रहते थे । परन्तु भारतके दुर्भाग्यसे ऐसा समय आया कि इन वेदोंको ईश्वरीयज्ञान अथवा नित्य मानने लगे, तथा जनताके हृदयमें यह विश्वास जमा दिया, कि मन्त्र कोई बना ही नहीं सकता। बस, फिर कोई क्यों प्रयत्न करने लगा। इस प्रकार यह प्रथा बन्द होगई। उसी समयसे भारतमे विद्वानोका अभाव होना आरम्भ होगया। इन भोले भक्तोने इतना भी विचार नहीं किया, कि वेदको ईश्वरीय ज्ञान कहनेसे वेदोका क्या महत्व होसकता है। जब किसी अनुभवी विद्वान्‌ने अपने अनुभव उसमे लिखे हों। मनुष्योंने सुख, दुःख, आशा, निराशा, कष्टसाध्य, सुसाध्य आदि बातो का अनुभव ईश्वरको कैसे होसकता है। एक राजा, दरिद्रीके दुःखोका अनुभव कैसे कर सकता है। इसीलिए एक दरिद्र किसी प्रकार उन्नति करे, यह उपदेश राजा किस प्रकार देसकता है। यदि सुना-सुनाया दे भी तो एक गरीब-हृदयमे उसपर क्या श्रद्धा होगी।

कहां तक कहें—वेदोको ईश्वरीय ज्ञान माननेसे न तो वेदोका कुछ गौरव रहता है और न भारतवर्षका, तथा न ही भारतके ऋषियोंका, एवमेव न ईश्वरका ही अस्तित्व रहता है। अतः यह कल्पना विना विचारे की गई है। इसका जितनी शीघ्रता से मूलोच्छेद किया जावेगा, उतनी ही जल्दी मनुष्य जातिकी उन्नति होकर उसका उपकार होगा।

ब्रह्मा देवानां पदवी कवीनामृषिर्विप्राणाम्

(निरुक्त-परिशिष्ट)

अर्थात्—ब्रह्मा उन विद्वानोकी पदवी है, जो कि तपस्वी और कवि थे। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है, कि पदवी (उपाधि) कब प्रदान की जाती थी? इसका उत्तर अश्वमेधके समय ही, हो

सकता है। इसमें कवि शब्द सुन्दररूपसे मन्त्र-निर्माता विद्वानोंका बोध करा रहा है। तथाच—

तिस्रो वाचमीरयति प्रवह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्।

(नि० परि०)

अर्थात्—वह्नि (अग्नि) ब्रह्माने तीन वेद बनाये। यहाँ ब्रह्मा शब्दसे उन सम्पूर्ण मन्त्र-प्रणेता कवियोंसे ही अभिप्राय है। जिनको ब्रह्माकी उपाधि प्राप्त हुई थी। निरुक्तकार वह्नि शब्दका अर्थ सूर्य करके 'उसीने तीन वेदोंको बनाया' ऐसा लिखा है। यह भ्रममूलक है; वास्तवमें यहाँ वन्हि शब्द उपलक्षणमात्र है जोकि सम्पूर्ण कवियों का बोध कराता है। संभव है निरुक्तकारका अभिप्राय प्रथम साम-वेद बननेसे हो और अन्य दो वेदोंको बादके बने हुये समझता हो, जैसा कि अनेक विद्वानोंका मत है।

एते वै कवयो यद् ऋषयः॥

(श० ५।२।१।२४)

अर्थात्—कवि लोग (मन्त्र-प्रणेता) ही ऋषि कहलाते थे उन्हीं को ऋषि, ब्रह्मा आदिकी उपाधियाँ प्रदान की जाती थीं। विश्वा-मित्र और वामदेवकी कथा जो पूर्ववर्णित है, उससे भी यह सिद्ध होता है, कि वामदेवने विश्वामित्रके बनाये हुए मन्त्रोंको अश्वमेधके समय उपाधि तथा अनेक लोभसे अपने बनाये हुए कहकर प्रगट किया था। इसी प्रकारके और भी अनेक प्रमाण हैं। यथा—

प्रपूर्वजे पितरा नव्यसीभिर्गीर्भिः कृणुध्वं सदने।

(ऋ० ७।५३।२)

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि, हे मित्रावरुण! तुम्हारी स्तुति के लिये नये मन्त्रात्मक स्तोत्र बनाये जायें तथा मेरे द्वारा निर्मित और संगृहीत स्तोत्र तुम्हें प्रसन्न करें। तथा च—

ब्रह्मकृण्वन्तः परिवत्सरीणम् ।

(ऋ० ७।१०३।८)

अर्थ—वसिष्ठ ऋषिने वर्षाकी इच्छासे पर्जन्यकी स्तुति की थी और मण्डूकोंने उसका समर्थन किया था। मण्डूको (मेढकों) को समर्थक जानकर उनकी भी स्तुति की है। वे स्तुत्यात्मक मन्त्र इस सूक्तमे ग्रथित हुए हैं। इस मन्त्रमे वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि सोम से युक्त और वार्षिक कवि-सम्मेलनमे कविता-पाठ करनेवाले मन्त्रकार कवियोकी तरह मेढक शब्द करते हैं। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि पूर्व समयमे वार्षिक कवि-सम्मेलन होते थे और उनमे मन्त्रनिर्माता ऋषि अपनी अपनी रचनाऍ सुनाते थे।

वेद ईश्वरकृत नहीं

वेदोको ईश्वरकृत माननेमे प्रथम तो यह प्रश्न उपस्थित होता है, कि ईश्वरसे वेद किस प्रकार उत्पन्न हुए? क्या जिस प्रकार माताके गर्भसे बच्चा उत्पन्न होता है, उस तरह उत्पन्न हुए, किंवा दूधसे घी उत्पन्न होता है, ऐसे उत्पन्न हुए, अथवा पृथ्वीसे उद्भिज जन्तु उत्पन्न होते हैं—इस प्रकार उत्पन्न हुए। इनमेसे आप किसी प्रकारसे मानें, सब ही तरहसे आपको ईश्वर साकार मानना पड़ेगा; जब ईश्वर साकार होगया तो उसकी उत्पत्ति आदि भी माननी पड़ेगी। ऐसी अवस्थामे उसकी मृत्यु भी अवश्यम्भावी है। पुनः वह ईश्वर है, इसमें कुछ प्रमाण नहीं रहेगा। तथा च—जो वस्तु उत्पन्न होती है, उसके तीन कारण अवश्य होते हैं—

(१) उपादानकारण (२) निमित्तकारण (३) साधारणकारण। यदि ईश्वर वेदोका उपादान है—ऐसा कहें तब तो ईश्वर अवयवी सिद्ध होगा। वेदोंको हम जड़ देखते हैं, परन्तु ईश्वरको आप चैत-

न्य मानते हैं। 'कारणके गुण कार्यमें होने चाहिये' यह नियम नहीं रहेगा। इसलिये वेदोंका ईश्वरसे उत्पन्न होना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता। तथा च, वेदोंमे ब्राह्मणग्रन्थों और इतिहास आदिसे हम यह सिद्ध कर चुके हैं, कि वेद ब्रह्माने बनाये जो कि मनुष्य था, अतः हमारा मत ठीक है।

प्रश्न—ईश्वरसे उत्पन्न हुएका अभिप्राय यह है कि सृष्टिके आदिमें चार मनुष्योंके मनमे परमेश्वरने वेदोंका ज्ञान दिया ?

उत्तर—यह निराधार, मिथ्यावागाडम्बर है। क्योंकि 'प्रथम सृष्टि उत्पन्न हुई' यही असिद्ध है, क्योंकि इसमें कोई प्रमाण नहीं। यदि कहो कि 'हमारे शास्त्रोंमे लिखा है' तो यह साध्य समानिग्रह स्थान है। क्योकि आपके शास्त्र भी अभी असाध्य हैं। यदि आपको प्रसन्न करनेके लिये हम यह मान भी लें, कि सृष्टि उत्पन्न हुई, तो वेदोको देते हुए किसने देखा ? सम्पूर्ण शास्त्रोमे एक भी ऐसे व्यक्तिका नाम नहीं लिखा, जिसने यह साक्षी दी हो, कि मैंने परमात्माको वेद अथवा ज्ञान देते हुए देखा है। दुःख तो केवल इस बात का है, कि उन ऋषियोने भी यह कहीं नहीं कहा कि हमको ये वेद परमात्माने दिये हैं। ऐसा एक भी वेदमन्त्र नहीं है। पुनः यह प्रश्न उपस्थित होता है, कि ज्ञान या मन्त्र दिये किस प्रकारसे ? ताड़पत्रपर लिखकर अपने किसी दूतके हाथ अथवा पोस्टआफिसके द्वारा भेजे ?

प्रश्न—ईश्वर सर्वव्यापक है, अतः जीवके अन्दर भी व्यापक है। बस, उसने उनके दिलोंमे प्रेरणा की।

उत्तर—प्रथम तो ईश्वरका जीवके अन्दर व्यापक होना, पुनः जीव और ईश्वर दो पृथक् २ भी हों—यही असम्भव है; परन्तु

इसका विचार तो हम फिर कभी करेंगे। यहाँ तो आपकी बात मानकर हम यह पूछना चाहते हैं कि प्रेरणा किस प्रकार की। अर्थात् किसी शारीरिक सकेतसे, या वाणीद्वारा बोलकर, किंवा कागजपर लिखकर। उपर्युक्त तीनो प्रकारो से ईश्वर साकार सिद्ध होगा। यदि कहो, कि उन ऋषियो के मनमें भाव उत्पन्न हुए; तो ये भाव उनकी अपनी आत्मा के थे, तब तो उसके मन मानना पड़ेगा, क्योकि बिना मन के भाव उत्पन्न कहाँ होगे? यदि कहो, कि ऋषियोके थे तो आपके सिद्धान्तकी हानि है, और यदि थोड़ी देरके लिये उपर्युक्त प्रश्न न भी करें तो भी ईश्वर एक रस नहीं रहता। क्योकि उसके ऐसे भाव कि 'मैं वेद-ज्ञान हूँ' किसी समय-विशेषमें उत्पन्न होते है। तथा च, एक प्रश्न और भी उत्पन्न होता है, कि इन चार ही ऋषियोको वेद क्यो दिये, सबको क्यो नहीं दिये? यदि कहो, कि उनके ही कर्म ऐसे थे तो ईश्वरको यह दया नहीं है, अपितु ज्ञान देना न्याय है, जो कि इस गिरे जमानेके भी सर्वथा विरुद्ध है। आज कल तो निःशुल्क विद्या होनी चाहिये—यह आन्दोलन हो रहा है और आपका तो ईश्वर भी, बिना फीसके ज्ञान नहीं देता। ऐसे स्वार्थी तथा अनुदार ईश्वरकी तो स्वामी दयानन्दजीके शब्दोमे बहिष्कार ही अच्छा है*। अतः इस कल्पनामें कोई भी सार नहीं है। इसलिये सरल अर्थोंको छोडकर क्लिष्ट कल्पना करना (और वह भी असम्भव) क्या बुद्धिमत्ता है। अतः जहाँ २ वेदोत्पत्तिका वर्णन है, वहाँ वहाँ अग्नि (ब्रह्मा) ऋषिसे वेद उत्पन्न हुए यही अर्थ लेना चाहिये।

---

*पुनः सत्यार्थप्रकाशके सप्तम समुल्लासमें यह लिखा है कि माता पिता की तरह सब मनुष्योंकी ईश्वर उन्नति चाहता है। इसलिये ईश्वरने कृपा करके वेदोंको प्रकाशित किया। यह भी मिथ्या सिद्ध होगा।

वेदोंकी रचनाका समय विचार

'विश्ववाणी' (वर्ष २ भाग ३ सं० १ पृ० १५०)

प्राचीन कालके अन्य सभ्य देशोंकी तरह वैदिक कालके आर्यों को भी वर्ष गणनाकी रीतिका स्पष्ट और ठीक ठीक ज्ञान था। गर्मी, वर्षा और जाड़ेकी ऋतुओंके नियमित चक्रने ससारके लगभग समस्त प्राचीन निवासियोंका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया था। वे इस बातसे परिचित होगये थे कि ये सब वस्तुए क्रमानुसार बारह बारह महीनोके बाद आती हैं। शुरु शुरुमें उन्होंने चान्द्र तिथियोके हिसाबसे बारह महीनो या ३५६ दिनके वर्षकी कल्पना की होगी। किन्तु इस सिद्धान्तके अनुसार थोड़े कालके उपरान्त ही उन्हें ऋतुओका समय ठीक ठीक निर्धारित कर सकना बहुत कठिन जान पड़ा होगा। इस बातकेलिये किसी प्रमाणकी जरूरत नहीं है कि समस्त कृपिप्रधान जातियोंको ऋतुओंके शुरु और अत होनेकी निश्चित जानकारी आवश्यक है। जिस किसीने ऋग्वेदका बहुत थोड़ा सा अंश भी पढ़ा है उसको उसमें जरा भी सन्देह नहीं हो सकता कि कृषि, वैदिक कालीन आर्योंका एक महत्वपूर्ण धन्धा था और पूर्णिमा और शुक्ल दूजके दिन यज्ञ करना वैदिक कालीन आर्योंके लिये धार्मिक और नितान्त आवश्यक था। यह बहुत सम्भव है कि शुरु शुरुमे अपने हितमें ऋतुओंके ठीक ठीक और यज्ञ आदिके लिये पूर्णिमा आदि तिथियोंका निश्चित बोध करनेमें वैदिक ऋपियोको बहुत परेशानी हुई होगी। सौर वर्षके स्थानपर चान्द्र वर्षके कारण जो गड़बड़ी हुई, उसके सम्बन्धमें 'शतपथ-ब्राह्मण' (काण्ड ६, १, ८) में लिखा है—

"ऋतुओंको इच्छा हुई कि वे भी देवताओंके समान यज्ञमें हिस्सा पावें और उन्होंने कहा, 'हमे भी यज्ञमे हिस्सा दो। हमें

यज्ञके अंशसे वञ्चित न करो। हमें भी यज्ञमें हिस्सा दो।' किन्तु देवताओंने इसे स्वीकार न किया तो ऋतुए देवताओंके ईर्षालु और नृशस शत्रु असुरोंके पास गईं। तब वे असुर।धन-धान्यसे इतने पूर्ण हुये कि देवताओंने उसे सुना और जबकि असुरोंमें प्रधान अभी जोत-बोरहे थे, उनके अन्य लोग कटाई और मड़ाई कर रहे थे। उनके लिये वगैर जोते हुये ही फसलें पकने लगीं।"

इस उद्धरणसे यही अर्थ निकलता है कि देव और असुर चाहे वे हिन्दू और जरथुस्त्री रहे हों या आक्रामक आर्य या भारतकी आदि जातियां रही हो, ऋतुओंके सम्बन्धमें उनका ज्ञान बहुत गड़बड़ था, जब कि एक वर्ग उसे बोनेकी ऋतु समझता तो दूसरेके लिये वही काटनेकी ऋतु होती थी।

यजुर्वेदमें इस तरहके वाक्य बहुधा आते हैं—

"ऋतुओंमें गड़बड़ हो सकती है" (५, ६, ३,) और "यदि उचित रूपसे निश्चित तिथियो पर यज्ञ किये जायं, तो ऋतुयें अपनी जगह निश्चित रहती है।" (६,३,३, १८, और ७,१,१०)।

इसका अर्थ यह है कि वैदिक ऋषियोंने अनुभवसे चान्द्र तिथियोंके वर्ष अनुसार ऋतुओंका समय निर्धारित करनेकी निरर्थकता देखली और वे चार तरहकी वर्ष गणनाका आविष्कार करनेमें सफल हुये। वे वर्ष ये थे—३५४ दिनका चान्द्र वर्ष, ३६० दिनका सावन वर्ष, ३६५¼ दिनका सौर और वर्ष ३६६ दिनका नक्षत्र-गणनाके अनुसार वर्ष। चान्द्र वर्ष और नक्षत्रोंकी गणनाके अनुसार निश्चित किये वर्षके अन्तरको ठीक करनेके सम्बन्धमे शतपथब्राह्मण (११, १, २, १०) मे निम्नलिखित वाक्य आते है—

"वास्तवमें जो लोग पूर्णिमा और शुक्ल दूजके दिन यज्ञ

करते हैं, वे (समयके साथ) दौड़ लगाते हैं। यह १५ वर्षोंकी अवधिमें करना चाहिये—इन १५ वर्षोंमे ३६० दिन पूर्णिमा और शुक्ल दूज होती हैं और १ वर्षमें ३६० रात्रियां होती हैं। इस तरह वह इन दिनोको प्राप्त करता है।"

'भगवत्गीता' (८, २४, २५) के पाठकोंको यह बतानेकी आवश्यकता नहीं है कि सूर्य जब तक छः महीने दक्षिणायनमें रहता है, हिन्दू उसे रात्रि समझते है, और जब सूर्य छः महीने उत्तरायण में रहता है तो उसे दिन समझते हैं। इसके अनुसार उपर्युक्त वाक्यका यह अर्थ होता है, कि १५ नक्षत्र वर्षोंमें यज्ञ करने वालेको प्रत्येक २४ घन्टोके १८० दिन मिलेगें या प्रत्येक १२ घंटोकी ३६० रातें मिलेंगी। दक्षिणायनमें प्रति १२ घण्टोके १८० दिन, रात्रिमें शुमार किये जाते हैं। दूसरे शब्दोंमें ३६६ दिनोके १५ नक्षत्र वर्षोंमें ६ मल-मास या अधिक-मास पड़ते हैं, क्योंकि ३५४ दिनके प्रत्येक चान्द्र वर्ष से नक्षत्र वर्ष १२ दिन बढ़ जाता है। इस तरह १५ नक्षत्र वर्षोंमें १५×१२=१८० मलमासके दिन पड़ेंगे।

इससे यह जाहिर होता है कि चान्द्र वर्षमें लगातार ३० वर्षों तक गड़बड़ी चलती रहती थी और ३० वर्षके बाद वह फिर उपयुक्त हिसाबसे शुरु होता था। इन तीस वर्षों तक उसमें मलमासके दिन न जोड़े जाते थे। यजुर्वेदमें ज्योतिषियोके दो दलोंका जिक्र आता है, जिनमें एक दल 'उत्सर्गी' कहलाता था, जो बीचमें मलमासके दिन जोड़ता था; किन्तु दूसरा दल चान्द्र वर्षको स्वतः ही ठीक होने देता था। यजुर्वेद इस दूसरे दलकी वकालत नीचे लिखे शब्दोमे करता है—

तदाहुर्यां वै त्रिरेकस्याह्न उपसीदंति दह्नं वै साऽपराभ्यां दोहाभ्यां दुहेऽथ कुतस्सां धौक्ष्यते मां द्वादशकृत्व

उपसीदतीति। संवत्सरं संपाद्योत्तमे मासि सकृत्पृष्ठान्युपेयु-स्तद्यजमाना यज्ञं पशूनवरुंधते । समुद्रं वै एतेऽनवारमपारं प्रप्लवंते ये संवत्सरमुपयन्ति। (७।५।३)

इसलिये वे कहते हैं—"(गाय) जिसे वे दिनमें तीन वार दुहते हैं, अगले दो वार दुहनेमें वहुत थोड़ा दूध देगी । फिर वह गाय कैसे दूध देगी, जिसे वे वरावर दुहने वैठते है। इस तरह पूरा वर्ष होनेपर अन्तिम मासके अन्तमे वे छः 'पृष्ठ दिवस' मनाते हैं। इस तरह यज्ञ करनेवाले अपनी वलि (वर्ष) और विना दुही हुई गायो को बचा रखते हैं। इस तरह यज्ञ करनेवाले मलमासयुक्त वर्ष लेकर ऐसी स्थितिमे होते हैं, जैसे किसी असीम समुद्रमे तैर रहे हों।"

वर्षको तीन बार दुहनेका अर्थ है वर्षमे चार चार महीनेके तीन भाग, और वारह वार दुहनेका अर्थ है वारह मलमास। 'पृष्ठ' शव्द छः दिनके समयके लिये प्रयुक्त होता है, जो शायद यजुर्वैदिक कालमे सप्ताहके लिये प्रयुक्त होता था।

जो दल मलमास जोड़नेके विरुद्ध था उसके सम्वन्धमे नीचे लिखे वाक्य आते है—

यदहर्नोत्सृजेयुर्यथा दृतिरुपनद्धो विपत्त्येवं संवत्सरो विपतेत् । आर्तिमार्च्छेयुः पौर्णमास्यामासान् संपाद्याहरु-त्सृजति संवत्सरायैव तदुदानं दधाति । तदुसन्निण उदानंति नार्तिमार्च्छन्ति। पूर्णमासे वै देवानां सुतः । (७।५।६)

"यदि वे दिनको नहीं छोड़ते, तो जिस तरह एक चमड़ेकी हवा भरी थैली फट जाती है उसी तरह वर्ष भी वैठ जाता है और वे आफतमें फस जाते है जो (मलमास) का दिन वे छोड देते हैं वह मासके साथ मिलकर पूर्णिमाको निश्चित करता है और वर्षके

जीवन देता है। इस तरह यज्ञ करनेवाले पुरोहितोंको जीवन मिलता है और वे आफतमें नहीं आते हैं। पूर्णिमाके दिन, देवताओंको 'सुत' (सोमरस) की अञ्जलि दी जाती है।"

मलमास जोड़ा जाय या न जोड़ा जाय इस विषयको लेकर मालूम होता है कि वैदिक कालके ज्योतिषियोंमें चख-चख और गरमागरमी रही। यजुर्वेदमें इस सम्बन्धमें नीचे लिखा उद्धरण आता है—

उत्सृज्यां ३ नोत्सृज्या३मिति मीमांसन्ते ब्रह्मवादिनः सद्वाहुरुत्सृज्यमेवेत्यमावस्यां च पौर्णमास्यांचोत्सृत्यमित्याहु- रेते हि यज्ञं वहत इति ते त्वाव नोत्सृज्ये इत्याहुः ये अवां- तरं यज्ञं भेजाते इति (७।५।७)

"ब्रह्मवादी इसपर बहस करते हैं कि वे इसे छोड़ें या न छोड़ें। वे कहते हैं कि इसे नये चान्द्र दिवसपर और पूर्णिमापर छोड़ना चाहिये, वे इसलिये कहते हैं कि उसे नहीं छोड़ना चाहिये, क्योंकि यही यज्ञके दिन हैं। किन्तु जो लोग कहते हैं कि उसे नहीं छोड़ना चाहिये; वे इसलिये कहते हैं कि नया चान्द्र दिवस और पूर्णिमा विशेष यज्ञोंके दिन हैं।"

किन्तु यह स्पष्ट नहीं लिखा है कि दिनों या महीने, या चार महीनोंमें मलमास जोड़ने या न जोड़नेका प्रश्न सौर वर्षके संबंधमें था या नक्षत्रवर्षके सम्बन्धमें ? ऊपरकी बहस यज्ञोंके सम्बन्धमें है। वे यज्ञ 'गवाम आयने' या 'गोपथ' कहलाते थे और गोपथ चूंकि मलमासके दिन मिलाकर बनाया जाता था इसलिये उपर्युक्त उद्धरण ३६६ दिनके मलमासके सम्बन्धमें ही होगा। उपर्युक्त उद्धरणमें मलमासके चाहे जिस रूपकी बहस हो, चाहे वह सौर वर्ष,

नक्षत्रवर्ष या चान्द्रवर्षको दूर करनेके लिये हो या सौरवर्षमें दिन का हिस्सा जोड़नेके लिये हो, यह बात बिल्कुल निश्चित है कि वैदिक ऋषि मलमासकी समस्यासे पूरी तरह परिचित थे। यह स्वतः प्रामाणिक वास्तविकता है कि जब तक किसी जातिको वर्ष, मास और दिन गिनने न आयें और उस समय गणनामें उसे कोई गलती न दिखाई दे, तब तक वह जाति स्वप्नमें भी मलमास जोडने की बात नहीं सोच सकती। इसलिये यह स्पष्ट है कि वैदिक ऋषियोंने वर्ष, काल और दिन गिननेका कोई तरीका निकाल रखा होगा, किंतु यह भी एक मानी हुई बात है कि वैदिक कालमें, चाहे उसका कुछ समय हो, लिखनेकी कलासे लोग परिचित नहीं थे। लिखनेकी कला के अभावके कारण किसी भी बातकी स्मृति रखनी पड़ती थी। इस बातको कहनेकी जरूरत नहीं कि वैदिक ऋषि, स्मरण शक्ति बढ़ानेको बहुत महत्व देते थे। कितने वर्ष बीतते जाते हैं, इस बातका हिसाब कैसे रखा जाय। इसके लिये वैदिक ऋषि प्रतिवर्ष किसी न किसी छन्दमें ऐसे नये मन्त्र रचते थे जिनके अक्षरोंकी संख्या ३६० होती थी। चूंकि 'सावन' वर्षमें ३६० दिन ही होते थे, इस हिसाबसे मन्त्रोंके अक्षर उतने दिनोंकी अवधिको व्यक्त करते थे। शतपथब्राह्मण में पारिसवोपाख्यान (१३,४,१,१५) मे इस विचारकी पुष्टि मिलती है। होताद्वारा दस प्राचीन राजाओं और उनके अश्वमेध यज्ञोंके कारनामोंको व्यक्त करनेवाले मन्त्रोंपर टीका करते हुए शतपथब्राह्मणमे लिखा है—

"इन चक्राकार कहानियोंमे, राजाओंकी कहानी, समस्त धर्म, समस्त वेद, समस्त देवता, समस्त प्राणियों और सच पूछा जाय तो होता जो कुछ भी जानता है, इन कहानियोंमें हमे बताता है। जो भी इसे (सुन लेता है) जान लेता है, वह राजत्व और जनताके ऊपर प्रभुत्व प्राप्त करता है। वह वेदोंका ज्ञाता है और देवताओं

को सन्तुष्ट करके सब प्राणियोंके ऊपर अपनी श्रेष्ठताको स्थापित करता है। यह क्रम बार-बार पूरे वर्ष तक चलता रहता है और फिर भी समाप्त नहीं होता; चलता ही रहता है। इसलिये इसे चक्राकार या क्रम-गत (कहानी) कहा जाता है। ३६×१० दिन तक होता इसे कहता हैं—वृहती छन्दमें ३६ मात्रायें हैं और पशुओंका सम्बन्ध वृहति छन्दसे है वृहतीके द्वारा वह अपने लिये पशुओंका आयोजन करता है (१३, ४, ४, १५)।

ऐतरेय आरण्यकमें इस बातको भी स्पष्ट रूपसे कहा गया है कि प्रत्येक दिन मन्त्रके प्रत्येक अक्षरको जाहिर करता है:—

"एक हजार वृहती छन्दोंमें यह सम्पूर्ण होता है और वह मन्त्र पूर्ण हैं जिनमें एक हजार वृहती छन्द हों जिनके (३६,०००) अक्षर हों। एकसौ वर्षमें इतने ही (३६,०००) दिन होते हैं। व्यञ्जनोंसे रातें बनती हैं और स्वरोंसे दिन।"

इससे यह स्पष्ट होता है कि वैदिक ऋषि ३६० दिनके सावन वर्ष को ३६, ३६ दिनके दस हिस्सोंमें बांटते थे और इन दस हिस्सों को विविध पशुओंका हिस्सा नाम देते थे और ३६ अक्षरोंके १० वृहती छन्दोंमें भी प्रत्येक वर्षके दिनोंका हिसाब रखते थे जिनकी वे एक वर्षमें या १ नियुक्ति अवधिमें रचना करते थे। प्राचीन मिस्री भी वर्षको ३६ हिस्सोंमें बाँटते थे। मिस्रियोंको यह ज्ञान हजरत ईसाके सैंकड़ों वर्ष पूर्व था। चूंकि ये दोनों देश एक दूसरेसे स्वाधीन यह समय गणना प्रणाली ईजाद नहीं कर सकते, इसलिये यही सम्भव है कि मिस्रियोंने यह वर्ष-गणना आर्योंसे सीखी। इस बातके प्रमाण मौजूद हैं कि आर्योंको यह ज्ञान बहुत पहलेसे था। हमारी दलील यह है कि प्रतिवर्ष वैदिक मन्त्रोंमें ३६ अक्षरोंके १०-१० छन्द जुड़ते जाते थे। इससे दोनों काम पूरे होते थे—बीते हुए दिनोंका भी हिसाब रहता था और देवताओं

की पूजा और यज्ञ आदिकी तिथियों में भी कोई गड़बड़ न होती थी।

'वेद' शब्दसे भी यही तात्पर्य है। वेद शब्दका दो अर्थोंमें उपयोग होता है—(१) 'कुश' (घास) की संख्या और (२) 'पवित्र मन्त्रों का संग्रह'। वेदका शाब्दिक अर्थ है 'ज्ञान'। इससे स्पष्ट है कि वैदिक कवि वेदसे कुश (घास) की संख्या और पवित्र मन्त्रों के अक्षरों की संख्या (जिनसे उनके युगको प्रारम्भ हुए कितने दिन बीते) इन दो बातों का हिसाब रखते थे। हिन्दुओं में अब भी यह रिवाज है कि वे समस्त यज्ञों में 'वेद' यानी कुशकी ग्रन्थियाँ बनाते हैं और यज्ञके बाद उन्हें हवनकुण्डमें डाल देते हैं। प्राचीन मेक्सिकोके निवासी दिनों या वर्षका हिसाब रखनेके लिये उतनी ही बेतों का बण्डल बनाते थे। प्रेस्काट अपनी 'हिस्ट्री आफ मेक्सिको' में लिखता है कि "मेक्सिको वाले ५२ वर्षोंका एक युग शुमार करते थे और उसे वे 'गट्ठा' या 'बण्डल' कहते थे और इसके लिये वे उतनी ही बेतोको रस्सीसे बाँधकर एक साथ रखते थे"। इसलिये यह बहुत सम्भव है कि मेक्सिकोवासियोंका जो काम बेतों के बण्डलसे पूरा होता था वही वैदिक कवि कुशसे पूरा करते थे। वैदिक मन्त्र दिमाग और कानको मधुर लगते थे तो वैदिक कुश आँखोंको सन्तोष देते थे। इस तरह ये दो प्रकारके वेद वर्ष और दिनोका हिसाब रखने और उनमें किसी तरहकी गलती न होने देने केसच्चे उपाय थे, जबकि वैदिक कुशको ४ अथवा ५२ वर्षोंके युगके बाद यज्ञमें आहुतिकी तरह छोड़ देते थे। वैदिक मन्त्रोंको जिनमें नईसे नई और बिलकुल शुरुसे पुरानी ऋचायें शामिल होती थीं इतनी सावधानीके साथ कण्ठस्थ कर लिया जाता था कि उनका एक भी अक्षर घट-बढ़ नहीं सकता था। सभी प्राच्य-विशारद इस बातको जानते हैं कि ब्राह्मण लोग वैदिक मन्त्रोकी रक्षापर बेहद जोर देते थे और अब भी देते हैं। किन्तु यह बात निश्चित रूपसे नहीं कही जा सकती कि वैदिक मन्त्रोके अक्षरोमे बादमे कुछ भी

हेर-फेर नहीं किये गये और या मन्त्रोंके क्रममे भी कोई परिवर्तन नहीं किया गया। हमे यजुर्वेदके ही मन्त्रोंके विभाजनमे तीन क्रम मिलते हैं जो 'कृष्णयजुर्वेद', 'शुक्लयजुर्वेद' और 'मैत्रायणीय-यजुर्वेद कहलाते है। उनके क्रम और उनके पाठोमें यत्र तत्र इतना अन्तर मिलता है कि यह माननेके लिये विवश होना पड़ता है कि वेदोंके क्रम और विषयतत्त्वमें भी थोड़े बहुत हेर-फेर अवश्य हुये होंगे। फिर भी एक लम्बे काल तक वेदोसे दो मतलब सिद्ध हुये—(१) देवताओंकी उपासना और (२) दिनो और वर्षकी गणना। हमारे इस कथनकी पुष्टि ऋग्वेदके इतने अधिक मन्त्रोंसे होती है कि उन सबको यहाँ उद्धृत कर सकना असम्भव है। अतः उनमेंसे हम यहाँ कुछ मन्त्र देरहे हैं—

अजो न द्यां दाधार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां मन्त्रेभिः सत्यैः।

(ऋग्वेद १, ६७, ३)

बर्हिर्वा यत्स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि। ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्य के स्तस्येदिन्द्रो अभि-यित्वेषु रण्यति।

(ऋग्वेद १, ८३, ७)

तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तन्ये मघवा नाम बिभ्रत।

(ऋग्वेद १, १०३, ४)

इमानि तुभ्यं स्वसराणि येमिरे व्रता देवानां मनुषश्च धर्मभिः।

(ऋग्वेद ३, ६० ६)

युगे युगे विदथ्यं गृणद्भ्योऽग्ने रयिं यशसं धेहि नव्यसीम्

(ऋग्वेद ६, ८, ५)

वीडु चिदृळ्हा पितरो न उक्थैरद्रिं रुजन्नङ्गिरसो रवेण। चक्रुर्दिवो बृहतो गातुमस्मे अहः स्वर्विविदुः केतुमुस्राः।

(ऋग्वेद १, ७१, २)

ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः। ताँ आ तिष्ठ तेभिरा याह्यर्वाङ् हवामहे त्वा सुत इन्द्र सोमे।

(ऋग्वेद १, १७७, २)

धेनुं न त्वा सुयवसे दुदुक्षन्नुप ब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठः। त्वामिन्मे गोपतिं विश्व आहा न इन्द्रः सुमतिं गन्त्वच्छ॥ युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः।

(ऋग्वेद ७, १८, ४)

आ नक्ता बर्हिः सदतामुषासोशन्ता मित्रावरुणा यजेह।

(ऋग्वेद ७, ४२, ५)

सा त्वां न इन्द्र धियसानो अर्कैर्हरीणां वृषन्योक्त्रमश्रेः।

(ऋग्वेद ५, ३६, २)

तं वं रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना संगतिं गोः।

(ऋग्वेद ४, ४४, १)

अभी न आ ववृत्स्व चक्रं न वृत्तमर्वतः। नियुद्भिश्चर्षणीनाम्।

(ऋग्वेद ४, ३१, ४)

इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद। वीहि शूर पुरोळाशम्।

(ऋग्वेद ३, ४१, ३)

"सहज बुद्धि हमें यही माननेके लिये विवश करती है कि वैदिक ऋषि दिनोकी गणना मन्त्रोके अक्षरो और कुश आदिसे करते थे। इन चीजोका कोई पौराणिक या धार्मिक तात्पर्य नहीं हो सकता। ऋग्वेदकी उपर्युक्त और अन्य ऋचाओसे मुख्य आशय यह निकलता है कि इन्द्र और अग्नि शुक्ल दूज और पूर्णिमाके विशेष तिथियोके नाम थे और इनके आनेका जिक्र बार बार आता है। यह समझ लेनेपर हम उस कथाको अच्छी तरह समझ सकते हैं कि जिसके अनुसार किसी पक्षी या गाय द्वारा शुक्ल दूजके लानेका जिक्र मिलता है। 'जगती' और 'तृष्टुब्' छन्दोमे दो या तीन अक्षरोकी कमी होजानेकी कहानी प्रचलित है। उस समय मंत्रके अक्षरोंसे दिनोकी गणना होती थी। यदि नया चन्द्रमाया पूर्णिमाका चद्रमा छन्दके अक्षरोंकी संख्यासे दो या तीन दिन बाद निकलता तो उस समयके प्रचलित तरीकेसे लोग कहते थे, कि नये चन्द्रमाको लानेमे यह छन्द दो या तीन अक्षरोंसे घट गया। उस कालमे एक प्रथा यह भी थी कि यज्ञ मण्डपके बीचमें अलग अलग सूखी और हरी दूर्वा बिछा देते थे। सूखी दूर्वा दिनकी प्रतीक थी और हरी दूर्वा रात्रिकी प्रतीक थी। इन्हीं दूर्वाओंको देखकर लोग प्रार्थना-मन्त्र कहते रहते थे।

इसलिये यह स्पष्ट है कि प्रत्येक गुणकी समाप्तिपर उस युगमें जितने दिन होते थे उतने ही अक्षरोके मन्त्र रचे जाते थे। इस तरीकेसे वैदिक ऋषि बीते हुए दिनोंका हिसाब रखते थे और इसी हिसाबसे वे दूज आदि तिथियोका ठीक ठीक अनुमान कर सकते थे। इसी तरीकेसे वे मलमासके दिनों और यज्ञके विशेष दिनोंका भी हिसाब रखते थे'। इसी सिद्धान्तको सामने रखना शतपथ-ब्राह्मणके रचयिताने ऋग्वेदके समस्त अक्षरोको जोड़ डाला है और हिसाब लगाया है कि पूरा ऋग्वेद कितने वर्षोंमें लिखा गया है।

'प्रजापतिने अपने मनमे सोचा कि सृष्टिकी जितनी भी वस्तुएँ हैं वे सब त्रिगुणोंमे आ जाती हैं तो मैं अपने लिये एक ऐसी देह बनाऊँ कि जो इन त्रिगुणोको अपने अन्दर रख सके।'

उसने ऋग्वेदके मन्त्रोको १२ हजार बृहती (हर बृहती छन्दमें ३६ अक्षर होते हैं) मे बांटा, (यह इसलिये) कि प्रजापतिने इतने ही मन्त्रोको रचना की थी। तीसवे भागमे पक्ति (पंक्तिमे ४० अक्षर होते हैं) को रखा, चूंकि ३० भागोमे बृहती रखा गया, इसलिये महीनेमे ३० रातें होती हैं। इसके बाद प्रजापतिने पंक्तिकी रचना की। कुल पक्ति १०,८०० हैं। फिर उसने अन्य दो वेदोको १२००० बृहतीमें लिखा। ८००० यजुमे और ४००० साममे। इन दोनो वेदोमें (भी) प्रजापतिने इतने ही मन्त्रोकी रचना की।"

(शतपथब्राह्मण (१०, ४, २, २२, २४)

यहापर प्रजापतिसे तात्पर्य वर्षसे है। ऊपरके उद्धरणमें प्रजापतिका प्रयोग वर्षके अर्थमे ही किया गया है। प्रजापतिको देहसे तात्पर्य एक युग या कुछ वर्षोंके कालसे है। वैदिक आर्य ३६० दिन के सावन वर्षको मानते थे और ३६५¼ सौर वर्षके अन्तरको वे हर चौथे सावन वर्षके बाद २१ दिन जोड़कर पूरा करते थे। इस तरह ऋग्वेदक ३६ अक्षरोके १२,००० बृहती मन्त्रोके ४,३२,००० अक्षर होजाते है। इस हिसाबसे ४,३२,००० दिन या १२०० वर्ष होते हैं। इस तरह शतपथब्राह्मणके रचयिताके अनुसार सम्पूर्ण ऋग्वेद १२०० वर्षोंमे लिखा गया। शतपथब्राह्मणका रचयिता यजुर्वेदका और सामवेदका रचनाकाल भी १२०० वर्ष मानता है। इस हिसाबसे समस्त वेद २४०० वर्षोंमे लिखे गये, किन्तु अन्य बातों को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि यजुर्वेद और सामवेदके मन्त्रों की रचना ऋग्वेदके मंत्रोकी तरह दिनोकी गणनाको ध्यानमें रखते हुये नहीं हुई।

ईश्वरीय ज्ञान एवं भाषाकी आवश्यकता

अनेक विद्वानोंका कथन है कि जिस प्रकार आँखको प्रकाशकी आवश्यकता है अर्थात् उसके बिना मनुष्य देख नहीं सकता, उसी प्रकार ज्ञानके बिना बुद्धि कुछ भी उन्नति नहीं कर सकती। अभिप्राय यह है कि हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि कोई भी गुरुके बिना ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। यदि कर सकता, तो आज कालेजो, स्कूलों और पाठशालाओंकी आवश्यकता न होती। इनकी आवश्यकता यह बतला रही है कि मनुष्यको ज्ञानदाताकी आवश्यकता है। अतः जब सृष्टि उत्पन्न हुई और उसमें जब प्रथम ही मनुष्य उत्पन्न हुए तो उनको ज्ञान किसने दिया? यदि कहो, कि उन्होंने अपने आप उन्नति करली, तो आज भी मनुष्य अपने आप उन्नति कर लेंगे। पुनः स्कूल आदिकी आवश्यकता ही क्या है? बस, इससे यह सिद्ध हुआ कि सृष्टिके आदिमें जिसने प्रथम मनुष्योंको ज्ञान दिया, वह परमात्मा है तथा वह ज्ञान, वेद है। यही अवस्था भाषा की है। भाषा भी मनुष्य किसीके सिखाये बिना नहीं सीख सकता। अतः जो भाषा मनुष्यको पहले पहल सिखाई गई, वह वेद-भाषा है। उस भाषाके सिखानेवाला ईश्वरके सिवाय अन्य कोई नहीं हो सकता। इसलिये वेद ईश्वर-कृत हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

उत्तर—सृष्टि उत्पन्न हुई या नहीं। यदि हुई तो किस प्रकारसे हुई? इसका विवेचन तो हम 'ईश्वर मीमाँसा' नामक ग्रन्थमें कर चुके हैं। जिज्ञासु पाठक वहाँ देखनेकी कृपा करें। यहाँ तो हम इतना ही कह देते हैं, कि अभावसे मनुष्योंकी उत्पत्ति मानना ऐसा ही है जैसा कि खपुष्पोंकी माला पहिनना। संसारमें जितनी भी प्राणवाली वस्तुएँ हैं, वे सब अपने बीजसे ही उत्पन्न होती दीखती हैं। मनुष्य, पशु,

पक्षी आदि इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है । जो क्षुद्र जन्तु चतु-र्मासमें उत्पन्न होते हैं, चाहे उन्हें हम न देख सकें, परन्तु होते वे भी बीजसे ही हैं । अतः जब मनुष्यका बीज ही नहीं था, तो मनुष्य किस प्रकार उत्पन्न होगया ? यदि कहो, कि परमात्माने परमाणुओंमेंसे बीजके परमाणुओंको लेकर एकत्रित कर दिया था । तब प्रश्न यह उत्पन्न होता है, कि उसका क्या प्रकार था ?

१—क्या ईश्वरने अपने हाथसे उन परमाणुओंको एकत्रित किया था ?

२—किंवा ज्ञानमात्रसे ?

३—या ईश्वरने प्रकृतिको आज्ञा दी, कि तू मनुष्य आदि सब बीजोंके परमाणु एकत्रित करदे ?

४—अथवा ईश्वर तो केवल देखता रहता है, कार्य सब प्रकृति ही करती है, अर्थात् प्रकृतिने उसके भयसे स्वयं इनको एकत्रित कर दिया ?

प्रथम पक्षमें तो ईश्वर सशरीरी सिद्ध होता है। अतः अब यह प्रश्न होता है, कि वह शरीर स्वनिर्मित है या परनिर्मित ? यदि स्व-निर्मित है तब तो शरीरके लिये किसी अन्य निर्माताकी आवश्यकता न रही। यदि उस ईश्वरका शरीर परनिर्मित है तो वह ईश्वर न रहा, अपि तु जिसने ईश्वरका शरीर बनाया वह ईश्वर होगया। पुनः उस विषयमें भी वही प्रश्न उठेगा । अतः यह पक्ष तो आपके पक्षकी पुष्टि करनेमें बिलकुल असमर्थ है।

दूसरा पक्ष भी आपके मनोरथकी सिद्धि नहीं कर सकता। क्योंकि ज्ञानमात्रसे संसारमें कोई किसी कार्यकी सिद्धि करते नहीं

दीखता। यदि ज्ञानमात्रसे कार्य हो जावे तो किसीको पुरुषार्थ करनेकी आवश्यकता न रहेगी। अतः यह भी पक्ष ठीक नहीं।

तीसरे यदि हम यह मानलें, कि ईश्वर प्रकृतिको आज्ञा देता है तो भी उस आज्ञाके लिये मुखकी आवश्यकता होगी। अतः इसमे भी पूर्वोक्त (जो प्रथम पक्षमें उठ चुके हैं) सब प्रश्न आ उपस्थित होंगे। अतः यह प्रश्न भी अत्यन्त दुर्बल है।

अब रह जाता है चतुर्थ पक्ष, जिसको हम संसारका उदासीन कारण कह सकते हैं। परन्तु इस अवस्थामें प्रश्न यह उठता है, कि प्रकृति ईश्वरका भय क्यों मानती है? तथा क्या इसमें भय आदि विद्यमान हैं? यदि प्रकृतिमे भय, लज्जा एव शका आदि हैं तो उसको जड़ किस प्रकार कह सकते हैं? यदि भय आदिकी बातें कल्पनामात्र हैं, और इसका अभिप्राय केवल इतना ही है कि ईश्वर की सत्तासे ही सब कार्य होते हैं, तब तो ईश्वरकी सिद्धि ही नहीं हो सकती। तथा न यह सिद्ध हो सकेगा, कि ईश्वर चैतन्य एव बुद्धिमान् है। क्योंकि ईश्वर उस बुद्धिका उपयोग नहीं लें रहा है। अतः ईश्वर उन चीजोंको बनाता है, यह किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकता। यदि हम इन दार्शनिक प्रश्नोको न भी उठावें तो भी एक और प्रश्न उठता है, और वह यह है कि आरम्भमें मनुष्य युवा उत्पन्न हुए या बालक? यदि बालक, तब उनका पालन पोषण कौन करेगा? यदि कहो कि, युवा मनुष्य उत्पन्न होते हैं तो निम्न लिखित प्रश्न उपस्थित होते हैं—

१—युवा अवस्था बाल्य अवस्थाके पश्चात् आती है अतः उन्होंने बाल्य अवस्था कहाँ व्यतीत की?

२—उन्होंने बाल्यकालमें खानेका क्या प्रबन्ध किया।

३—सिंह आदि हिंसक जन्तुओंसे बचने तथा शीत आदि प्राकृतिक कष्टोंके निवारणका क्या उपाय किया।

४—इन सब बातोंका प्रबन्ध इन्होंने अपने आप किया था अथवा इनका रक्षक कोई अन्य व्यक्ति था। यदि बाल्य अवस्थामें इन्होंने स्वयं प्रबन्ध कर लिया था तब तो उन मे ज्ञान था ही, पुनः युवा अवस्थामे ईश्वरने ज्ञान क्या दिया ? यदि कहो—कि उनका पालक कोई अन्य था, तो वह मनुष्य था या ईश्वर ? यदि कहो मनुष्य था तब तो आपके सिद्धान्तकी हानि होगई। क्योंकि मनुष्य तो अभी उत्पन्न भी नहीं हुए थे। यदि आप यह कहें कि उनका पालक ईश्वर था, तब तो ईश्वरको अत्यन्त कष्टका अनुभव करना पड़ा होगा। इस बातके अनुभवी वे ही व्यक्ति हो सकते हैं जिनके यहाँ एक ही अवस्थाके बहुतसे बालक होते हैं। यदि कहो कि वे मनुष्य पृथ्वीके अन्दर बढ़ते गये और वहा उनको भोजन आदिकी आवश्यकता न थी। जब वे युवा होगये तब बाहर आगये और उसी समय ईश्वरने उनको ज्ञान दे दिया, तो भी ठीक नहीं। क्योंकि बिना भोजनके उनका शरीर किस प्रकार बढ़ सकता था। यदि कहो कि, पृथ्वीमे ही मिट्टी आदि खाकर जीवित रहते थे तो यह नितान्त असम्भव है। क्योंकि मनुष्यका खाद्य मिट्टी नही है। तथा च, जब मनुष्यके मुख आदि उत्पन्न नहीं हुए थे उस समय वह खुराकको किस प्रकार धारण करता था ? कहाँ तक लिखें, जितना इस विषयपर लिखते है उतनी ही इसकी निस्सारता प्रकट होती जाती है।

बस, जबकि आपकी मानी हुई यह मनुष्योत्पत्ति युक्तियुक्त नहीं

है तब उनको ज्ञान अथवा भाषा सिखानेका तो प्रश्न ही नहीं जंचता। पुनः इसके आधारपर वेदोंको ईश्वरीय ज्ञान कैसे कहा जा सकता है। यदि हम उपर्युक्त सब प्रश्न न भी करें तो भी ईश्वरीय ज्ञानकी आवश्यकता कुछ भी नहीं रहती। क्योंकि अभी एक बालिकाने अपने पूर्व जन्मके वृत्तान्त बतलाये हैं, यह घटना इतनी सत्य है कि उसके विषयमें किसीको भी सन्देह नहीं रह गया है। क्योंकि देशके सर्वमान्य व्यक्तियोंने इसकी परीक्षा करके इस को प्रामाणिक बतलाया है। इस घटनामें निम्नलिखित बातें सर्वमान्य हैं—

(१) बालिकाकी आयु इस समय ७ वर्षकी है तथा वह तीन वर्ष पूर्वसे ही अपने पूर्व जन्मकी बातें बतलाती थी।

(२) उसने अपने पूर्वजन्मके सम्बन्धियोंको पहिचाना है।

(३) उसने अपने पूर्वजन्मके पतिके घरको तथा उस गली आदिको आश्चर्यके ढङ्गसे पहिचाना है।

(४) वह बालिका मथुरामें जब ले जाई गई तो उसने उन शब्दोंका उच्चारण किया जोकि मथुराके विशेष पारिभाषिक शब्द थे, अर्थात् जिनको मथुराके रहनेवाले ही बोल सकते हैं।

परन्तु यह लड़की तो आजसे पूर्व इस जन्ममें कभी मथुरा गई ही नहीं थी, पुनः इसने इन शब्दोंको कहाँसे सीखा, यह देखकर मनुष्योंके आश्चर्यका कुछ भी पारावार नहीं रहा। उसने मथुरा निवासियोंके उन शब्दोंको सहज स्वभावसे समझा था जिनको साधारण जनता नहीं समझ सकती थी।

अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि जब इस समय एक कन्या अपने पूर्वजन्मके संस्कारोंसे बिना सिखाये मथुराका ज्ञान प्राप्त कर लेती है, तथा मथुराकी भाषा भी बोल लेती है तो क्या कारण

है कि आदि सृष्टिमें ऐसे मनुष्य उत्पन्न नहीं हो सकते जो कि पूर्वके संस्कारोंके कारणसे भाषा बोल सकें। बस, आपकी मान्यताके अनुसार भी आपकी असम्भव कल्पनाकी कोई आवश्यकता नहीं है। अपि तु यह कल्पना आपकी कल्पनासे उत्तम है कि—"यदि सृष्टि में ऐसे मनुष्य उत्पन्न हुए, जोकि पूर्वजन्मके संस्कारोंके कारण भाषा बोलते थे तथा ज्ञानी भी थे"।

प्रश्न—यूनानका राजा सोमटिकल तथा द्वितीय फ्रेडरिक एवं महान् अकबर आदि बादशाहोंके आधिपत्यमें अनेक विद्वानोंद्वारा १०-१०, १२-१२ छोटे छोटे नवजात बालकोंको शीशोंके मकानोंमें रखा गया और उनकी परवरिशके लिए धाइयाँ रखी गईं। उनको समझा दिया गया कि वे बच्चोंको खिला-पिलाकर प्रत्येक प्रकारसे उनकी रक्षा करें। परन्तु उनको किसी प्रकारकी कोई शिक्षा न दें, न उनके सामने कुछ बोलें। उन धाइयोंने ऐसा ही किया। इस प्रकार परवरिश पाकर जब बच्चे बड़े हुये तब जाँच करनेसे मालूम हुआ कि वे सभी गूंगे और बहरे थे। यदि बिना शिक्षा दिये स्वयमेव किसीमें ज्ञान उत्पन्न हो सकता हो तो इन बच्चोंको भी बोलना आदि स्वयमेव आ जाता। इनका बहरा और गूंगा रह जाना, स्पष्ट रीतिसे प्रगट करता है, कि स्वयमेव ज्ञान, न उत्पन्न होता है और न उसकी वृद्धि होती है।

उत्तर—आपकी यह युक्ति भी आपके सिद्धान्तका ही खण्डन करती है। क्योंकि यदि ईश्वर ज्ञान और भाषाका दाता होता, तो इन बच्चोंको भी ज्ञान दे देता और भाषा सिखा देता। दूसरी बात यह है कि ईश्वर इन बालकोंको ज्ञान और भाषा सिखाना तो चाहता था, क्योंकि यदि ईश्वर न

चाहता तो उनको बुद्धि और वाणी ही न देता। तथा ईश्वरकी इच्छा यह भी थी कि वे बालक शब्दोंको सुनें। क्योंकि उसने इसीलिए उनको कान दिये थे। परन्तु इस बेचारे ईश्वरकी संपूर्ण इच्छाओंपर इन राजाओंके जरासे हुक्मने पानी फेर दिया। परन्तु निराकार ईश्वर मन मसोस कर रह गया। वाह रे ईश्वर! धन्य हैं तेरे समर्थक, जिन को यह भी पता नहीं, कि यह युक्ति हमारा खण्डन करेगी या मण्डन। इसके उत्तरमें सम्भव है, ये भोले प्राणी यह कहें, कि ईश्वर तो आदि सृष्टिमें एक ही बार ज्ञान और भाषा सिखानेका कष्ट करता है, प्रत्येक समय वह यह कार्य नहीं करता। परन्तु यह कथन भी उनकी ईश्वर की कल्पनाका विरोध ही करता है। क्योंकि ईश्वरको एक रस माना जाता है तथा उसकी क्रिया और इच्छाको भी नित्य माना गया है। जैसा कि हम दिखला चुके हैं। परन्तु एक रसात्मकमें यह विचार विकार किस कारणसे हुआ, कि अमुक कार्य अब नहीं करना चाहिये। तथा उसकी नित्य इच्छामें यह परिवर्तन कैसे हुआ? दूसरा प्रश्न यह है कि ईश्वर भाषा व ज्ञान किस प्रकार सिखाता है, अर्थात् ईश्वर शब्दों द्वारा ज्ञान देता है या संकेत से, अथवा मान सिक प्रेरणासे ही। ये सभी उपाय ईश्वर नहीं कर सकता, क्योंकि संकेत और शब्द आदिके लिए शरीरकी आवश्यकता होगी। परन्तु वह गरीब शरीर रहित है। मनः प्रेरणामे भी सूक्ष्म शरीरका होना आवश्यक है, किन्तु ईश्वरके पास वह भी नहीं है।

तथा च, एक अटल नियम यह है कि शब्द किसी भी अर्थका द्योतक नहीं है। यदि शब्द ही अर्थका बोधक होता तो प्रत्येक

प्राणी प्रत्येक शब्दके अर्थ समझ लेता। परन्तु ऐसा नहीं है, अतः यह सिद्ध है कि शब्दके अर्थ जाननेके लिये सिखानेवालेकी आवश्यकता है। परन्तु सिखानेवाला शरीरी हो तभी वह सिखा सकता है। यह संसारका अटल नियम है। अब यदि ईश्वरको भाषा सिखानेवाला मानोगे तो उसको साकार और शरीरी भी मानना पड़ेगा। ऐसी अवस्थामें ईश्वरका ईश्वरत्व ही नष्ट होजावेगा।

इसके अलावा एक प्रश्न यह भी उत्पन्न होता है कि ईश्वर मनुष्योंको ही ज्ञान और भाषा सिखानेके लिये क्यों लालयित होरहा था? क्या ईश्वरकी और मनुष्योंकी कुछ रिश्तेदारी थी या ईश्वर को इनसे अपना कुछ कार्य कराना था? पुनः मनुष्योंमेंसे भी उसने चार ही मनुष्योंको क्यों पसन्द किया? इन्हींपर विशेष कृपाका क्या कोई गुप्त रहस्य है। यदि ये सब प्रश्न न भी उठाये जायें तो भी भाषाके लिये ईश्वरकी आवश्यकता नहीं है।

भाषा

भाषाके विषयमें डा० मङ्गलदेवने अपनी 'भाषाविज्ञान' नामक पुस्तकमें लिखा है कि—

(१) "भाषाके विषयमें सम्प्रदायवादियोंका कथन है, कि हमारे धर्मशास्त्रोंकी परिभाषा ही अनादि एवं स्वाभाविक है। जैसा कि वैदिकधर्मी कहते हैं, कि सबसे प्राचीन एव ईश्वरप्रदत्त भाषा ही वैदिक भाषा है। यही भाषा सृष्टिके आरम्भमें ईश्वरने मनुष्योंको सिखलाई। जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं। इसी प्रकार बौद्धोंका कहना है, कि पाली भाषा ही समस्त भाषाओं की मूल भाषा है। सम्पूर्ण भाषाओंकी यही जननी है। उनके ग्रन्थोंमें लिखा है, कि यदि माता-पिता अपनी भाषा बच्चेको

न सिखलावें तो वह स्वाभाविकतया मागधी (पाली) भाषाको ही बोलेगा। इसी प्रकार एक निर्जन वनमें रक्खा हुआ मनुष्य यदि स्वभाववश बोलनेका प्रयत्न करे तो उसके मुखसे मागधी ही निकलेगी। इसी भाषाका प्राधान्य तीनों लोकोंमें है। अन्यान्य भाषाएँ परिवर्तनशीला हैं। परन्तु यही एक (मागधी) भाषा सदा एक रूपमें रहती है। भगवान् बुद्धने अपने 'त्रिपिटक' की रचना भी इसी सनातन भाषामें की है।

(२) इसी प्रकार ईसाई लोग और विशेषकर रोमन कैथलिक मतानुयायी कहते हैं कि 'हिब्रू' भाषा जिसमें कि उनकी 'प्राचीन विधान' नामक धर्म-पुस्तक है। पृथ्वीकी सारी भाषाओं से प्राचीन भाषा है और सारी भाषाएँ इसीसे निकली हैं। क्योंकि सृष्टिके आरम्भमें अदनके बागमें रहनेवाले आदम और हव्वा इसी भाषामें बातचीत करते थे। एक महाशय लिखते हैं, कि दुनियाका सारा प्राचीन इतिहास इसको सिद्ध करता है; कि 'हिब्रू' से ही मनुष्य भाषाका आरम्भ हुआ है।"

प्रत्येक व्यक्ति अपनी धर्मपुस्तकको ईश्वर या खुदाका कलाम, बताकर जनताको धोखेमें डालकर अपना उल्लू सीधा करता है। सबसे बढ़कर इनकी हठधर्मीकी पराकाष्ठा यह है, कि ये लोग अपने अपने अन्धविश्वासोंको पुष्ट करनेके लिये बड़े बड़े ग्रन्थ लिखनेका साहस करते हैं। जैसे कि 'वैदिकसम्पत्ति' आदि अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं। इन पुस्तकों में झूठे प्रमाण और मिथ्यार्थके अतिरिक्त कुछ भी सार नहीं है। यह तो केवल भोली भाली जनताको फंसाये रखनेका एक कुत्सित प्रयत्न है।

डा० मङ्गलदेवने वहीं लिखा है कि "इस मतसे भाषाविज्ञान की उन्नतिमें बड़ी भारी बाधा पहुचती रही है। यूरूपमें अठारवीं

शताब्दी तक लोग यह मानते रहे कि 'हिब्रू' से ही ''''''पृथ्वी की सारी भाषायें निकली हैं। इस अन्धविश्वासके दिनोमें भाषाओंको परस्पर तुलना आदिके द्वारा उनका वर्गीकरण आदि करना, जोकि भाषाविज्ञानकी मूलभित्ति है नितरां असम्भव था।

इसी कारण मनमानी व्युत्पत्तियों और युक्तियोंके द्वारा किसी भाषाके एक शब्दका सम्बन्ध दूसरी भाषाके शब्दके साथ दिखलाया जाता रहा।"

तथा च, आप आगे लिखते हैं कि "भाषाके देशकृत और कालकृत भेदोंपर दृष्टि डालनेसे जैसाकि ऊपर दिखाया जा चुका है, भाषाकी परिवर्तनशीलता स्पष्ट होजाती है। साहित्यकी दृष्टिसे किसी उन्नत भाषाको लें, जिसका इतिहास मिलता हो, उससे यह स्पष्ट होजाता है कि भाषाकी उन्नति धीरे धीरे क्रमविकासके अनुसार होती है। इसलिये सभ्य और असभ्य जातियोंकी भाषाओं में बड़ा अन्तर दीख पड़ता है। भाष्य का सारा इतिहास इसका साची है, कि लेखनकला, कविता, चित्रविद्या, वास्तुविद्या आदि अन्यान्य कलाओंकी तरह जो धीरे-धीरे सभ्यताके उन्नत होनेके साथ उन्नत होती हैं। भाषा भी मनुष्यके आश्रयमें अनेक परिवर्तनोके भिन्न भिन्न प्रकारकी आवश्यकताओंके अनुसार नये अनुभव और ज्ञानकोषके द्वारा प्रकट करनेके लिये नये नये रूपोमे गुजरती हुई उत्कृष्टताकी ओर बढ़ता रही है। इस प्रकार देखनेसे किसी भी भाषाको लेवें हमे उसमे एक बहुत बड़ा भाग ऐसा मिलेगा जिसको स्पष्ट रीतिसे मनुष्योने अपनी आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिये बुद्धि और विचारको काममे लाकर बनाया है।"

तथा च—श्री प० गोविन्दरामजी त्रिवेदी "वैदिकसाहित्य" पृ० १६ पर लिखते है कि—

"परन्तु सभी हिन्दू वेदोंकी नित्यताके क़ायल नहीं हैं। कुछ लोगोंका मत है, भाषा-विज्ञानके अनुसार अपनी अभावपूर्तिके लिये मनुष्य भाषाएँ बनाया करते हैं और भाषाएँ बदलती रहती हैं। स्वयं वैदिक भाषा कितने ही रूपोंमें आ चुकी है। ऋग्वेद-संहिता और अथर्ववेदसंहिताकी भाषाओंमें पर्याप्त भिन्नता है। शतपथब्राह्मण और गोपथब्राह्मणकी भाषा शैलीमें बड़ा भेद है। यजुर्वेदकी तैत्तिरीयसंहिता और माध्यन्दिनीसंहिताकी भाषाओंमें भी मार्मिक भिन्नता है। इससे सिद्ध होता है कि वैदिकसंहिताओंकी रचना समय समयपर हुई है, एक साथ नहीं।"

भाषा-विज्ञानवेत्ता (Pilo logists) फिलोलो जिस्ट्स कहते हैं कि 'मनुष्यकी स्वाभाविक ध्वनियोंकी नकलपर ही शब्दोंकी सृष्टि हुई है। जिस समय माता बच्चेको दूध पिलाने लगती है, उस समय यदि बच्चेकी इच्छा दूध पिलानेकी नहीं होती, तो वह स्वभावतः "नि-नि" करने लगता है। इसी "नि-नि" की नकलपर ना, न, नो, नोट, नहीं आदि शब्दोंकी सृष्टि हुई है। मनुष्यके श्लेष्मा फेंकते समय थू, पिच-पिच आदि शब्दोंकी सृष्टि हुई। इसी प्रकार कुत्तेके भौंकनेपर भो-भो, घोड़ेके हिनहिनानेपर हिनहिनाहट, मेंढकके टर्रानेपर टरटराहट आदि शब्दोंकी सृष्टि हुई। एक ही विषयकेलिये विभिन्न जातियोंमें विविध ध्वनियाँ भी हुआ करती हैं। अंग्रेजी पिच केलिये 'स्पिट' और माताके लिये 'मा-मा' ध्वनियाँ हैं। इस प्रकार विविध जातिगत ध्वनियोंकी विभिन्नता, विभिन्न समयोंके जल-वायु की विभिन्नता और विविध अनुकरणोंकी विभिन्नताके कारण विविध संकेतों, शब्दों और भाषाओंकी सृष्टि हुई है। फलतः वैदिक भाषा हो या कोई भी भाषा हो, इसी अनुकरण-प्रणालीपर मनुष्यके द्वारा ही बनाई गई है। मनुष्य ही भाषाको भी बनाता है और गायत्री जगती आदि छन्दोंकी रचना करके उनमें वैदिक मन्त्रोंको निबद्ध

करता है। इसलिये वेद, कुरान व बाइबिल मानव-निर्मित ग्रंथ हैं। 'इलहामी वा छन्दों, शब्दो और अक्षरोके रूपोमे समाधि-दशामें प्राप्त नहीं है।"

निरुक्त और वैदिक इतिहास—

यास्कका निरुक्त देखनेसे पता चलता है कि पुराणोके अनुसार यास्क भी वेदोंमें इतिहास मानते थे।

निरुक्त (२।४) में अन्तरिक्षके नामोंमें आए हुए समुद्र नामकी निरुक्ति करते हुए यास्काचार्य लिखते हैं कि समुद्र, सागर और अन्तरिक्ष दोनों को कहते हैं। उदाहरणमें यास्कने एक वेद-मन्त्र दिया है, जिसकी भूमिकामे वे लिखते हैं कि—ऋष्टिसेन अथवा इर्षितसेनके शन्तनु और देवापि नामक दो कुरुवशी भाई थे। छोटे भाई शन्तनु ने अपना अभिषेक कर लिया देवापि तप करने लगा। इस कारण उसके राज्यमे १२ वर्ष तक पानी नहीं बरसा। ब्राह्मणोने उससे कहा कि तुमने अधर्म किया है जो बड़े भाई का अभिषेक न कर स्वय अपना अभिषेक कर लिया है। इसी कारण पानी भी नहीं बरसता है। तब शन्तनुने देवापिसे राज्य ग्रहण करने की प्रार्थना की। देवापिने कहा—"मैं तुम्हारा पुरोहित बनूंगा और यज्ञ करा दूंगा जिससे पानी बरसेगा।"

ये हैं निरुक्तकार यास्काचार्यके शब्द। इनसे महाभारत और यास्क के आख्यानोमें घनिष्ठता आगई है। ऋष्टिसेन, शन्तनु और देवापि ये महाभारतके ऐतिहासिक चरितनायक हैं। इतना ही नहीं, यास्कने फिर अधिक स्पष्ट करनेके लिये "तस्योत्तरा भूयसे निर्वचनाय, यद्देवापि, शान्तनवे" आदि मन्त्र लिखकर अपनी सम्मति को और दृढ़ किया है।

नदी नामोंकी निरुक्ति करते हुए यास्कने इतिहास लिखा है—"विश्वामित्र ऋषि पिजवनके पुत्र सुदास के पुरोहित थे। वे यज्ञमे प्राप्त हुए धनको लेकर विपाट् और शुतुद्री नामक नदियोंके सगम पर आये।" ये पंक्तियाँ २ अध्याय ७ पादके "रमध्व मे वचसे सोम्याय" आदि मन्त्रकी भूमिकामे हैं, जो यास्ककी स्वयं अपनी ओरसे लिखी गई टिप्पणियाँ हैं। इसी मन्त्रमे आये हुए "कुशिकस्य सुनुः" की व्याख्यामे—"कुशिको राजा बभूव" अर्थात् कुशिक नामक राजा हुए थे, विश्वामित्र उन्हीं कुशिकके लड़के थे, यह भाव निकलता है। विश्वामित्र कुशिकके लड़के थे, यह ऐतिहासिक बात पौराणिक साहित्यमे यथेष्ट रूपसे मिलती है।

अब हम इस प्रकारके और उदाहरणोंको छोड़ कर कुछ ऋषियोंके नामोका उल्लेख करेंगे, जिससे मालूम होगा कि यास्कके मतानुसार वेदमन्त्रोमें उनका वर्णन आता है। इनके लिखनेसे वेदोंकी ऐतिहासिकताके विषयमे यास्काचार्यकी सम्मति और अधिक प्रकाशमें आजायेगी।

"वत" उपमा वाची शब्द पर लिखते हुए अ० ३ के तृतीय पादमें यास्कने एक मन्त्र दिया है—

प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरूपवत्। अंगिरस्वन् महिव्रतप्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम्॥

अर्थात् हे ईश्वर! जैसे तुमने प्रियमेध आदि ऋषियोंकी प्रार्थनाको सुना है, उसी प्रकार मुझ प्रस्कण्वकी भी प्रार्थना सुनो। हमें यह अच्छीतरह स्मरण रखना चाहिए, कि इस मन्त्रमें आये हुए सब नाम, यास्कके अनुसार ऋषियोंके ही हैं। यास्काचार्य उनके विषयमें लिखते हैं—"प्रस्कण्वः कण्वस्य पुत्रः" आदि। इसी प्रकार "च्यवन-

ऋपिर्भवति" (४।३), "भार्म्यश्वोमृम्यश्वस्य पुत्रः" (६।३) आदि वर्णन भी पर्याप्त मात्रामें मिलता है।

मूप शब्द की निरुक्ति में "सन्तपन्ति माम्" आदि दिए गए मन्त्रोके अर्थ लिखनेके पश्चात् यास्क कुछ शब्द अपनी ओर से लिखते हैं—

त्रितं कूपेऽवहितमेतत्सूक्तं प्रति बभौ।

अर्थात् 'कुएँमें गिरे हुए त्रित नामक ऋषिको इस सूक्तका ज्ञान हुआ।' इसके साथ ही कमसे कम ५-६ स्थलो पर "तत्रेतिहासमाचक्षते" के बाद जो कुछ लिखा गया है, क्या वह सब कुछ यास्ककी ऐतिहासिक प्रवृत्तिका द्योतक नहीं है? पूर्वोक्त "सन्तपन्ति" इत्यादि मन्त्रके नीचे ही यास्काचार्यने अपनी सम्मति भी इस विषयमें लिख दी है—

तत्रब्रह्मेतिहासमिश्रमृङ्मिश्रं गाथामिश्रं भवति।

अर्थात् 'वैदिक सूक्त, इतिहास, ऋचा और गाथासे युक्त है।'

ऊपरके विवेचनसे हम इस परिणाम पर पहुचते है कि, यास्क को वेदोंमें इतिहास अभिलपित था।

इसीलिये महाभारतमे महर्षि व्यास कहते हैं—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।

बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति॥ २६७॥

(म० आ० अ० १)

इतिहास और पुराणोंसे वेदके अर्थका प्रकाश करें, क्योकि थोडी विद्या पढ़े हुए जनसे वेद को भय उत्पन्न होता है, कि वह मुझे बिगाडेगा

वेदोंमे प्राचीन वजुर्गोंका इतिहास है। जब तक ऐतिहासिक सामग्रीका पूरा ज्ञान न हो, उस समय तक भी वेदोंका समझना कठिन है।

वेद और पारसी जाति

ऋग्वेदमें अनेक स्थानोपर 'जरूथ' व 'दस्यु' आदि शब्द निन्दित लोगोके लिए आये हैं, परन्तु पारसियोके धर्मशास्त्रोंमें इनका सुन्दर एवं श्रेष्ठ अर्थ है। तथा ये शब्द पूज्य व्यक्तियोंकेलिए प्रयुक्त हुए हैं। हम इनको सप्रमाण उपस्थित करते हैं—

विश्वा अग्नेऽपदहारातीर्येभिस्तपोभिरदहो जरूथम्।
(७।१।७)

'हे अग्नि! जिस तपसे तूने जरूथको जलाया, उसीसे द्वेषको जला'।

त्वामग्ने समिधानो वसिष्ठो जरूथं हन्यक्षि राये पुरन्धिम्।
(ऋ० ७।१०।६)

'हे अग्नि! वसिष्ठने तुझे प्रज्वलित करके जरूथको मारा। हमें समुचित धन दे।'

अग्निर्ह त्यं जरतः कर्णमावाग्निरद्भ्यो निरदहज्जरूथम्।
(ऋ० १०।८०।३)

'पानीसे अग्निने जरूथको जलाया'। ऋग्वेदमें इन तीन स्थानों पर जरूथका नाम आया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जरूथकी मृत्यु आगमें जलाकर अथवा अग्निवाण चलाकर बन्दूक या तोप से की गई। पारसियोके दीनकर्द, वेहेरामयश्तदाहेस्तान आदि ग्रन्थोंमें भी स्पष्ट उल्लेख है कि जरथुस्त्रकी मृत्यु अग्नि द्वारा हुई। अतः यह स्पष्ट है कि ऋग्वेदका 'जरूथ' पारसियोंका पैगम्बर 'जरथुस्त्र' ही है।

ऋग्वेदमें दस्यु शब्द कहीं एक बचनमें और कहीं बहुवचनमें आता है। पारसियोंके ग्रन्थोमे जरथुस्त्रको दस्यु (दख्युमा) और कहीं कहीं दख्यु नाम सूरो (दस्युओमे विद्वान्) भी आया है। यद्यपि वैदिक साहित्यम दस्युको बड़े अनादरसे देखा जाता है और अथर्ववेदमे तो उसके सर्वदमन और सर्वसहारकी प्रार्थनाएं की गई है। पर पारसी साहित्यमें दस्यु शब्द, सम्मान-सूचक है। दस्युका अर्थ 'दीप्यमान' ('दस्' चमकना) है, पर बादको यह शब्द दंस् धातु से भी निकाला गया, जिसका अर्थ 'काटना' है।

दस्यु असुर अथवा अहुरमज्दके उपासक थे। इसीलिये वे असुर भी कहलाते थे। दस्यु और असुर एक ही है, यह बात ऋग्वेद मे भी स्पष्ट है। ऋग्वेदमे दो मन्त्र इस प्रकारके है—

अयमग्नि पृतनाषाट् सुवीरो येन देवासो असहन्त दस्यून्।
(३।२९।९)

तदद्य वाचः प्रथमं मसीय येनासुरान् अभिदेवा असाम।
(१०।५३।४)

दोनों मंत्रोंका तात्पर्य एक ही है। (१) यह अग्नि युद्ध-विजेता वीर है, जिसकी सहायतासे देवोने दस्युओको जीता और (२) दूसरे मन्त्रका भाव है कि मैं इस प्रथम वाणीको अब कहूँगा, जिससे देवता असुरोंको जीत ले। यह मन्त्र भी अग्नि द्वारा कहलाया गया है। तात्पर्य यह है कि वेदमें असुर और दस्यु शब्द एक ही भावके प्रदर्शक हैं। दस्यु और असुर एक ही हैं, यह बात अथर्ववेद के मन्त्रसे और भी स्पष्ट होजायेगी—

राजा देवो वनस्पतिः। समे शत्रून् विबाधतां इन्द्रो दस्यूनिवासुरान्॥
(१०।३।११)

इस मन्त्रमें दस्यु और असुर दोनों शब्द साथ साथ एक ही भाव के लिये प्रयुक्त हुए हैं। समस्त जरथुश्त्री साहित्य इस बातका प्रमाण है, कि पारसियोंका नाम ही असुर या अहुर था। प्रारम्भमें देव और अहुर दोनों एक ही देशमें भाई भाईके रूपमें रहते थे। दोनों ही आर्य-संस्कृतिके पालक थे। महाभारतमें असुरोंको तो देवोंका बड़ा भाई तक कहा है।

महात्मा जरथुश्त्रका 'जरूथ' नाम तो वेदमें है ही, पर जहाँ एक वचन दस्यु शब्दका प्रयोग किया गया है, वहाँ भी जरथुश्त्रसे ही तात्पर्य समझना चाहिए। जरथुश्त्र समस्त दस्युओंका नेता था। अतः वैदिक साहित्यवाले इसे अकेले दस्यु शब्दसे ही सम्बोधित करते थे। ऐसा होना बहुत ही स्वाभाविक है। हाँ, बहुवचनान्त दस्यु शब्दका भाव उन सर्व अहुरमज्दियन दस्युओंसे था, जो जरथुश्त्रके अनुगामी थे।

तथा च "ताण्ड्यब्राह्मण"में लिखा है कि—

देवाश्च वा असुराश्च प्रजापतेर्द्वयाः पुत्रा आसन्।

(१८।१।२)

असुर ज्येष्ठ और देव कनिष्ठ थे, यह बात ब्राह्मणग्रन्थोंमें उल्लिखित है—"कानीयसा एव देवा ज्यायसा असुराः"। शतपथ १४।४।१।१ देवोंने राज्य माँगा—(जब देव बड़े हुए तो उन्होंने दैत्यों और दानवोंसे कुछ भूमि-राज्य माँगा)।

काठकसंहितामें लिखा है कि—

असुराणां वा इयं पृथिव्यासीत् ते देवा अब्रुवन् दत्त-नोऽस्या इति। ३१।८।

अर्थात् देवोंने यह बात स्वीकार न की। दोनोंमें घोर युद्ध

हुए। संख्यामे ये १२ थे। संस्कृत वाङ्मयमे ये संग्राम देवासुर-संग्रामोके नामसे प्रसिद्ध हैं

इन्हीं देवासुरसंग्रामोके विषयमे महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ३२ में निम्न प्रकारसे लिखा है—

इदं तु श्रूयते पार्थ ! युद्धे देवासुरे पुरा।
असुरा भ्रातरो ज्येष्ठा देवाश्चापि यवीयसः॥
तेषामपि श्रीनिमित्तं महानासीत्समुच्छ्रयः।
युद्धं वर्षसहस्राणि द्वात्रिंशदभूत्किल॥
एकार्णवां महीं कृत्वा रुधिरेणपरिप्लुताम्।
जघ्नुर्दैत्यांस्तथा देवास्त्रिदिवं चाभिलेभिरे॥

उपर्युक्त समस्त प्रमाणोंसे यह सिद्ध है कि देव और असुर पहिले भाई भाई थे और आपसमें मित्रतासे एक साथ मिलकर रहते थे। तत्पश्चात् उनका राजनैतिक व आर्थिक कारणोसे परस्पर मे वैमनस्य होगया। और इस वैमनस्यने भयानकरूप धारण कर लिया। जिसके परिणामस्वरूप इनके वार वार भयानक युद्ध होने लगे। जो पीढी दर पीढ़ी तक चलते रहे। उन युद्धोका वर्णन वेदो में भी सूत्ररूपसे अनेक स्थानोंमे किया गया है। अतः स्पष्ट है कि वे मन्त्र जिनमें इन युद्धोंका वर्णन है उनका निर्माण उन ऐतिहासिक घटनाओके पश्चात् हुआ है। अत. इनको नित्य कहना, युक्ति और प्रमाणोके विरुद्ध है।

तथा च, गुरुकुल कांगडीके सुयोग्य स्नातक डाक्टर प्राणनाथ जी विद्यालङ्कार डी० एस० सी० के मतानुसार ऋग्वेदके बहुतसे "राजा, सूसा, सुमेर, अक्कद, हित्त, फीनिसिया, मिश्र आदि देशोंके शासक थे, उनकी तिथि, भूमि, वंश आदि भी ज्ञात हैं" आपने इस

विषयको नागरीप्रचारिणीपत्रिकामे प्रबल प्रमाणो व युक्तियोसे सिद्ध किया है कि इन्द्रादि वैदिक देवता मिश्र आदि देशोंके राजा थे। और इन्द्रादि शब्द उपाधिवाचक हैं।

तथा च—वैदिक साहित्यमें यथेष्ट ऐतिहासिक सामग्री भी है। 'शतपथब्राह्मण' १४।५।४।१० और 'अथर्ववेद' में इतिहासको एक कला माना गया है। 'मनुस्मृति' (३।७२) मे इतिहासकी महिमा है। 'छान्दोग्योपनिषद्' और कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें इतिहासको पञ्चमवेद माना है। इतिहासमे धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, पुराण आदिकी गिनती थी। 'महाभारत' (१।१।८३) में इतिहासको मोहान्धकार दूर करनेवाला बताया गया है। वैदिकसंहिताओंमें विविध ऋषियो और राजाओंके वंशोंका विवरण है। इसी प्रकार शतपथमें मिथिला, विदेह, दुष्यन्त, भरत, जनमेजय, उग्रसेन आदि आदिका वर्णन है। ताण्ड्यब्राह्मणमे भी विदेह आदिकी कथाएँ हैं। तैत्तिरीयब्राह्मणमें कालकञ्ज असुर और वाराहावतारकी बातें हैं। ऐतरेयब्राह्मण तथा तैत्तिरीय और सांख्यायन आरण्यकोंमें शुनःशेप, अहिल्य; पाण्डव, कुरुक्षेत्र, मत्स्य, काशी, पाञ्चाल आदि की स्पष्ट कथाएं हैं। ऋग्वेदमें उर्वशी, पुरूरवा, यम-यमी आदिकी क्रमबद्ध कथाएं हैं। ऋग्वेदका दाशराज्ञ युद्ध सूर्यचन्द्र वंशियोका प्रसिद्ध युद्ध है। संस्कृत साहित्यके सैकड़ों ग्रन्थोंमे आर्योंका इतिहास भरा पड़ा है। हाँ, यह अवश्य है, कि वेदोंमे क्रमबद्ध इतिहास नहीं है।

लोग कहते हैं कि वेदमे वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि नामोंके दूसरे अर्थ है, उन्हें लोगोंने वेदसे लेकर व्यक्तिविशेष तकमें प्रयुक्त किया। अच्छा नामोंकी तो यह बात है; परन्तु वसिष्ठ, विश्वामित्र, उर्वशी आदिकी कथाओंकी क्या गति हो? उत्तर दिया जाता है कि, वे कथाएँ रूपक हैं। यह ठीक नहीं। यदि वैदिक इतिहास रूपक है, तो वसिष्ठ, विश्वामित्रकी पुराणकालीन व रामायणीय

अथवा महाभारतीय कथाएँ भी रूपक क्यों नहीं ? यद्यपि मानने वाले तो, रामायण, महाभारतको भी रूपक मानते ही हैं, परन्तु इस तरह किसी भी जातिके सारे इतिहासको रूपक मान लेना अन्याय है। वेद जैसे, प्राचीनतम ग्रन्थरत्नमे निबद्ध हमारी समूची संस्कृति, इतिहास, आचार आदि रूपक हैं, काल्पनिक हैं—यह कहना अनुपयुक्त है। हम पहले लिख आये हैं कि सारी संहिताओं में इतिहास है। कोई भी सज्जन किसी वेदसंहिताको उठाकर निष्पक्ष भावसे देखे, तो उसे वहाँ ऐतिहासिक बातें यथेष्ट मिलेंगी।

ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद्, सबमें इतिहास भरा पड़ा है। वेदको ईश्वरका विश्वास माननेवाले सायण, भट्टभास्कर, स्कन्द स्वामी आदि भी वेदमे इतिहास मानते हैं। शङ्कर, रामानुज, वल्लभ आदि सभी आचार्य वेदमे इतिहास मानते हैं। यास्कने भी वैदिक इतिहासोंका कई बार उल्लेख किया है, और यही विद्वान-सम्मत प्राचीन परम्परा भी है।

वेदका सा प्राचीनतम इतिहास पाकर भी यदि हम उसे रूप-कालङ्कारमे उड़ाकर इतिहासहीन जाति बन जायें, तो खेदकी बात होगी। प्राचीनतम वैदिक इतिहास ही तो हमारा प्रधान बल है, जिसके द्वारा हम युगो तक गौरवान्वित रह सकते हैं। लोकमान्य-तिलक, डा० अविनाशचन्द्र दास, श्रीयुत पावगी आदि भी इस बात का समर्थन करते हैं।

हमारे विचारसे वैदिकसंहिताएं अनेक कालकी रचनाएं है। मण्डलों, अनुवाको, सूक्तोंसे यह बात स्पष्ट विदित होती है। एकसे एक सूक्त सम्बद्ध नहीं। एक सूक्तके सब मन्त्र भी सम्बद्ध नहीं। किसी किसी मन्त्रमें तो एक वचन और बहुवचन दोनोंका एक ही व्यक्तिकेलिये प्रयोग हुआ है। एक ही सूक्तमे कई देवोंको प्रार्थनाएँ भी हैं। कहीं की भाषा अत्यन्त प्राचीन मालूम होती है और कहीं

की लौकिक संस्कृतकी तरह । ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद तीनों की भाषाओंमें कहीं कहीं बहुत भेद दिखाई देता है । किसी मंत्रमें ऐसी भौगोलिक परिस्थितिका वर्णन है, जो कम से कम २५ हजार वर्षोंकी है । तथा किसी किसीमें गङ्गा, यमुना, सरयू, कीकट आदि का भी वर्णन है कहीं उच्चतम सामाजिक परिस्थितिका वर्णन है और कहीं कहीं निम्नतम का भी । कहीं जादू टोनेकी बातका उल्लेख है और कहीं अनिर्वचनीय ब्रह्म का । इस प्रकार नई और पुरानी बातोंको देखकर स्पष्ट ही विदित होता है, कि वे मन्त्र विविध समयोंमें रचे गये और सबको संहिता-रूपमें वेदव्यास, याज्ञवल्क्य आदि महर्षियोंने ग्रथित किया ।

वेदविभाग

ब्रह्मणा ब्राह्मणानाञ्च तथानुग्रहकांचया ।
विव्यास वेदान्यस्मात्स तस्माद्व्यास इति स्मृतः ।३०।
वेदानध्यापयामास महाभारतपञ्चमान् ।
सुमन्तुं जैमिनिं पैलं शुकञ्चैव स्वमात्मजम् ।३१।
प्रभुर्वरिष्ठो वरदो वैशम्पायनमेव च ।
संहितास्तैः पृथक्त्वेन भारतस्य प्रकाशिताः ।३२।
(महाभारत, आ० प० अ० ४)

तथा च—
ब्रह्मणा चोदितो व्यासो वेदान्व्यस्तुं प्रचक्रमे ।
अथ शिष्यान्स जग्राह चतुरो वेदपारगान् ।
ऋग्वेदश्रावकं पैलं जग्राह स महामुनिः ।
वैशम्पायननामानं यजुर्वेदस्य चाग्रहीत् ॥

जैमिनिं सामवेदस्य तथैवाथर्ववेदवित् ।
सुमन्तुस्तस्य शिष्योऽभूद्वेदव्यासस्य धीमतः ॥
विभेद प्रथमं विप्रः पैल ऋग्वेदपादपम् ।
इन्द्रप्रमितये प्रादाद्वाष्कलाय च संहिते ॥
चतुर्धा स विभेदाथ वाष्कलिर्द्विजसंहिताम् ।
यजुर्वेदतरोः शाखाः सप्तविंशन् महामुनिः ॥
वैशम्पायननामासौ व्यासशिष्यश्चकार वै ॥
शिष्येभ्यः प्रददौ ताश्च जगृहुस्तेऽप्यनुक्रमात् ।
(विष्णुपु०, ३।४।५)

तथा च १—महीधर अपने यजुर्वेदभाष्यमे लिखता है—

तत्रादौ ब्रह्मपरम्परया प्राप्तं वेदं वेदव्यासो मन्दमतीन् मनुष्यान् विचिन्त्य तत्कृपया चतुर्धा व्यस्य ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यांश्चतुरो वेदान् पैशम्पायनजैमिनिसुमन्तुभ्यः क्रमादुपदिदेश ।

अर्थात् वेदव्यासको ब्रह्माकी परम्परासे वेद मिला और उसने चार विभाग किये ।

२—महीधरके पूर्ववर्ती भट्टभास्कर अपने तैत्तिरीय-संहिता-भाष्यके आरम्भमे क्या लिखते हैं—

पूर्वं भगवता व्यासेन जगदुपकारार्थमेकीभूयस्थिता व्यस्ताः शाखाश्च परिच्छिन्नाः ।

अर्थात् भगवान् व्यासने एकत्र स्थित वेदोके दो विभाग करके शाखाएं नियत कीं ।

भट्टभास्करसे भी बहुत पहले होने वाले आचार्य दुर्ग, निरुक्त १।२० की वृत्तिमें लिखते हैं—

वेदं तावेदकं सन्तमतिमहत्वाद् दुरध्येयमनेकशाखा-भेदेन समाम्नासिषुः। सुखग्रहणाय व्यासेन समाम्नातवन्तः।

अर्थात् वेद पहले एक था, पीछे व्यास द्वारा उसकी अनेक शाखाएँ निर्मित हुईं।

इसी लिये महाभाष्यकार पतञ्जलिने वेदोंके ज्ञानको नित्य माना है किन्तु मन्त्रों, छन्दों, अर्थों और संहिताओंको अनित्य माना है। —यथा

न हिच्छन्दांसि क्रियन्ते। नित्यानिच्छन्दांसीति। यद्यप्यर्थो नित्यो यात्वसौ वर्णानुपूर्वी सानित्या। तद्भेदाच्चैतद्भवति काठकं कालापकं मौदकं पैप्पलादकमिति

अर्थात् छन्द कृत नहीं हैं। छन्द नित्य हैं अर्थात् छन्दोंका अर्थ नित्य है, पर वर्णानुपूर्वी उनकी शब्द रचना अनित्य है। उसी अनित्य वर्णानुपूर्वीके भेदसे ही काठक, कापालक, आदि भेद होगए हैं।

इसी लिये पृथक्-पृथक् आचार्योंके अनेक मत हैं। कोई यजुर्वेदको प्रधानता देता है। उसीको नित्य मानता है और अन्य वेदोंको उसीकी शाखारूप मानता है जैसा कि—

एक एव यजुर्वेदस्तं चतुर्धा व्यकल्पयत्

(वि० पुराण)

तथा च—

एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः

इसी प्रकार ऋग्वेदी "ऋग्वेद" को प्रथम बतलाते हैं, और अथर्ववेदी अथर्ववेद को ही मुख्य मानते हैं।

वेद ईश्वर रचित नहीं—

"प्रत्यक्ष प्रमाणसे वेदका ईश्वररचितत्व सिद्ध नहीं होता। वेदके ईश्वर रचितत्व विषय में अनुमान दोषदुष्ट हैं।

वेदके साथ भी उनका सम्बन्ध नहीं है। अतएव विषयके साथ इन्द्रिय सम्बन्धसे उत्पन्न होने वाला प्रत्यक्ष वेदके तथा कथित सृष्ट्याद्यकालीन अस्तित्व को विषय नहीं करसकता। और भी, वेद शास्त्र प्रत्यक्ष है, परन्तु उसके रचयिता ईश्वरके साथ सम्बद्ध है, ऐसा किसीको प्रत्यक्षगोचर नहीं होता। ईश्वर परोक्ष है, ऐसा मान्य होने से उसके साथ शास्त्रका सम्बन्ध प्रत्यक्षसे नहीं जाना जासकता, क्योंकि सम्बन्धके प्रत्यक्ष होनेके लिये दो सम्बन्धियोंका प्रत्यक्ष होना आवश्यक है।

अनुमान द्वारा भी उक्त सिद्धान्त प्रतिष्ठित नहीं होसकता है। यह जो हेतु कहा जाता है, कि वेदका रचयिता कोई मनुष्य वर्तमान कालमें ज्ञात न होनेसे वेद ईश्वर-रचित हैं, सो समीचीन नहीं। क्योंकि ऐसाही तर्क अन्य अनेक ग्रन्थोंके विषयमें भी समान रूपसे प्रदान कर सकते हैं, जिनके रचनाकाल और रचयिता अज्ञात हैं। मान लीजिये, कि कोई अपरिचित पुरुष या अज्ञात पिता-माताके द्वारा परित्यक्त शिशु आपके निकट आता है, उस स्थलमें क्या आपके लिये यह सिद्धान्त करना समीचीन होगा कि वह मनुष्य-जनित नहीं, किम्वा वह, सृष्टिके आदिकालमें भी विद्यमान था? और भी किसी पुस्तकका किसी समाजमें बहुत कालसे अध्ययन होता आरहा है और ग्रन्थकर्ता अज्ञात है, केवल इस हेतुसे उसका सृष्ट्याद्यकालमें ईश्वर-रचितत्व होना नहीं अनुमान किया जा सकता। यह भी नहीं कह सकते कि वेदका मनुष्य कर्तृत्व स्मरण में नहीं आता, इसलिये वह ईश्वररचित है। अनेक प्राचीन पदार्थ

ऐसे हैं जिनके निर्माणकर्ता स्मृतिगोचर नहीं हैं, उस हेतुसे क्या उन्हें सृष्ट्याद्यकालमें सृष्ट या ईश्वरकृत मानेंगे ? ऐसे ही और भी अनेक वचन पाये जाते हैं जिनके रचयिता ज्ञात नहीं, किन्तु स्मरणातीत कालसे लोगोंमे वे अखण्डस्वरूपसे प्रचलित होरहे हैं। परन्तु यह कोई हेतु नहीं है, कि जिससे हम यह सिद्धान्त कर सके कि वे सृष्ट्याद्यकालसे ईश्वर रचित हैं। और भी, वैदिक शब्दका हम लोग साधारणतया जो शब्द व्यवहार करते हैं, उनसे पृथक् स्वरूपवाला नहीं मान सकते। यदि लौकिक शब्द और वैदिक शब्दोंमे स्वरूपभेद स्वीकृत हो, तो मनुष्योंको वेदार्थ बोधगम्य नहीं होसकेगा। स्वयं वेद हमारे प्रति वेदार्थको प्रतिपादन नहीं करते। उनके अर्थकी अवगतिके लिये कोई अपौरुषेय (ईश्वररचित) व्याख्या भी नहीं है, जिससे कि वेद बोधगम्य हो। अतएव वैदिक और लौकिक शब्दोंमे भेद स्वीकार करना सगत नहीं। जब लौकिक शब्द और वैदिक शब्दोंमे उनकी स्वाभाविक अवस्थामें कोई प्रकृति-गत (शब्दस्वरूपमे) भेद नही है, जब दोनोका एकही शब्द संकेत है, जब दोनो, प्रयुक्त सकेत और उच्चारणके अनुसार ज्ञानको उत्पादन करते हैं, जब वैदिक और लौकिक शब्द दोनो ही उच्चारित न होने पर श्रुतिगोचर नहीं होते और जब वैदिक अक्षरोंमें दूसरी कोई विशिष्टता नही, तब उत्पत्ति विषयमे भी वे भेद-युक्त नहीं हो सकते और ईश्वररचितरूपसे अनुमित नहीं हो सकते। अतएव प्रमाणित हुआ कि वैदिक शब्दको भी लौकिक शब्दके समान मनुष्य-रचित मानना होगा जब वैदिक शब्द, हम लोग जो शब्द साधारणतः व्यवहार करते हैं उनके साथ समस्त भाववाला है, तब क्या प्रमाण प्रदान कर सकते हैं। जिससे यह प्रदर्शित हो सके कि, वैदिक शब्दकी आनुपूर्वी (पौर्वापर्य) और उसमें सलग्न अर्थ ऐसा विलक्षण स्वभाववाला है, कि वह किसी मनुष्य रचयिता का फल नही हो सकता, किम्वा साधारण रीतिसे साधारण

मनुष्य बुद्धिको बोधगम्य नहीं हो सकता।

परस्पर अपने भावोको प्रकट करनेके उद्देश्यसे भाषाकी रचना होती है। सांकेतिक भाषा प्रचलित होनेके पश्चात् संशोधित-रूपसे (संस्कृत) ग्रन्थकी भाषा, सृष्टिके आदि कालमे नही हो सकती। और भी, (१) विज्ञानकी दृष्टिसे, (२) ऐतिहासिक दृष्टिसे तथा (३) वेदके अन्तर्गत विषयोंकी दृष्टिसे विवेचन करनेपर, उसे "सृष्टिके आदि कालमे निराकार ईश्वरके द्वारा रचित है।" ऐसा अनुमान नही कर सकते।

(१) वर्तमान उन्नत वैज्ञानिकगवेषणाके फलसे यह सिद्धान्तित होता है कि, पृथिवीमे अति प्राचीन अवस्थामे मनुष्यके वास योग्य जलवायु और भूमि नहीं थे। प्रथम खनिज, पश्चात उद्भिज, पश्चात् प्राणीजगत् तदनन्तर मनुष्यका आविर्भाव हुआ। एक एक के पश्चात् दूसरी अवस्थाके आनेमे बहुत काल व्यतीत हुआ है। (२)वेदोमें पाए जाने वाले तत्कालीन नदियोंके नाम और ग्रामादिको के विवरणसे तथा अन्य अनेक कारणोसे यह अनुमान किया जाता है कि, आर्योंके उत्तरीय देशोमें निवास करते समय वेदोकी रचना हुई हैं। इतिहासज्ञ लोग वेदोंकी रचनाके समयका भी निर्देश करते हैं। (३) वेदोमे प्रमाणसिद्ध ऐसी कोई वस्तु नहीं पाई जाती, जिस को मनुष्य नहीं कह सकते हों तथा जिसके वर्णनके लिये सृष्टिका आदिकाल किम्वा हस्तमुखरहित लेखक और वक्ताकी आवश्यकता हो। अतएव प्रतिपन्न हुआ कि, वेदका ईश्वर-रचितत्व अनुमान प्रमाणसे सिद्ध नहीं हो सकता।

अब शब्दप्रमाणसे वेदका ईश्वररचित्व सिद्ध नहीं होता सो प्रदर्शन करते हैं—शतपथब्राह्मणका "अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद्ऋग्वेदो" आदि वचन वेदके ईश्वर-रचितत्व सिद्धान्त

को स्थापित नहीं करता, क्योंकि मनुष्य रचित-रूपसे प्रसिद्ध शास्त्रों को भी उक्त श्लोकमें ईश्वरके निश्वाससे उत्पन्न होनेवाला माना है। पूर्ण श्लोक इस प्रकार है—"अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासपुराणं विद्या-उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवेतानि सर्वाणि निःश्वसितानि"। इसमें उन इतिहास और पुराणोंका भी उल्लेख है, जिनकी रचना-इतिहासमें वर्णित राजर्षि और महर्षियों के पश्चात् कालमें हुई थी। अतएव इसको यह व्याख्या सर्वथा असगत और स्वकपोलकल्पित है कि, ईश्वरने श्वास लिया और यावत् वेदादि शास्त्र उत्पन्न होगये। वस्तुतः उक्त श्रुतिमें रूपकालङ्कार है, जिसका यह अर्थ होता है कि ससारके यावत् वेदादि शास्त्र उस महान् पञ्चभूतात्मक विराटरूप ब्रह्मके निश्वासरूप हैं। निम्न श्रुतिसे भी इस अर्थकी पुष्टि होती है। यथा ईशोपनिषद्में कहा है—"इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे" इस श्रुतिसे भी यह ज्ञात होता है कि, इसके रचयिताने किसी पूर्वकालीन ऋषि से तत्वज्ञानको श्रवणकर, पश्चात् इसकी रचना की है। अतएव श्रुति प्रमाणसे यह सिद्ध होता है कि, श्रुति मनुष्यके द्वारा रचित है। और भी, वेदका ईश्वर रचितत्व पक्ष, वेदमें वर्णित ऋषियोंके नाम और क्रियाओंके ऐतिहासिक वर्णनके साथ सुसामञ्जस्य नहीं होता। और भी, वेदभिन्न अपरशास्त्रोंकी प्रमाणता वेदानुकूल होने पर ही मान्य होती है, इस कारण वेदकी प्रमाणताके लिए वेदको ही प्रमाण मानना पड़ता है, ऐसा कथन विचारसंगत नहीं। और भी, अनुमान प्रमाणसे सिद्ध ईश्वरका स्वरूप उक्त वैदिक-सम्प्रदायोंको मान्य न होने से ("पत्युरसामञ्जस्यात्—ब्रह्मसूत्र २ अ० २ पा० ३७-४१ सूत्र द्रष्टव्य"), शास्त्रसे ही ईश्वरकी सिद्धि माननी पड़ेगी, फलतः यहां पर अन्योन्याश्रय दोष भी होगा। क्योंकि ईश्वर, शास्त्रसे प्रमाणित होता है और ईश्वरको शास्त्रका

रचयिता माना जाता है, तथा शास्त्रका यथार्थत्व इस हेतुसे स्वीकृत होता है, कि वह ईश्वरकी रचना है। अर्थात् जब शास्त्रके रचयिता ईश्वरकी विश्वस्ततासे शास्त्रकी यथार्थता निर्णीत होगी, तब उस शास्त्रके द्वारा अत्यन्त विश्वासके योग्य ईश्वरत्व प्रमाणित होगा, तब उसके रचयिता रूपसे शास्त्रकी यथार्थता ज्ञात होगी, अतएव अन्योन्याश्रय दोष होनेसे शास्त्रसे ईश्वर प्रमाणित नहीं होसकता, किम्वा ईश्वरके रचयितृत्व (निर्माणकर्तृत्व) से शास्त्रकी यथार्थता प्रमाणित नहीं होसकती। (ईश्वर विषयक अनुमान असिद्ध है, ऐसा अनुमान नहीं हो सकता)।

प्रकृत विषयमें अनुमान प्रमाण भी नहीं हो सकता। यदि वेद-भिन्न कोई वाक्य ईश्वर-रचित पाया जाता, तब उसके साथ वेदके सादृश्यज्ञानसे उपमानके द्वारा वेदका ईश्वर-रचितत्व प्रतिष्ठित हो सकता था। परन्तु ऐसा कोई वाक्य वेदवादियोंको सम्मत नहीं। अर्थापत्तिके द्वारा भी ईश्वर-रचितत्व सिद्ध नहीं हो सकता। अर्थापत्तिसे हम लोग किसी अप्रत्यक्ष पदार्थकी कल्पना करते हैं, जिसको माने बिना प्रत्यक्षगोचर कोई घटना उपपादित न होसकती हो, परन्तु वर्तमानस्थलमें वेदसम्बन्धी किसी प्रत्यक्षगोचर घटनाकी उपपत्तिके लिए वेदकी ईश्वर-रचितत्व कल्पना करनेकी आवश्यकता नहीं है। और भी, यदि अर्थापत्तिके अतिरिक्त अपर किसी प्रमाणसे वेदका ईश्वररचितत्व जाना गया हो, तब वादीके मतानुसार अर्थापत्ति प्रदान करना समुचित नहीं। अर्थापत्तिसे यह कभी जाना नहीं जा सकता, क्योंकि यह अन्योन्याश्रय दोषसे युक्त होगा। वेदके मनुष्यरचयितृत्वका अभाव, उसकी अयथार्थताके अभावके उपपादन के लिए स्वीकार किया जाता है और पुनः उसकी अयथार्थताका अभाव, मनुष्यरचितत्वके अभावके हेतुसे पाया जाता है। तथा च, यदि वादी स्वतन्त्र हेतुसे यह प्रमाणित कर सके कि वेदके सब

शास्त्र अभ्रान्त हैं और जो ग्रन्थ मनुष्यरचित होता है, वह नियम-पूर्वक भ्रान्तिसे दूषित होता है. तब उनका ईश्वररचितत्व पक्ष बलशाली हो सकता था। परन्तु वे लोग ऐसा सिद्ध करनेमें कहीं भी समर्थ नहीं हुए हैं। सुतरां उनके सिद्धान्त असंगत हैं। अतएव यह प्रमाणित हुआ कि वेदके ईश्वररचितत्व पक्षके अनुकूल कोई भी प्रमाण, साक्षात् या असाक्षात् नहीं है।

पुनश्च, शास्त्र वर्णनात्मक है और वर्णोंकी तालु आदि व्यापार-जन्य होनेके कारण—शरीरसे उत्पत्ति हो सकती है। शरीररहित ईश्वरमें नहीं। शरीररहितका प्रयत्न आजतक कहीं देखा नहीं गया। न उसकी सम्भावना ही हो सकती है ईश्वर स्वेच्छानिर्मित शरीरके द्वारा शास्त्रकी रचना करता है, ऐसी कल्पना भी सुसंगत नहीं होती। इच्छारूपी निमित्तके द्वारा देहेन्द्रियादि परिग्रहको स्वीकार करनेपर परस्पराश्रयका प्रसंग होगा। देहेन्द्रियके होनेपरही इच्छा उत्पन्न होगी एवं इच्छाके उदित होनेपरही देहादि प्राप्त हो सकेंगे, इस प्रकार अन्योन्याश्रय दोष होगा। और भी, ईश्वरके शरीरको यदि कार्यरूप माना जाय तो उसका कर्ता कौन होगा? यदि कर्ताके न होते हुए भी ईश्वरका शरीर कार्यरूप स्वीकृत हो, तो कार्यत्व लक्षण-व्यभिचारी होगा अर्थात् जगत्-कार्य भी कर्ताके बिना ही उत्पन्न हो सकेगा और ईश्वरकी आवश्यकता ही नहीं रहेगी। यदि उक्त विरोधके परिहारके लिये ईश्वरके शरीरको नित्य कहा जाय, तो जिस प्रकार ईश्वरका शरीर शारीरिक धर्मका अतिक्रमण करके भी नित्यरूप स्वीकृत हो सकता है, उसी प्रकार घटादिसे विलक्षण वृक्षादिके कार्यत्व होनेपर भी अकर्तृपूर्वकत्व (कर्तासे जनित नहीं) स्वीकृत हो सकता है।

किञ्च, यदि ईश्वरको शरीरवान कहना हो तो उसके शरीरको

नित्य अथवा नित्य सादि या शरीरान्तरके सम्बन्धसे सशरीर कहना होगा। परन्तु उक्त तीनो ही पक्ष असगत है। क्योंकि हमारे शरीरके समान ईश्वरके भी सावयव होनेके कारण, उसे नित्य अनादि नहीं कह सकते तथा नित्य सादि माननेपर भी उस ईश्वरकी उत्पत्तिके पूर्व ईश्वरको अशरीर ही कहना होगा। इसी प्रकार शरीरान्तरके द्वारा ईश्वरके सशरीर होनेपर अनवस्थाका प्रसङ्ग होगा। अतएव ईश्वरके शरीरवान् सिद्ध न होनेपर, कण्ठ, तालु आदि स्थानोसे उच्चारण करने योग्य वर्णनात्मक वेदादि शास्त्रोको आदि रचना भी उसके द्वारा नहीं हो सकती। फलतः शास्त्रको ईश्वररचित नहीं कह सकते।"

(साधु शान्तिनाथविरचितप्राच्यदर्शन समीक्षासे उद्धृत)
(पृ० ३३ से ४० तक)

अनित्या वै वेदाः

वेदोंके नित्यत्वका खण्डन न्यायाचार्योंने प्रबल युक्तियोसे किया है, उनको हम क्रमसे उपस्थित करते हैं—

सर्वप्रथम महर्षि गौतमने वेदोके नित्यत्वका खण्डन करते हुए लिखा है कि "मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्चतत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्" (न्यायदर्शन २।१।६६) मन्त्र और आयुर्वेदशास्त्रकी प्रामाणिकताके समान ही वेदोंकी प्रामाणिकता आप्तकी प्रामाणिकतासे है। इस सूत्रका भाष्य करते हुए महर्षि वात्स्यायन लिखते है कि—

आयुर्वेद आदि के देखने वाले और उपदेश देने वाले वे ही है इसलिए आयुर्वेदकी प्रामाणिकताके समान ही वेदोकी प्रामाणिकता का अनुमान करना चाहिये।

मीमांसक कहते हैं, कि आप्तकी प्रामाणिकता होने से वेदोंकी प्रामाणिकता नहीं है अपितु वेद वाक्योंके नित्य होनसे वेदोकी प्रामाणिकता है। भाष्यकार इसका खण्डन करते हुए लिखते है कि शब्दवाचक होनेसे अर्थके ज्ञात करानेमें प्रमाण हैं, नित्य होने के कारण नहीं। यदि शब्दोको नित्य माना जाय तो सब-सब के द्वारा कहे जानेसे शब्द और अर्थकी व्यवस्था ही न बन सकेगी।

मीमांसक पुनः शंका करते है, कि यदि शब्दोंको अनित्य स्वीकार किया जावे तो वे वाचक ही नहीं होसकते। ऋषि इसका उत्तर देते हैं कि यह बात नही है क्योंकि लौकिक शब्द अनित्य होने पर भी वाचक देखे जाते है। इस पर मीमांसक पुनः शंका करते हुए कहते हैं कि लौकिक शब्द भी नित्य हैं; आचार्य उत्तर देते है—यह बात नहीं है। यदि लौकिक शब्द भी नित्य हो तो अनाप्तके कथन से भी अर्थ में विसंवाद नहीं होना चाहिये।

इसी विषयको न्यायवार्त्तिककारने इस प्रकार स्पष्ट किया है कि—

मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात् ।

यहाँ पर 'च' शब्द पूर्व हेतुओंके समुच्चयके लिये है। जैसे मन्त्र और आयुर्वेद के वाक्य पुरुष विशेपके द्वारा कहे जानेसे प्रमाण हैं उसी प्रकार वेद-वाक्य भी। यहां पर पुरुष विशेषकेद्वारा कहा जाना कारण है।

आयुर्वेदकी प्रमाणता क्या है? जो आयुर्वेदके द्वारा कहा जाता है कि यह करके इष्टको पालेता है और यह करके अनिष्टको छोड़ देता है। उसके वैसा करने पर ज्यो का त्यों होना और विपरीत न आना यही प्रमाणता है। यह किसके द्वारा हुई ?

यह आप्तकी प्रमाणतासे हुई। आप्तोंकी प्रमाणता क्या है ? (१) वस्तुओंका साक्षात्कार। अर्थात जिस वस्तुका वे उपदेश देते हैं वह वस्तु उनके द्वारा साक्षात्कारकी हुई होती है। (२) जीव दया भी प्रमाणताका कारण है। अर्थात वे जिसको उपदेश देते हैं उनकी उसके प्रति अनुकम्पा होती है और (३) पदार्थ को जैसा वे साक्षात्कार करते हैं वैसो ही उनके कहनेकी इच्छा होती है। इन तीन प्रकारके विशेषणोसे विशिष्ट वक्ता आप्त कहलाता है उसके द्वारा जो उपदेश किया जाता है वह प्रमाण है।

जिन वाक्योके अर्थमे अविसंवादिता (निर्विवादपना) देखी जाती है उन वाक्योंकी अविसंवादितासे शेष वाक्योंकी प्रमाणता का अनुमान किया जाता है। जैसे "ग्रामकामो यजेत" इत्यादि। यहा पर जिस प्रकार ग्राम का इच्छुक यज्ञ करके ग्रामकी प्राप्ति करलेता है इस प्रकार वह इस वाक्य को प्रमाण समझ कर "स्वर्ग-कामोयजेत" इत्यादिक अदृष्टार्थक वाक्योंको भी प्रमाण मानता है। इन्हीं तीन प्रकारके विशेषणोसे विशिष्ट वक्ताके लौकिक वाक्य भी प्रमाण होते है। इसका अनुमान प्रयोग इस प्रकार निष्पन्न हुआ। वेदोंके वाक्य प्रमाण हैं, क्योकि वक्ता विशेषके द्वारा कहे गए हैं। मन्त्र और आयुर्वेद वाक्योंके समान।

मीमांसक पुनः शङ्का करते है कि वेदोके पौरुषेयत्व असिद्ध हैं क्योंकि वे नित्य हैं। आचार्य इसपर उत्तर देते है कि यह बात नहीं है। वेदोंके नित्य सिद्ध होनेपर यह कथन युक्तियुक्त होता और वह सिद्ध नहीं है।

शङ्का—यदि नित्य नहीं तो प्रमाणता कैसे ?

उत्तर—पदार्थोंका प्रतिपादक होनेसे प्रमाणता है नित्य होनेसे नहीं।

इसलिए यह ठीक है कि अर्थका विभाग होनेसे वेद अनित्य हैं लौकिक वाक्योंके समान। जैसे अर्थविभाग वाले लौकिक वाक्य हैं वैसे ही वेदवाक्य भी हैं। इसलिए वे नित्य नहीं हैं।

शङ्का—जैसे लौकिक वाक्य नित्य हैं उसी प्रकार वेद वाक्य भी नित्य हैं?

उत्तर—यह जो अर्थका विभाग लौकिक वाक्योंमें देखा जाता है वह नहीं होना चाहिए और वह देखा जाता है। इसलिये लौकिक वाक्य अनित्य हैं। यदि कहो कि लौकिक वाक्य तो अनित्य हैं और वेद-वाक्य नित्य, तो इसमें विशेष हेतु कहना चाहिए। अर्थका विभाग और अर्थका प्रतिपादकपना समान होनेपर भी लौकिक वाक्य अनित्य हैं और वैदिक वाक्य नित्य हैं, इसमें विशेष हेतु बतलाना चाहिए। हमने तो अर्थका विभागपना विशेष हेतु कहा ही है।

तथा च—वेद इसलिए भी अनित्य हैं कि वे वर्णवाले हैं। वर्णवाले लौकिक वाक्य अनित्य हैं उसी प्रकार वेदवाक्य भी अनित्य हैं।

तथा च सामान्य विशेषपना होते हुए कर्णसे ग्राह्य होनेके कारण लौकिक वाक्योंके समान वेद अनित्य हैं।

तथा च—पदवाले होनेसे भी लौकिक वाक्योंके समान वेद अनित्य हैं।

तथा च—पद वाले होनेसे भी लौकिक वाक्योंके समान वेद अनित्य हैं।

तथा च—(न्या० अ० ४।१।६२)का भाष्य करते हुये वात्स्यायन महर्षि लिखते हैं कि वे ही वेदार्थके साक्षात्कर्ता ऋषि इतिहास-पुराणो के वक्ता हैं। इसलिये इतिहास-पुराण पांचवाँ वेद कहा

जाता है। अतः इतिहास-पुराणको अप्रामाणिक कहना ठीक नहीं। धर्मशास्त्रको अप्रमाण बतलानेपर प्राणियोके लोक-व्यवहारका लोप हो जायेगा। और दोनोके द्रष्टा व प्रवक्ता एक होनेसे अप्रामाणिकता सिद्ध नही हो सकती। जो ऋषि मन्त्रोके द्रष्टा व प्रवक्ता हैं वे ही ऋषि इतिहास-पुराण और धर्मशास्त्रके द्रष्टा व प्रवक्ता है। इसलिये इतिहास-पुराण और धर्मशास्त्रकी अप्रामाणिकता सिद्ध नहीं हो सकती।

वात्स्यायन-भाष्यपर खद्योतटीकामे श्री प० गङ्गानाथजी झा लिखते हैं कि—

"जो वेदके और वेदार्थके द्रष्टा और अनुष्ठाता हैं वे ही प्राचेतस, और कृष्णद्वैपायन आदिक स्मृति, इतिहासादिकके प्रवक्ता हैं। इसलिए स्मृति-इतिहासादिकके पौरुषेय होनेसे अप्रामाणिकता सिद्ध नहीं हो सकती।"

तथा च—

स ऐक्षत यदि वा इममभिमँ स्येकनीयोन्नं करिष्य इति स तया वाचा तेनात्मनेदँ सर्वमसृजत यदिदं किञ्चर्चो यजूँषि सामानि छन्दाँसि यज्ञान् प्रजाः पशून्। स यद्यदेवासृजत तत्तदत्तुमध्रियत सर्वं वा अत्तीति तददितेरदितित्वम्। सर्वस्यैतस्यात्ता भवति सर्वमस्यान्नं भवति य एवमेतददितेरदितित्वं वेद ॥ ५ ॥

(बृहदारण्य० उ. १ अ. २ ब्रा.)

अर्थात् उस (प्रजापति) ने विचार किया, कि 'यदि मै इसे मार डालूंगा तो यह थोडा सा ही अन्न (भोजन) करूंगा। अतः उसने उस वाणी और उस मनके द्वारा इन सबको रचा, जो कुछ भी ये ऋक्, यजुः, साम, छन्द, यज्ञ, प्रजा और पशु है। उसने

जिस जिसकी रचना की, उसी उसीको खानेका विचार किया। वह सबको खाता है, यही उस अदितिका अदितित्व है, जो इस प्रकार इस अदितिके अदितित्वको जानता है वह इस सबका अत्ता (भोक्ता) होता है और यह सब उसका अन्न होता है।

तथा च—

प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयी विद्या संप्रास्रवत्तामभ्यतपत्तस्या अभितप्ताया एतान्यक्षराणि संप्रास्रवन्त भूर्भुवः स्वरिति ॥ २ ॥

(छान्दोग्योप. २ अ. २३. खं.)

अर्थात्—"प्रजापतिने लोकों के उद्देश्यसे ध्यानरूप तप किया। उन अभितप्त लोकोंसे त्रयी विद्या (ऋग्यजुःसामवेदादि) की उत्पत्ति हुई। तथा उस अभितप्त त्रयी विद्या (ऋग्यजुर्वेदादि) से 'भूः, भुवः और स्वः' ये अक्षर उत्पन्न हुए।

तथा च—गोपथब्राह्मण पू० २।१० में कहा है—

एवमिमे सर्वे वेदा निर्मिताः सकल्पाः सरहस्याः सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः सेतिहासाः सान्वाख्यानाः सपुराणाः सस्वराः ससंस्काराः सनिरुक्ताः सानुशासनाः सानुमार्जनाः सवाकोवाक्याः।

तथा च—शतपथ १४।६।१०।६ में कहा है—

ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि वाचैव सम्राट् प्रजायन्ते। तथा च—स एतानि त्रीणि

ज्योतींष्यभ्यतप्यत सोऽग्नेरेवर्चोऽसृजत वायोर्यजूंष्यादित्यात् सामानि। स एतां त्रयीं विद्यामभ्यतप्यत। अथैतस्या एव त्रय्यै विद्यायै तेजोरसं प्रावृहत्। एतेषामेव वेदानां भिषज्यायै स भूरित्यृचां प्रावृहत्। कौ० ६।१०॥

तथा च—स इमानि त्रीणि ज्योतींष्यभितताप। तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः। स इमांस्त्रीन् वेदानभितताप। तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि शुक्राण्यजायन्त भूरित्यृग्वेदात्।

(श० ११।५।८)

तथा च—स एतास्तिस्रो देवता अभ्यतपत्। तासां तप्यमानानां रसान् प्रावृहत्। अग्नेर्ऋचो वायोर्यजूंषि सामान्यादित्यात्। स एतां त्रयीं विद्यामभ्यतपत्। तस्यास्तप्यमानाया रसान् प्रावृहत्। भूरित्यृग्भ्यः।

(छान्दोग्य० उ० ४।१७)

तथा च—पुराण दिग्दर्शनमें श्रीमान् प० माधवाचार्यने पद्मपुराणका प्रमाण उपस्थित किया है, वह इस प्रकार है—

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरञ्च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गता॥

(अ० १०४)

तथा च—रघुवंशमें भी लिखा है—

तव मन्त्रकृतो मन्त्रैर्दूरात्प्रशमितारिभिः।

प्रत्यादिश्यन्त इव मे दृष्टलक्ष्यभिदः शराः ॥

(स० १)

अर्थात्—दूरसे ही शत्रुओंका नाश करनेवाले तुझ मन्त्रकर्ता के मन्त्रोंसे दृष्ट लक्ष्यको बाँधनेवाले मेरे बाण निराकृत किये जाते हैं।

तथा च—प्रश्नोपनिषद् ६।४ मे लिखा है कि—सप्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्रा कर्म लोका लोकेषु च नाम च। अर्थात् उस पुरुषने प्राणको रचा, फिर प्राणसे श्रद्धा, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी, इंद्रिय, मन और अन्नको तथा अन्नसे वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म और लोकोंको एवं लोकोमें नामको उत्पन्न किया।

इसके भाष्यमे श्री शङ्कराचार्यजी लिखते हैं—

"एवं प्राणिनां कार्यं करणं च सृष्ट्वा तत्स्थित्यर्थं व्रीहियवादिलक्षणमन्नम्। ततश्चान्नादद्यमानाद्वीर्यं सामर्थ्यं बलं सर्वकर्मप्रवृत्तिसाधनम्। तद्वीर्यवतां च प्राणिनां तपो विशुद्धिसाधनं सङ्कीर्यमाणानाम्। मन्त्रास्तपो विशुद्धान्तर्बहिष्करणेभ्यः कर्मसाधनभूता ऋग्यजुःसामाथर्वाङ्गिरसः। ततः कर्माग्निहोत्रादिलक्षणम्। ततो लोकाः कर्मणां फलम्। तेषु च सृष्टानां प्राणिनां नाम च देवदत्तो यज्ञदत्त इत्यादि।"

अर्थात् इस प्रकार प्राणियोंके कार्य विषय और करणो (इन्द्रियो) की रचना कर उनकी स्थितिके लिये उसने व्रीहि यवादिरूप अन्न उत्पन्न किया। फिर उस खाये हुए अन्नसे सब प्रकारके कर्मोंकी प्रवृत्तिका साधनभूत वीर्य, सामर्थ्य अर्थात् बल उत्पन्न किया। तदनन्तर वर्णसंकरताको प्राप्त होते हुए उन वीर्यवान् प्राणियोंकी शुद्धिके साधनभूत तपकी रचना की। फिर जिनके बाह्य और अन्तःकरणोंके तपसे शुद्धि होगई उन प्राणियोके लिए कर्मके

साधनभूत ऋक्, यजु, साम और अथर्वाङ्गिरस मन्त्रोकी रचना की और तत्पश्चात् अग्निहोत्रादि कर्म तथा कर्मोंके फलस्वरूप लोक-निर्माण किये। फिर इस प्रकार रचे हुए उन लोकोंमे प्राणियोंके देवदत्त यज्ञदत्त, आदि नाम बनाये।

तथाच—नव्यन्यायके आदि प्रवर्तक "गङ्गेशोपाध्याय" ने अपने "तत्वचिन्तामणि" नामक ग्रन्थमें लिखा है कि:—

तस्मात्तपस्तेपानाच्चत्वारो वेदा अजायन्त, ऋच. सामानि जज्ञिरे इति कर्तृश्रवणात्। प्रतिमन्वन्तरं चैषा श्रुतिरन्या विधीयते इति कर्तृस्मरणाच्च।

इत्यादि श्रुति-स्मृति-वचन उद्धृत कर वेदोका पौरुषेयत्व सिद्ध किया है। उनके मतसे वेदोंमें स्तोत्र रचनाका अनेक बार उल्लेख है—

(१) अयं वेदानां जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया अकारि-रत्नधातम।

(ऋ० १।२०।१)

(२) प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरूपवत्। अंगिरस्व-न्महिव्रतप्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम्॥

(ऋ० १।४५।३)

(३) सनाय ते गोतम इन्द्र नव्यमतक्षद् ब्रह्म हरियोजनाय।

(ऋ० १।३२।१३)

इत्यादि कतिपय वचनोसे कहते हैं कि वेद अनित्य हैं। वह भिन्न-भिन्न ऋषियो द्वारा विरचित हैं। यह बात स्पष्ट सिद्ध होती है।

तथाच—सांख्याचार्य महर्षि कपिलने वेदोंके नित्यत्वका खंडन करते हुए लिखा है कि—

न नित्यत्वं वेदानां कार्यत्वश्रुतेः ।

(५।४५।३७२)

इस विषयमें यजुर्वेदका प्रमाण इस प्रकार है—

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।

(३१।६)

तथाच—साँख्यदर्शनने जहाँ वेदोंके नित्यत्वका खण्डन किया है वहाँ वेदोंके अपौरुषेयवाद का भी खण्डन निम्न प्रकारसे किया है—

यस्मिन्नदृष्टेऽपि कृतबुद्धिरुपजायते तत्पौरुषेयम् ।

(५।५०।३७७)

अर्थात् जिस वस्तुके कर्ता न दिखाई देने पर भी कृत बुद्धि उत्पन्न है वह पौरुषेय है, इसी प्रकार वेदोंका कर्ता न दीखने पर भी उसकी रचनाको देखकर अन्य ग्रन्थोंके सदृश वे पौरुषेय हैं। इसी लिये महर्षि गोतम लिखते हैं कि—

आदिमत्त्वादैन्द्रियकत्वात् कृतकवदुपचाराच्च ।

(२।२।१३)

अर्थात् आदि होनेके कारण, ऐन्द्रियक होनेके कारण और उपचारसे (व्यवहारसे) मन्द, तीव्रादि शब्दोंका व्यवहार होनेसे कृतक होनेसे शब्द अनित्य है। अतः स्पष्ट है कि शब्दात्मक होनेके हेतु वेद भी अनित्य हैं।

तथाच—

अपौरुषेय—"वेदोंके अपौरुषेय मानने पर यह प्रश्न उत्पन्न

होता है कि यह अपौरुषेयत्व पदमें है, वाक्यमें है, या वर्णों में ? इनके सिवाय अन्य कोई प्रकार नहीं हो सकता। इनमेंसे प्रथम और द्वितीय विकल्प तो बन ही नहीं सकता, क्योंकि यह बात अनुमानादिसे विरुद्ध है। वेदके पद व वाक्य पौरुषेय हैं, क्योंकि वे पद एवं वाक्य हैं। महाभारत आदिके पद व वाक्योंके समान। तथा अपौरुषेयत्वका साधक प्रमाण न होनेसे भी वेदका अपौरुषेय-पना नहीं बन सकता है। वेदके अपौरुषेय साधक प्रमाणोंका अभाव असिद्ध नहीं है, तथाहि, अपौरुषेयकी सिद्धि करने वाला प्रमाण प्रत्यक्ष है या अनुमान है अथवा अर्थापत्ति आदि ? प्रत्यक्ष तो हो नहीं सकता, क्योंकि वह तो शब्दके सुनने मात्रमें अपना कार्य समाप्त कर देता है। अतः शब्दके पौरुषेय या अपौरुषेयधर्म को वह ग्रहण नहीं करता है। अनादिसे विद्यमान रहने वाले अपौरुषेयत्वको इन्द्रियोंसे उत्पन्न प्रत्यक्ष कैसे ग्रहण कर सकता है ? क्योंकि इन्द्रियां तो प्रतिनियत रूप आदिको विषय करती हैं। अनादि कालसे सम्बन्धका अभाव होनेसे, अनादि कालसे सम्बन्ध रखने वाले सत्वसे भी सम्बन्धका अभाव है। और यदि सम्बन्ध है भी तो उसीके समान अनागत कालसे सम्बद्ध धर्म आदिक स्वरूपसे भी सम्बन्ध सम्भव हो सकता है, तब अतीन्द्रिय पदार्थ धर्मके ज्ञाताका अभाव कैसे हो सकता है ? और अनुमान भी अपौरुषेय की सिद्धि नहीं करता है, वह अनुमान, कर्त्ताके असमरणरूप हेतुसे उत्पन्न होता है ? या वेदका अध्ययन, इस शब्दसे कहे जाने रूप हेतुसे, या कालरूप हेतुसे, उत्पन्न होता है ? प्रथम पक्षमें विचारणीय यह है कि कर्त्ता असमरण क्या वस्तु है ? कर्त्ताके स्मरणका अभाव, या स्मरण होने योग्य कर्त्ताका अभाव कहते हो ?

प्रथम पक्ष स्वीकार करने पर तो हेतु व्यधिकरणासिद्ध हो

जायेगा। अर्थात् हेतु और साध्यका अधिकरण भिन्न-भिन्न हो जावेगा। क्योकि कर्त्ताके स्मरणका अभाव तो आत्मासे और अपौरुषेयपना वेदमे रहता है।

दूसरे पक्षमे अर्थात् स्मरण होने योग्य कर्त्ताका अभाव कहने पर दृष्टान्तका अभाव हो जावेगा ? क्योकि किसी भी नित्य वस्तुका न तो स्मर्यमाण कर्त्ता और न अस्मर्यमाण कर्त्ता ही स्वीकार किया गया है, अपितु वह वस्तु अकर्तृक ही स्वीकार की जाती है। हेतुका विशेषण भी व्यर्थ हो जाता है। कर्त्ताके होने पर ही स्मरण या अस्मरण होता है, कर्त्ताके अभावमें नहीं। जैसे आकाशके कर्त्ताका स्मरण या अस्मरण नहीं होता है, क्योंकि उसका कर्ता नहीं है। यदि कहो, कि अकर्तृकपना ही यहाँ पर विवक्षित है, तो स्मर्यमाण विशेषण व्यर्थ है। और जीर्ण,-कूप, महल, नगर आदिके साथ व्यभिचार भी आता है क्योकि उनके कर्त्ताका भी स्मरण नहीं होता है। परन्तु वे हैं पौरुषेय, यह सर्वसम्मत है।

यदि कहो कि सम्प्रदायके विच्छेद न होनेपर अस्मर्यमाण कर्त्तापना हेतु है तो भी अनेकान्त है। इस वट वृक्षपर भूत रहता है. इत्यादि अनेक पद सम्प्रदायका विच्छेद न होनेपर भी पौरुषेय देखे जाते हैं। आप भी उनको अपौरुषेय नहीं स्वीकार करते हो, और हेतु असिद्ध भी है, क्योंकि पौराणिक ब्रह्माको वेदका कर्त्ता कहते हैं "वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिसृता" अर्थात् वेद ब्रह्माके मुखसे निकलते हैं एवञ्च "प्रतिमन्वन्तरञ्चैव श्रुतिरन्या विधीयते" अर्थात् प्रत्येक मन्वन्तरके पश्चात् नवीन श्रुतियोंका निर्माण होता है इत्यादि वचनोसे वेदके कर्त्ताकी सिद्धि होती है। तथा च काण्व, माध्यन्दिनी, शाकल्य, आदि वेद-शाखाओके नाम प्रसिद्ध है। ये नाम ही

उनके कर्त्ताओंको सिद्ध करते हैं। अतः कर्त्ताका अस्मरण कैसे सिद्ध हुआ।

तथा च, श्रुतियाँ उन २ ऋषियोंके द्वारा रचित होनेसे उनके नामोसे अंकित हैं या उनके द्वारा देखी जानेसे अथवा उनके द्वारा प्रकाशित होनेसे ? यदि उनके द्वारा ये बनाई गई हैं तो उनके कर्त्ताओका अस्मरण कहाँ रहा ? उनका तो स्मरण सिद्ध हो गया। ऐसा होनेपर उनका पौरुषेयत्व स्वयं सिद्ध हो गया। आदिके दोनो पक्षोमे भी यदि नष्ट वेदोकी शाखाओको उन कण्व आदि ऋषियोने देखा या प्रकाशन किया तो सम्प्रदाय का अविच्छेद कहाँ रहा। विच्छेद हो गया, तभी तो उन्होने वे ऋचाएँ देखीं तथा प्रकाशित कीं, और अतीन्द्रिय पदार्थदर्शीका खण्डन कैसे हुआ। जिन ऋषियोने इन अतीन्द्रिय ऋचाओको देखा या प्रकाशित किया, वे ही तो अतीन्द्रिय अर्थके द्रष्टा हुए। यदि कहो, कि निरन्तराय-धाराप्रवाहसे चली आने वाली ऋचाओको देखा, तथा प्रकाशित किया तो जितने उपाध्यायोंसे वे देखी गईं या प्रकाशमे लाई गईं तो उन सबके नामोंसे अंकित होनी चाहिएँ। कुछ विशेपता तो है नहीं, कि एक नामसे तो अंकित हों और आपके नामसे नहीं। इस कथनसे "वेदके कर्त्ताके स्मरणकी मूलभित्ति नष्ट होगई" इत्यादि कथन भी खण्डित हो गया।

तथाहि-प्रत्यक्षसे उस कर्त्ताका ग्रहण न होनेसे वेदमे कर्त्ताका स्मरण छिन्नमूल है ? या अन्य प्रमाणसे उसका ग्रहण न होनेसे ? यदि प्रत्यक्षसे कहते हो, तो आपके प्रत्यक्षसे या सबके प्रत्यक्षसे। यदि आपके प्रत्यक्षसे तो आपका प्रत्यक्ष तो वेदके अतिरिक्त अन्य शास्त्रोंके भी कर्त्ताको

ग्रहण नहीं करता है। अतएव अन्य आगमोके कर्ताका स्मरण भी छिन्नमूल होनेसे उनके कर्त्ताओंका भी अभाव होना चाहिए। इसी प्रकार जितने कर्त्ता प्रमाणोसे सिद्ध हैं, उन त्रिपिटक आदि ग्रन्थोमे भी कर्त्ताके अस्मरणरूप हेतुके चले जानेसे हेतु व्यभिचारी हो गया। यदि कहो कि अन्य आगमोंमे हमारे प्रत्यक्षसे कर्त्ताके ग्रहण न होनेपर भी सौगत आदिके द्वारा कर्त्ताका सद्भाव स्वीकार करनेसे उनके व्यावृत्त हेतु अपौरुषेयत्वके साथ ही व्याप्त है, तो यह बात भी नहीं चल सकती। क्योंकि अन्यकी मान्यता तो आपकी दृष्टिमें अप्रमाण है। अन्यथा अन्य सौगत आदि तो वेदमे भी कर्त्ताका सद्भाव स्वीकार करते हैं। इस प्रकार तो वेदमें कर्त्ताका अस्मरणही असिद्ध हो जाता है। यदि कहो कि वेदमे विवादरहित निश्चित किसी एक कर्त्ताके विषयमें विवाद है, इसलिए कर्त्ताका स्मरण अप्रमाण है। कोई तो ब्रह्माको वेदका कर्त्ता स्वीकार करते है, अन्य, अष्टक आदिको कर्त्ता स्वीकार करते हैं अतः कर्त्ताका अस्मरण असिद्ध नहीं है। यदि ऐसी बात है तो कर्त्ता विशेषमे ही तो विवाद है, कर्त्ता सामान्यमे तो कोई विवाद न रहा। इसलिए कर्त्ताका स्मरण-मात्र तो प्रमाण ही ठहरा। अन्यथा तो कादम्बरी आदिके कर्त्तामें भी विवाद है। इस प्रकार तो वे भी नित्य सिद्ध हो जायेंगे। अतः सामान्य कर्त्ताके स्मरण होनेसे स्मर्यमाण कर्त्तापना हेतु व्यभिचारी है।

यदि कहो कि वेदके कर्त्ता विशेषमें जिस प्रकार विवाद है उसी प्रकार उसके कर्त्ता सामान्यमे भी विवाद है इसलिए वेदके कर्त्ताका स्मरण भी अप्रमाण है। किन्तु कादम्बरी आदिके तो कर्त्ता विशेषमें ही विवाद होनेसे कर्त्ताका स्मरण प्रमाण

है। इसलिए अस्मर्यमाण कर्तृकत्व हेतुमे अनेकान्त दोप नहीं आता है। इस पर आचार्य तर्क करते हुए उत्तर देते हैं कि सौगत आदि तो वेदमें कर्त्ता स्वीकार करते हैं और मीमांसक आदि नहीं करते इस प्रकार कर्त्ता सामान्यमे विवाद होनेसे यदि कर्त्ताका स्मरण अप्रमाण है तो कर्त्ताका असमरण भी तो उसीके समान अप्रमाण ठहरा, क्योकि उसमे विवाद समान रूपसे विद्यमान है। इस लिए आपका हेतु असिद्ध है।

अथवा, वेद अपौरुषेय होवे, तो भी वह व्याख्या किया हुआ ही अपने अर्थका ज्ञान कराता है? विना व्याख्याके तो ज्ञान हो नहीं सकता, अन्यथा तो अतिप्रसंग दोप आजावेगा। अर्थात् इस प्रकारसे तो जैसे ब्राह्मण आदि वेदके अनुयायियोको अर्थकी प्रतीति कराता है उसी प्रकार सौगतको भी करा देवे।

यदि व्याख्या किया हुआ अर्थकी प्रतीति कराता है तो उसका व्याख्यान किस प्रकारसे होगा? स्वतः ही या पुरुषसे स्वतः तो हो नहीं सकता, क्योंकि मेरा यही अर्थ है अन्य नहीं है, यह (जड) वेद स्वयं प्रतिपादन नहीं कर सकता है। अन्यथा व्याख्याका भेद नहीं होना चाहिए। यदि पुरुषसे व्याख्या कहोगे, तो पुरुषके द्वारा किए गये उसके व्याख्यानसे अर्थके दोषोकी आशंका कैसे नहीं होगी? क्योंकि पुरुष विपरोत भी व्याख्यान करते देखे गये हैं। व्याख्यानोकी प्रमाणता, यदि संवादसे स्वीकार करते हो तो अपौरुपेयत्व कल्पना व्यर्थ है। व्याख्यानके समान वेदकी प्रमाणता भी संवादसे ही निश्चित हो सकती है। तथा व्याख्यानोंमें संवाद पना भी नहीं है, क्योंकि परस्पर विरुद्ध भावना, नियोग आदि

व्याख्यानोंमें परस्पर विसंवाद देखा जाता है। और दूसरी बात यह है कि उसका व्याख्यान करने वाला अतीन्द्रिय पदार्थोंका द्रष्टा है या उससे विपरीत है? प्रथम पक्षमें तो अतीन्द्रिय पदार्थदर्शीका प्रतिषेध नहीं हो सकेगा, और धर्म आदिमें इसी पुरुषकी प्रमाणता बन सकती है। "धर्मके विषयमें वेदकी ऋचाएँ ही प्रमाण हैं" यह नियम भी नहीं हो सकेगा। और यदि अतीन्द्रिय अर्थके द्रष्टासे विपरीत किञ्चिज्ञ उस वेदका व्याख्याता है, तो उसके व्याख्यानसे यथार्थ ज्ञान कैसे हो सकेगा? असत्य व्याख्यानकी शंकासे यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकेगा। मनु आदिके अतिशय सहित बुद्धिमान् होनेसे उनके व्याख्यानसे यथार्थ परिज्ञान हो जावेगा, यह भी बात नहीं है। क्योंकि मनु आदिके अतिशय ज्ञानका सद्भाव असिद्ध है। उनकी प्रज्ञाका अतिशय स्वतः ही, या वेदके अर्थके अभ्याससे, या अदृष्टसे अथवा ब्रह्मासे होता है? स्वतः यदि होता है, तो सबके ही होना चाहिये। किसीके कोई विशेषता तो है ही नहीं। वेदके अर्थके अभ्याससे यदि कहोगे, तो वह अभ्यास ज्ञात या अज्ञात अर्थका अभ्यास होगा? अज्ञातका तो हो नहीं सकता, अन्यथा गोपाल (ग्वाले) आदिको भी वेदके अर्थका अभ्यास होना चाहिये। ज्ञातका यदि है, तो उसका ज्ञान स्वतः ही होता है? या अन्य से? स्वतः यदि होता है, तो उसका अन्योन्याश्रय दोष आता है। वेदके अर्थका अभ्यास होने पर स्वतः उसका परिज्ञान होगा। और स्वतः परिज्ञान होने पर वेदके अर्थका अभ्यास होगा। यदि अन्य वेदसे वेदके अर्थका ज्ञान होता है तो उसका भी वेदार्थका ज्ञान अन्यसे होगा। इस प्रकार अतीन्द्रिय अर्थके द्रष्टा न मानने पर (अन्धपरम्परा) यथार्थ निर्णय नहीं हो सकेगा। अदृष्ट भी प्रज्ञाका असाधक (सिद्ध न करने वाला) है। क्योकि वह (अदृष्ट) अन्य आत्माओंमें भी समान है।

वैसा अदृष्ट (धर्मविशेष) अन्यके नहीं हैं, मनु आदिमें ही वैसा अदृष्ट हो सकता है। यदि ऐसा कहते हो तो मनु आदिमें ही वह धर्म विशेषरूप अदृष्ट कैसे सम्भव है? यदि वैदिक अर्थके अनुष्ठानसे करोगे तो क्या वह वेदके ज्ञात अर्थका या अज्ञात अर्थका अनुष्ठान करता है? अज्ञात अर्थका तो कहा नहीं जासकता, अन्यथा अतिप्रसग दोष आता है। ज्ञातका कहने पर परस्पराश्रय दोष आता है। वेदके अर्थके ज्ञानका अतिशय सिद्ध होने पर उस अर्थका विशेष अनुष्ठान सिद्ध होता है, और अनुष्ठान सिद्ध होने पर उसके ज्ञानका अतिशय सिद्ध हो सकता है। ब्रह्मके भी वेदके अर्थका ज्ञान सिद्ध होने पर उन ब्रह्मासे मनु आदिके वेदके अर्थका ज्ञानातिशय हो सकता है। वह वेदके अर्थका ज्ञान ब्रह्माके कैसे सिद्ध हो सकता है? यदि धर्मविशेषसे कहोगे तो वही परस्पराश्रय दोष आता है। वेदके अर्थके परिज्ञानका अभाव होनेपर उस ज्ञान पूर्वक अनुष्ठानसे उत्पन्न धर्म विशेष की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। और धर्मविशेषकी उत्पत्तिके अभावमे वेदके अर्थका परिज्ञान असम्भव है। इसलिए अतीन्द्रिय अर्थके द्रष्टाके अस्वीकार करनेपर वेदके अर्थका परिज्ञान नहीं हो सकता है।

वादी कहता है, कि व्याकरण आदिके अभ्याससे लौकिकपद वाक्योंके अर्थका ज्ञान होनेपर उनके समान वैदिक-पद वाक्योंके अर्थका परिज्ञान भी होजावेगा। जैसे अश्रुतपूर्व काव्योंका ज्ञान हो जाता है, इसलिए वेदके ज्ञान करानेमे अतीन्द्रिय अर्थके द्रष्टाका कुछ प्रयोजन नहीं है। आचार्य कहते हैं, कि यह कथन भी निःसार है। क्योंकि लौकिक और वैदिक पदोंमे एकता होने पर भी पदोंके अनेक अर्थ होनेसे एक अर्थका परिहार करके दूसरे अभिलाषित अर्थकी व्यवस्थाका नियम नहीं हो सकेगा। और प्रकरण आदिसे भी उसका नियम नहीं बन सकता है। क्योंकि

प्रमाण भी अनेक हो सकते हैं। जैसे द्विसन्धान आदि काव्योंके प्रकरण भी भिन्न भिन्न होते हैं। यदि लौकिक अग्नि आदि शब्दके समान होनेसे वैदिक अग्नि आदि शब्दके अर्थका ज्ञान हो जाता है तो पुरुष-कृतकी समानता होने से वह पौरुपेय भी क्यों न हो जावे। लौकिक अग्नि आदि शब्दके अर्थपना पौरुपेयत्वको छोड़कर इसके ही अर्थको कैसे ग्रहण करा सकते हैं। दोनोंको ही ग्रहण करना या छोड़ना चाहिये। जिस अर्थमें जिन शब्दोंका पुरुषोंके द्वारा संकेत किया गया है, वे शब्द उसी अर्थको निर्दोष-रूपसे प्रतिपादन करते देखे जाते हैं। अन्यथा शब्दोंके भेदकी कल्पना ही व्यर्थ हो जाय। इसलिये वैदिक-वचन पुरुष-कृत हैं। पुरुष-कृत वचनकी रचनाके समान होनेसे ? जैसे नवीन बनाये कूप, प्रासाद आदिकी रचनाके समान रचित जीर्णकूप, प्रासाद आदि।

वर्णोंके भी नित्यताकी सिद्धि नहीं हो सकती है। क्योंकि कृतकत्व हेतुसे शब्द मात्रकी अनित्यता सिद्ध होनेसे पर वर्ण भी अनित्य सिद्ध हो जाते हैं। इसीको स्पष्ट करते हैं।

शब्द अनित्य हैं, कृतक होनेसे घटके समान। यहाँ पर कृतक होना हेतु असिद्ध नहीं है। क्योंकि इसकी प्रमाणसे सिद्धि है। इसीको स्पष्ट करते हैं—

शब्द कृतक हैं, कारणोंके साथ अन्वय और व्यतिरेक रखने से घट आदिके समान। जैसे घट, कुम्हार, दण्ड आदिके साथ अन्वयव्यतिरेक रखता हुआ अनित्य है, उसी तरहसे शब्द, तालु कण्ठ आदिके साथ अन्वयव्यतिरेक रखता हुआ अनित्य है।

शब्द, तालु, कण्ठ आदिके व्यापारके अभावमें नहीं देखा

जाता है। जैसे चक्र आदिके अभावमे घटादि।

वादी शका करता है कि शब्दको अनित्य स्वीकार करने पर उससे अर्थका परिज्ञान नह होना चाहिये और वह होता है। इसलिए शब्द नित्य है। अन्यथा वह अपने अर्थका प्रतिपादक नहीं हो सकता।

शब्दार्थका ज्ञान अर्थके साथ शब्दके साथ सम्बन्धके आधीन है। और सम्बन्धका ज्ञान तीन प्रमाणोके द्वारा सम्पादित होता है। इसीको स्पष्ट करते हैं—

जब एक वृद्ध, संकेतके जानकार बालकको आज्ञा देता है— अरे देवदत्त! श्वेत गायको डण्डेसे हॉक ला, तब निकटमे स्थित अन्य जिसने सकेतका ग्रहण नहीं किया है, वह शब्द और पदार्थ दोनोको प्रत्यक्षसे समझ लेता है। और सुनने वालेके उस विषयक दण्डसे मारण आदि चेष्टाओके होनेसे गाय आदि विषयक ज्ञानको समझ लेता है, कि इस देवदत्तके गाय विषयक ज्ञान है। उसके ज्ञान अन्यथा नहीं होना चाहिये था। इस अन्यथानुपपत्तिके बलसे उस शब्दकी उसी अर्थमे वाचक शक्ति है ऐसी कल्पना कर लेता है। पुनः २ उस शब्दके उच्चारणसे ही उस अर्थका ज्ञान होता है। इस प्रकार प्रत्यक्ष अनुमान और आगम द्वारा शब्द और अर्थके सम्बन्धका ज्ञान होता है। यह एक बार शब्दके उच्चारणसे सम्भव नहीं है और अनित्यका पुनः २ उच्चारण भी नहीं है और उस पुनः २ उच्चारणके अभावमें अन्वय और व्यतिरेक द्वारा वाचक शक्तिका ज्ञान नहीं हो सकता है। और वाचक शक्तिके अभावमें बुद्धिमानोंको दूसरेके ज्ञान करानेके लिएं वाक्यों का उच्चारण नहीं करना चाहिये, परन्तु वाक्योंका उच्चारण

होता है। अतः परके लिये वाक्योंका उच्चारण नहीं बन सकता। इस अन्यथानुपपत्तिके बलसे निश्चय किया जाता है, कि शब्द नित्य है। यही आचार्योंने कहा है।

दर्शनस्य परार्थत्वान्नित्यः शब्दः

अर्थात् उच्चारण परके लिये होनेसे शब्द नित्य है। यदि ऐसी सम्मति हो, कि उच्चारण किये जाने वाला शब्द समानताके कारण नित्य सा मालूम होता हुआ अर्थका परिज्ञान कराता है, नित्यताके कारण नहीं। यह कथन भी ठीक नहीं है।

सदृशताके कारण शब्दोंसे अर्थका परिज्ञान नहीं हो सकता है। एकत्वरूपसे निश्चित ही शब्द अर्थके साथ सम्बन्ध ग्रहण करता है। जो शब्द मैंने जाना था वही यह है, इस प्रकारकी अनुभवसिद्ध प्रतीति नहीं होती। उसके समान यह शब्द है ऐसी प्रतीति नहीं होती। और दूसरी बात यह भी है कि सदृशतासे अर्थकी प्रतीति होनेपर शब्द-ज्ञान भ्रान्त होजावेगा। संकेत तो अन्यके साथ, और अर्थकी प्रतीति अन्यसे भ्रान्तिरहित होजाय, ऐसा नहीं कहा जा सकता। अन्यथा गो शब्दमें संकेत ग्रहण करनेपर अश्व शब्दसे भी गौ अर्थका ज्ञान भ्रान्तिरहित होना चाहिए। इस प्रकार पदार्थोंका प्रतिपादकपना अन्यथा नहीं बन सकता। अतः शब्द नित्य है।

उत्तर—अनित्य शब्द अर्थका प्रतिपादक नहीं हो सकता, यह कथन युक्तियुक्त नहीं है। क्योंकि धूम आदिके समान जिस शब्दका संकेत ग्रहण कर लिया, ऐसे अनित्य भी शब्दके द्वारा सादृश्यसे अर्थका प्रतिपादन हो सकता है। जो शब्द संकेत कालमें देखा जाता है, उसीसे अर्थकी प्रतीति हो, ऐसा नियम नहीं है। क्योंकि महानसमें दृष्ट धूमके सदृश पर्वतके धूमसे भी अर्थकी प्रतिपत्ति देखी जाती है। अन्यथा तो सब वस्तुएँ ही व्यापक सिद्ध होजायें। समान

परिणामकी प्रधानतासे साध्य और साधनके निश्चयका सम्बन्ध होता है। सम्पूर्ण धूम व्यक्तियोंका अपने साध्य अग्निके साथ सम्बन्ध अल्पज्ञोंके द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता। यदि कहो, कि धूम, सामान्य ही अग्निके ज्ञानका कारण है, सो भी नहीं। क्योंकि व्यक्तिके समानताके अतिरिक्त सामान्य ही असंभव है और धूमत्वसे मैंने अग्निका ज्ञान किया, ऐसी प्रतीति भी नहीं होती, अपितु धूमसे अग्निका ज्ञान होता है। ऐसी प्रतीति होती है।

सदृश शब्दसे जो अर्थ-प्रतीतिका खण्डन किया है वह ठीक नहीं है। क्योंकि अनुमानमें सदृश धूमसे अग्निका ज्ञान देखा जाता है। अन्यथा सब अनुमानोंकी समाप्ति ही हो जावेगी। इससे यह भी खण्डित होगया कि शब्दके उच्चारण किये विना, वाच्य-घट आदि अर्थके साथ वाचक-घट शब्दका सम्बन्ध कैसे हो सकता है। और उच्चारण करके नष्ट हुए शब्दके साथ संबंधसे क्या प्रयोजन है? क्योंकि वह शब्द तो नष्ट होचुका इत्यादि।

यह सब कुतर्क धूममें समान रूपसे ही लागू होते हैं। क्योंकि अदृष्ट धूममें तो सम्बन्ध ग्रहण नहीं किया जासकता, और देख कर नष्ट हुए धूमसे कोई सम्बन्ध नहीं।

इसलिये व्यवहारमे प्रवृत्तिके इच्छुक मीमांसकको सदृशतासे अर्थकी प्रतिपत्ति स्वीकार करनी ही चाहिये। और दूसरी बात हम पूछते हैं, कि यदि शब्दसे जातिका परिज्ञान है तो व्यक्तिका हुआ, जिससे वह व्यक्तिको जनावे। इस प्रकार वाच्य और वाचक दोनो में सामान्य विशिष्ट विशेष रूपता स्वीकार करनी चाहिये। सादृश्यतासे अर्थको प्रतिपत्ति स्वीकार करनेपर शाब्दिक ज्ञान भ्रान्त हो जावेगा, सो यह बात तो धूम आदिसे अग्निके ज्ञान करनेमें भी समान है। इस प्रकार अनित्य शब्दसे अभ्रान्त अर्थ-बोध होता है। इसका विशेष स्पष्टीकरण श्री प्रमेयकमलमार्तण्डसे जानना चाहिए।

(प्रमेयकमलमार्तण्ड अनुवादक पं० ज्योतिस्वरूप न्यायतीर्थ सहारनपुर)।

तथाच—ऋग्वेद भाष्यकार पं० रामगोविन्दजी त्रिवेदी "वैदिक साहित्य" नामक ग्रन्थके पृ० ३० पर लिखते है कि "हमारे शास्त्र और धर्माचार्य वेदकी नित्यता स्वीकार करते है। सनातनी और आर्य-समाजी वेद-नित्यत्वके प्रवल पक्षपाती है। कई तो छन्दोरूप मे ही, शब्दशः और अक्षरशः, वेदको नित्य मानते हैं। स्कन्द स्वामी, सायण आदि सभी प्राचीन भाष्यकार वेदको नित्यता स्वीकार करते है। अनेक लोग शब्द-स्फोट, वाक्य-स्फोट आदिकी नित्यता स्वीकार कर वेदको नित्य बताते हैं और अनेक वेदको ईश्वरका स्वाभाविक निःश्वास मानते हैं। ग्रामोफोनके रेकार्डमें भरे हुए शब्द महीनों और वर्षों वाद सुनाई देते हैं; इसलिए भी शब्द और शब्दरूप वेद नित्य माने जाते हैं। परन्तु यहाँ यह प्रश्न उठता है कि 'यदि शब्द-मात्र नित्य है, तो शब्दरूप बाइबिल, कुरान, और प्रतिदिन गढी जाने वाली ठुमरी और कजलीको भी नित्य मानना पड़ेगा। वेदकी विशेषता ही क्या रही? दूसरी बात यह भी विचारणीय है कि जब कि न्याय, वैशेषिक आदि शब्दके आधार-आकाश (वैज्ञानिक मतसे वायु) को ही नित्य नहीं मानते, तब शब्द कैसे नित्य हुआ? सांख्यके मतसे जब प्रकृतिकी साम्यावस्था मे आकाश और वायु ही नहीं रहते, तब गुण-रूप-शब्द, शब्दरूप वेद, छन्दोरूप मे कैसे रहेंगे?"

तथा च—आगे आप लिखते हैं कि "इतना होने पर भी वेदके जिन अंशोमे ऐतिहासिक बातें हैं, वे अंश तो किसी भी रूपमे नित्य नहीं। अभावपूर्तिके लिए मनुष्य भाषाएँ बनाया करता है, और वे भाषाएँ बदला करती हैं। स्वयं वैदिक भाषा कितने

ही रूपोमें आचुकी है। ऋग्वेदसंहिता और अथर्ववेदसंहिता की भाषाओमे, अनेक स्थलोमें भेद है। शाकलसंहिता और माध्यन्दिन-संहिताकी भाषाओंमें जमीन आसमानका भेद है।

तैत्तिरीय और मैत्रायणीय संहिताओंको देखकर क्या कोई कह सकता है कि दोनोंकी भाषा एक वा समकालीन है?

वस्तुतः ईश्वरीय शक्तिसे शक्तिमान होकर तपःपूत ऋषियों ने वेदको बनाया। अभूतपूर्व वस्तुके उत्पादनके अर्थमें जन्, कृ, सृज्, तक्ष आदि धातुओंका प्रयोग, ऋग्वेदसंहिताके मन्त्रोमें, कई स्थानोपर आया है। इन धातुओंका प्रयोग ऐसे ढंगसे आया है, जिससे विदित होता है कि ऋषि लोग आवश्यकतानुसार बराबर नये २ मन्त्र बनाते थे।"

मिश्रबन्धु और वेद

मिश्रबन्धु, 'धर्म-तत्व' नामक पुस्तकमे लिखते हैं कि—'ऋग्वेद' हमारा प्राचीनतम साहित्य है। 'सामवेद' में प्रायः अष्टमांश नवीन है, और शेष ऋग्वेदसे आया है। 'यजुर्वेद' ऋक्से चौथाई होगा, और उससे हजार पाँच सौ वर्ष पीछे प्रारम्भ होकर उसके पीछे 'यजुर्वेद' के प्रायः ५०० वर्ष पीछे तक बनता भी रहा। 'अथर्ववेद' ऋक्से बहुत थोड़ा पीछे प्रारम्भ होकर उसके पीछे 'यजुर्वेद' के प्रायः समान ही समय तक चलता रहा। आकारमे यह 'ऋग्वेद' से थोड़ा ही छोटा होगा तथा 'सामवेद' उसका प्रायः आधा होगा। हमारे पास चारो वेदो के जो अनुवाद हैं, वे प्राय २८५० पृष्ठोंके हैं।

तिलक महाशय 'ऋग्वेद'का प्रारम्भकाल ४००० बी० सी० के निकटसे मानते हैं, विल्सन ३५०० बी० सी० से, हांग २५०० बी०

सी० से तथा मैक्समूलर १५०० वी० सी० से। जो प्रकार यहाँ कहा गया है, वह ऐतिहासिक माना जाता है। बहुतेरे प्राचीन प्रथानुयायी पण्डित ऐसे कथनोंसे वेदोंका अपमान समझते हैं और मानते हैं कि वेद भगवान् अनादि है। कुछ वेदर्षियोंने यहाँ तक लिखा है कि मैं बड़े परिश्रमसे ये तीन ऋचाएँ बना रहा हूँ। मेरे बाप वैद्यक करते हैं, माता पत्थर पर गेहूँ पीसती है और मैं ऋचाएँ बनाता हूँ। हम लोगोंसे पहलेके लोग उषस् का सौन्दर्य देखते थे, हम लोग आज देखते हैं और अन्य लोग आगे देखेंगे। वेदोंमें सहस्रों घटनाएँ अंकित हैं, जिनका किसी समय होना अनिवार्य है। इन तर्कोंके उत्तरमें अनादित्व माननेवालोंका कथन है कि वेदर्षि अवश्य थे, किन्तु वे रचयिता न होकर ऋचाओंके जाननेवाले मात्र थे। अथ च ईश्वरीय अनुकम्पासे उनकी पात्रताके कारण उन्हें ऋचाएँ भासित भर हुईं।

इसी प्रकारके विचार पारसी यहूदी, ईसाई, मुसलमानी आदि ग्रन्थोंके विषयमें भी कहे जाते हैं, और इसी ईश्वरीय सम्बन्धपर उनकी महत्ता एवं अकाट्यता आधारित है। हम ऐसे विचारोंको विश्वासपात्र पर अवलम्बित समझकर उनके विषयमें कोई मत प्रकाश नहीं करते, वरन् इतना ही कहते हैं कि ईश्वरकी न्यायप्रियताको न छोड़ते हुए हमे यही मानना पड़ेगा कि सब देशों और समयोंके सुकर्मियों पर उसकी समान कृपा है। हम यह भी नहीं कह सकते कि अन्य देशोंके लोग या कमसे कम उनके पैगम्बर सुकर्मी न थे। ऐसी दशामें यह नहीं कहा जासकता कि हमारा प्रत्येक वैदिक ऋषि प्रत्येक मुख्य पैगम्बरसे श्रेष्ठतर था। ऐसी दशा मे विदेशी पुनीत ग्रन्थ एक दम छोड़े नहीं जासकते, न यही कहा जा सकता है कि उनके जितने कथन वैदिक विचारोंके प्रतिकूल हैं, वे त्याज्य हैं।

हमारी इच्छा ऐसा कहनेकी अवश्य होगी, किन्तु उनकी भी इच्छा वैसा ही कहने की होगी। ईश्वर सबके लिए एक है, और किसी देश अथवा समयका उसपर अकेला अधिकार नहीं है। धर्म सबके लिए एक है। अच्छाई सबके लिए अच्छी और बुराई बुरी है। केवल बौद्ध-धर्म ऐसा था जो बुद्धिपर चलता था, बाह्य आधारोंपर नहीं। पुराने बौद्ध-धर्मको हीनयान कहते थे। फिर भी स्वय बुद्ध भगवान्ने मरते समय कह दिया—कि यदि कोई नवीन धार्मिक तत्त्व बतलावे, तो मेरे विचारोंसे उसे मिलाकर अनुकूल होनेपर मानना, तथा प्रतिकूल होनेपर त्याज्य समझना। अतएव उसमें भी ईश्वरावलम्बी पुस्तकोंका सा मामला आगया। भेद केवल इतना रहा, कि महात्मा बुद्ध ने अपने वचनोंका आधार ईश्वरपर न रखकर बुद्धिपर माना, जो अन्तमें उन्हींकी बुद्धिपर सीमित हो गया। ऐसी स्थिति मे यदि हम सभी महापुरुषोके वचनोंका आदर करना चाहें, तो प्रतिकूलता सामने उपस्थित हो जाती है। अतएव अन्य सांसारिक विषयोंकी भाँति धर्ममे भी बुद्धिका व्यवहार करना पड़ेगा, अथच आंख मूँदकर चलनेसे काम न चलेगा।

यदि इन सब विचारोको भी छोडकर कहें, कि हमारे तो वेद भगवान् हैं, और हम उन्हींको मानेंगे, तो इतिहासि हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। हम देखते हैं कि वेद भगवान्ने वैभव केवल ईश्वरमे मानकर प्रधानता ३३ या ३३३९ देवी देवताओंकी रखी, किन्तु औपनिषत्साहित्यने परावलम्बी देवताओंको छोड़कर विशुद्ध निर्गुण गुणातीत परमात्मामें मन लगाया। संसार ऐसे सम्बन्धहीन परमेश्वरसे सन्तुष्ट न रह सका, और कपिल, जैमिनि, बुद्ध आदि महात्माओं द्वारा इन विशुद्ध विचारोके विद्रोह होकर संसारमें अनीश्वरवाद चलने

लगा। तब बेचारे ऋषियोंको अपना विशुद्ध औपनिषत्—निर्गुणवाद छोड़कर महात्मा बादरायण व्यास द्वारा "गीता" के सगुणवादपर आना पड़ा, जिससे संसारमें फिरसे ईश्वरवाद का मान हुआ। समयपर गुर्जर, सीदियन, शक, तूरानियन, हूण आदिके प्रचुर संख्यामें आगमनसे सनातनधर्मियों बौद्धो, जैनों तथा इन सबोंके नवीन विचारोंमें कई शताब्दियों तक भारी संघट्ट हुआ, जिसमे धार्मिक युद्ध तो न हुए, किन्तु वादोंकी परम प्रचुरता रही। फल यह हुआ कि हम लोगोंने सबके राजीनामेका एक नवीन धर्म स्थापित पाया, एवं इन सब जातियों तथा वादियोंको एक सुगठित जाति तथा विचार गृहीत समाजमे परिणत देखा। यह दशा शंकराचार्यके समय आठवीं शताब्दीमे थी और दक्षिणमे यह सुधार बारहवीं शताब्दीमे रामानुजाचार्यके समय तक स्थापित हुआ। यह पौराणिक मत, न केवल वैदिक विचारों से दूर था, वरन् जितनी स्थूलता 'गीता' ने सर्वमान्यताके विचारसे ग्रहण की थी, उससे भी यह बहुत आगे बढ़कर बहुत स्थूल हो गया, यहाँ तक कि स्वामी शंकराचार्यको इस भद्देपनके परिशोधनकी आवश्यकता समझ पड़ी।

अतएव आज कल हमारे सामने जो धार्मिक प्रश्न उपस्थित है, वह वैदिक मतके मानने या न माननेका नहीं है, वरन् इस मोटिया मतके मानने या न माननेका है। प्रश्न यह है, कि हम लोग अपने पौराणिक समय वाले राजीनामेके सामने भगवान् व्यास तथा स्वामी शंकराचार्य तकको माननेको तैयार हैं या नहीं। इतना अवश्य है, कि यह पौराणिक समयकी बड़ी ही भारी महत्ता थी, कि उसने इतनी अनमिल जातियोंको सुगठित करके एक भारी साम्यतापूर्ण ऐसी महती जाति उत्पन्न की

जिसने आठसौ वर्षोंसे अनेकानेक अत्याचार विचार तथा आविष्कारोंके धक्कोंको सफलतापूर्वक सहकर अपना रूप प्रायः पूराका पूरा बीसवीं शताब्दी-पर्यन्त स्थापित रखा है। जिन प्रयत्नोंने हमको इतनी भारी सहायता दी, उन्हें तुच्छ, हेय या थोड़ी महिमाका मानना अनुचित है। हम उनको बहुत ही ऊँचा समझते हैं। फिर भी मनुष्यका सहज स्वभाव है कि वह उन्नतिशील है। हम देखते हैं-कि पौराणिक धर्मको समाज-संगठनके राजनैतिक एव सामाजिक विचारसे अपने धर्मका रूप समय-समयपर बदलना पड़ता है। यह बात अब भी बड़ी तेजी से चल रही है। इसीलिए इन प्रश्नोंपर विचार करना परमावश्यक है। हमारे धर्मशास्त्रका वचन है, कि बिना वैदिक साहित्य का नित्यप्रति अध्ययन किये हम ऋषिऋणसे मुक्त नही हो सकते। यह विचार हमे बहुत सारगर्भित जान पड़ता है। बिना ऐसा किये अपनी सभ्यता उन्नत न होकर समयके साथ गिरती ही जावेगी। अतएव वेद भगवान्को ऋषियोंने अपनी बुद्धिसे बनाया या ईश्वरीय प्रेरणासे देखा, इस प्रश्नमे कोई सार नहीं है। मान लिया कि उनमे ईश्वरका विशेषांश है। वेदज्ञ त्रिकालज्ञ सही। प्रश्न केवल इतना है कि वेदोंकी शिक्षाको उपनिषदों, पुराणों, तर्कवाद, भक्तिवाद आदिसे प्रभावित करते-करते आज हम कितना मान रहे हैं, और हमारे वर्तमान धार्मिक आचार-विचार कहाँ तक वेदानुकूल हैं।

डा० रामजी उपाध्याय एम० ए० डी० फिल और वेद—

ऋग्वेद

श्री डा० रामजी उपाध्यायजी 'भारतकी प्राचीन संस्कृति' में कहते है कि—संहिताओके चार विभाग हैं—ऋग्वेद, अथर्ववेद,

सामवेद और यजुर्वेद। इनमेंसे ऋग्वेद सबसे प्राचीन है। ऋक्‌का अर्थ है स्तुतियाँ। ऋग्वेदमें प्रायः देवताओंकी स्तुतियाँ भरी पड़ी हैं। ये स्तुतियाँ उस समयके कवियोंकी रचनायें हैं। कवियोंको असाधारण या अलौकिक प्रेरणाके बलपर ही अपने वर्ण्य विषयके काव्यमय स्वरूपका आभास मिलता है। यह प्रेरणा प्राचीन कालमें ईश्वर-प्रदत्त मानी जाती थी। इसीलिए वेदोंको ईश्वरका बनाया हुआ या अपौरुषेय भी कहते हैं। कवियोंको मंत्रका दर्शक कहा गया है, मानो उनको रचना करते समय वर्ण्य विषयका साक्षात्कार होता हो। कई कुलके कवियोंने ऋग्वेदके मंत्रोंको रचा है, जिनके आदि कवि गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भरद्वाज, वसिष्ठ कण्व, अङ्गिरा इत्यादि हैं। स्त्रियोंने भी कई मंत्रोंकी रचना की है।

ऋग्वेदकी स्तुतियोंमें कवियोंने जो कुछ अपने चारों ओर देखा उसके प्रति अपने विचार प्रगट किये हैं। प्रकृतिकी प्रायः सभी वस्तुएँ उनकी काव्यमयी प्रतिभाका विषय हो सकी हैं। प्रकृतिकी शक्ति प्रकट करने वाली वस्तुओंमें सूर्य, चन्द्र, अग्नि, आकाश, मरुत, वायु, जल, उषा, रात्रि, नदी, वन और पृथ्वीकी स्तुति मन्त्रोंके द्वाराकी गई है। कवियोंने इनके व्यावहारिक अथवा साधारण रूपका ही वर्णन नहीं किया, बल्कि अपनी प्रतिभाके द्वारा उनके विभूतिमय रूपकी प्रतिष्ठाकी और व्यंजनाके द्वारा उनको मानव-जीवनके सन्निकट पाकर शनैः-शनैः उनका मानवीकरण किया। इस प्रकार इनको देवी-देवताओंका पद मिला। ऐसी परिस्थितिमें प्रारम्भिक मन्त्रोंको छोड़कर शेष भागोंमें इनके प्राकृतिक रूपकी छाया-मात्र मिलती है और इनमें मानवोचित व्यक्तित्व आरोपित किया गया है। इन्द्र, वरुण, मित्र, अदिति, विष्णु, पूषा, सरस्वती, वाक्, अश्विद्वय, रुद्र और पर्जन्य आदि

देवताओके व्यवहारोकी परम्परा बहुत कुछ मनुष्यो-जैसी दिखाई पड़ती है। ऋग्वेदके अन्तिम भागमे विश्वकर्मा (विश्वके रचयिता) प्रजापति-(सृष्टिके स्वामी) श्रद्धा (विश्वास) मन्यु (क्रोध) इत्यादि दिव्यरूपमे मानवताकी स्पष्ट झलक मिलती है। ऋग्वेदमे ऋभु, अप्सरा, गन्धर्व आदि देवताओकी अन्य कोटियोकी कल्पनाएँ भी मिलती हैं। देवताओके अतिरिक्त अन्य कोटियाँ असुर, राक्षस, दास इत्यादि हैं, जिनसे प्रायः देवताओंका विरोध दिखाया गया है। ऋग्वेदमें पितरोंकी भी प्रतिष्ठा की गई है। पितर, लोगोके मरे हुए पूर्वज हैं, जो मरनेके पश्चात् वैदिक विश्वासके अनुसार दिव्यकोटिमे सम्मिलित हो जाते हैं और इस प्रकार देवताओंकी भाँति पूज्य और स्तुत्य बन जाते हैं। यह पितरोंके लोकका राजा माना है। पितरोके लोककी स्थिति स्वर्गमे बताई गई है, जहाँ मर्त्यलोकसे जाकर लोग इकट्ठे होते रहते हैं। ऋग्वेदमे लौकिक विषयोपर भी मंत्र मिलते है। इनमेसे एक मंत्र विवाहके विषयमे है। पुरूरवा और उर्वशीका संवाद, मर्त्यलोकके राजा पुरूरवा और उर्वशी अप्सराकी प्रेम कहानी है। कुछ मत्र शिक्षाप्रद भी है, जिनमेंसे एकमे जुआरीकी दुर्गतिका चित्रण किया है। ऋग्वेदके छः मत्रोंमे विश्वकी उत्पत्ति और विकासपर प्रकाश डाला गया है। एक मन्त्रमे तो मण्डूकोंकी पूरी जीवन-गाथाका विवरण मिलता है। दान-स्तुतियोमे दानकी प्रशंसा मिलती है। ऋग्वेदके कई सूक्तोमे मनोरञ्जक पहेलियाँ भी मिलती हैं।

मत्रोमे देवताओंकी प्रशंसा करते हुए उनकी रूप-रेखा, सौन्दर्य, कार्य-व्यवहार, शक्ति, समृद्धि और वीरताके कार्योंका उल्लेख मिलता है। वैदिक कालमे लोगोका विश्वास था कि यज्ञमे मन्त्रोंके द्वारा स्तुति करनेसे देवता प्रसन्न होते हैं और

समृद्धि प्रदान करते हैं, अथवा आवश्यकता पड़नेपर सहायता देते हैं। मन्त्रोंके अन्तमें कभी-कभी कवियोंने धन, यश, विजय अथवा वीरपुत्र पानेके लिए देवताओंसे प्रार्थनाएँ की हैं। उन्होंने अग्निके विषयमें कल्पनाएँ की हैं कि "अग्नि मनुष्योंका मित्र है वह मनुष्यों और देवताओंकी बीच दूतका काम करता है। अग्नि गृहस्थोंका देवता है, उनकी स्त्री और पुत्रोंकी रक्षा करता है। वह प्रत्येक घरका प्रथम अतिथि है। देवता होकर भी वह मर्त्योंके बीच रहता है। घरकी सारी उन्नति अग्निके ही हाथमें है। अग्नि कुमारियोंका पति है और विवाहके अवसरपर वर, कुमारियोंको अग्निसे ही पाता है। अग्नि देवताओंके पास हवि पहुँचाता है और उनको यज्ञके समीप लाता भी है इसलिए वह पुरोहित, होता, यज्ञका देवता और ऋत्विक् है। अग्निकी लपट उसका केश है, उसके दाँत सुनहरे और चमकीले हैं। अग्निकी लपट उसकी जीभ है, अग्निकी चार या सहस्र आँखें हैं।" अग्निको बैलसे उपमा दी गई है। उठती हुई लपटें सींगें मानी गई हैं। अग्निकी सहस्र सींगें हैं, वह क्रोधवश अपनी सींगोंको हिलाता है या तीक्ष्ण करता है। अग्नि अपनी तीक्ष्ण दाढ़ोंसे वनोंको चबाता है, वह वनोंको कुचल डालता है। जब वायु अग्निको उत्तेजित करता है, तो वह वनमें फैल जाता है और पृथ्वीका केश कतर देता है। कवि अग्निसे प्रार्थना करता है, कि मेरे ऊपर आपका आशीर्वाद उसी प्रकार रहे, जैसे पिताका पुत्रके ऊपर होता है। अग्निके वर्णनके आधारपर ऋग्वेदकी वर्णन-शैलीकी कल्पना की जासकती है।

जैसा कि हमने अग्निके उपर्युक्त वर्णनमें देखा है, ऋग्वेदमें ऊँची कल्पना, व्यंजना, भावुकता और अलंकारमयी भाषाका प्रयोग हुआ है। ऋग्वेदके मंत्रोंमें प्रायः उच्च कोटिका काव्य

मिलता है। ऋग्वेदकी शब्द-योजना प्राकृतिक और सरल है। काव्यकी दृष्टिसे उषा-विषयक मंत्र सर्वोत्कृष्ट है। इन्द्र और वृत्रके युद्धका विशद चित्रण कविकी प्रतिभापूर्ण वर्णन-शैलीका द्योतक है, सारा ऋग्वेद छन्दोंमे रचा गया है। इसमे १५ प्रकारके छन्दोंका प्रयोग हुआ है। त्रिष्टुप्, गायत्री और जगती छन्दोंमें ऋग्वेदका लगभग दो तिहाई भाग रचा गया है। इन्हीं छन्दोंके आधारपर आगे चलकर संस्कृत साहित्यके छन्दोंका विकास हुआ है।

ऋग्वेदमें १०२८ सूक्त हैं, जिनमें सब मिलाकर १०,६०० श्लोक (मंत्र) हैं। सूक्तोंमे एकसे लेकर अट्ठावन तक श्लोक हैं। सामान्यतः प्रत्येक सूक्तमें दश श्लोक है। सारा ऋग्वेद दश मंडलोंमें विभक्त है और प्रत्येक मंडलमें कई सूक्त हैं। इसका प्रत्येक सूक्त अपनेमें पूर्ण है। एक सूक्त प्रायः एक ही देवताके विषयमें रचा गया है।

अथर्ववेद

अथर्ववेदका अर्थ अभिचारका ज्ञान है। मन्त्रोंके द्वारा कार्यसिद्धि होती है। भारतीय दृष्टिकोणसे शब्दोंमें अनोखी शक्ति है। जिस प्रकार किसी कार्यको करनेमें भौतिक साधन उपयोगी होते हैं उसी प्रकार केवल शब्द-मात्र भी कार्योंकी सिद्धिके लिए साधन हो सकते हैं। प्रायः सूक्तोंमें स्तुतिकर्ताकी उत्कट कर्त्तव्य-परायणता और मनोबलका परिचय मिलता है। अथर्ववेदका प्रधान भाग रोगोंके निदानके विषयमें है। इनमें अभिचारकी प्रक्रियाओं द्वारा रोगोंकी चिकित्सा-पद्धतिकी कल्पना की गई है। उस समय लोगोंका विश्वास था, कि राक्षस और पिशाच सतानेके लिए रोगोंकी सृष्टि करते हैं। अथर्ववेदमें रोगो और

तत्सम्बन्धी राक्षसोंको सम्बोधित करके जो मंत्र कहे गये हैं, उनको भैषज्य कहते हैं। प्रायः मंत्रोमें औषधि और जलकी प्रशंसा की गई है, जो उस समय उपचारके लिए ग्रहण किये जाते थे। कुछ मंत्रोंमे राक्षसोको डराने वाली अग्निकी प्रशसा मिलती है। मंत्रोमें रोगोंके लक्षणोंका पूरा विवरण भी दिया गया है। ज्वरके राक्षस तक्माके प्रति अनेकों अभिचार मंत्र कहे गये हैं। उसी समयसे ही ज्वर रोगराज माना गया है। एक मत्रमे ज्वरके प्रति कहा गया है–"तुम सभी लोगोंको पीला बना देते हो, अग्निकी भाँति जलाते हुए तापसे तुम उन्हें सुखा देते हो। ज्वर! अब तुम मंद पड़ो, तुम निष्फल हो जाओ। यहाँसे तुम अधोलोकमें जाओ, किसी प्रकार अदृश्य हो। ज्वर! तुम्हारे बाण तीक्ष्ण हैं। हम लोगोंपर उनसे प्रहार न करो। ज्वर! तुम अपने भाई कफ, अपनी बहिन खांसी और अपने भतीजे क्षयको साथ लेकर अन्यत्र भाग जाओ।" राक्षसों और पिशाचोके अतिरिक्त गंधर्वों और अप्सराओंको भी भय और दुःखका कारण मानते थे। उनको भगानेके लिए लोग अजशृङ्गी पौधेका प्रयोग तथा मंत्र-पाठ करते थे।

भैषज्य मंत्रोंकी भाँति आयुष्य सूक्तमें दीर्घजीवनकी कामना की गई है। इन मत्रोंकी पाठ जातकर्म, चूडाकर्म, उपनयन इत्यादि घरेलू उत्सवोंके अवसरपर होता था। इन सूक्तोंमे सभी रोगोंसे मुक्त होकर सौ वर्ष जीनेकी प्रार्थना की गई है। पौष्टिक सूक्तोंका पाठ किसानों, पशुपालों और व्यापारियोंकी मंगल कामनाके लिए है। विभिन्न आवश्यकताओं और अवसरोंके लिए अलग-अलग मंत्र निर्धारित किए गये हैं। वर्षाके लिए सूक्त इसी भागमे मिलते हैं। अपराधों और पापोंसे मुक्त होनेके लिए प्रायश्चित्तके अवसरपर भी सूक्तोंका पाठ होता था।

अथर्ववेदमे मंत्रोंके द्वारा अभीष्ट व्यक्तिपर प्रभाव डालनेके विधान मिलते हैं। इनके द्वारा कौटुम्बिक सौहार्द्र और शान्तिके अतिरिक्त सभासमितियों और न्यायालयोंपर प्रभाव डालकर अपने पक्षकी विजयके उपाय किये जाते थे। इन मन्त्रोंसे पति और पत्नीकी एकता भी सम्भव होती थी। कुछ मन्त्रोंके द्वारा अभीष्ट वर या वधूकी प्राप्तिके उपाय किये जाते थे। विभिन्न उपयोंसे वशीकरणकी विधियोंके उल्लेख इस भागमे प्रायः मिलते है।

अभिचार-सूक्तोंके बहुतसे ऐसे मन्त्र भी हैं जिनकी आवश्यकता उस समयके राजाओको पडती थी। शत्रुओंके दमन और मंगलके लिए राजा, पुरोहितोसे अभिचारकी विधियोंके साथ मन्त्र-पाठ कराते थे। इस विधानका नाम राजकर्म था कुछ मन्त्र राजाओंके अभिषेकके अवसरपर पढ़े जाते थे और उनसे राजाओंके मगल, यश, प्रभुत्व और विजयकी कामना प्रकट की जाती थी। इसभागके कुछ मन्त्र तत्कालीन युद्ध-गान हैं, जिनसे योद्धाओको युद्ध-भूमिमे जाने और विजय पानेके लिए उत्साहित किया गया है।

अथर्ववेदके अन्तिम भागमे यज्ञ और उनकी विधियोके विपयमे कुछ मन्त्र पाये जाते है। इस वेदके कुन्ताप-सूक्तोमे यज्ञकी विधियोक साथ ही राजाओकी उदारताका वर्णन है। कुछ सूक्तोमे रहस्यवाद और सृष्टिसम्बन्धी बातें मिलती हैं। इनमें कहीं-कहीं दार्शनिकताकी पुट भी है। कई सूक्तोमे स्तुति करने वालोके मानसिक अभ्युत्थानकी अभिलाषाएँ मिलती हैं, जैसे—

> वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसदृशः।
> मधोरस्मि मधुतरो मदुघान्मधुमत्तरः॥

(मैं वाणीसे मीठा बोलता हूँ, जिससे मैं मधुरताकी मूर्ति बनूँगा। मैं मधुसे अधिक मीठा हूँ, मधुर पदार्थसे अधिक मधुर हूँ॥)

अथर्ववेदमें कहीं-कहीं काव्यकी झलक मिलती है। यह वेद भाषा, छन्द और सरसताकी दृष्टिसे ऋग्वेदकी समता नहीं कर सकता। इन दोनों वेदोंसे यह तो निःसन्देह सिद्ध होजाता है कि ऋग्वेदिक कालसे ही भारतवासियोंके बीच सरसहृदय, भावुकता, प्रतिभा और अलंकारमयी भाषाकी प्रतिष्ठा रही है, जो उच्च कोटिके काव्यके लिए आवश्यक है।

अथर्ववेदमें कुल ७३१ सूक्त हैं, जिनमे सब मिलाकर लगभग ६,००० श्लोक हैं। यह वेद बीस काण्डोंमें विभक्त है। इसका बीसवाँ काण्ड लगभग समूचा ही ऋग्वेदसे लिया गया है। इस वेदका अधिक भाग पद्यमें रचा गया है। पन्द्रहवाँ काण्ड पूरा तथा सोलहवेंका अधिकांश गद्यमें है। शेष भागमें छिट-पुट गद्यके अंश मिलते हैं।

सामवेद

सामका अर्थ राग या ताल है। यज्ञोंके अवसरपर सामवेदका संगीतमय पाठ होता था। वेदोंकी ऋचाओंसे सामकी उत्पत्ति मानी गई है। सामवेद संहिता आर्चिक और उत्तरार्चिक दो भागों में विभक्त है। इन दोनों भागोंमे कुल मिलाकर १८१० श्लोक हैं, जिनमेंसे २६१ श्लोक दोनो भागोंमें समान हैं। इस प्रकार साम-वेदमें कुल १५४९ श्लोक शेष रह जाते हैं। इनमें ७५ को छोड़कर शेष सभी ऋग्वेदके आठवें और नवें मण्डलसे लिए गये हैं। वैदिक-कालमे उद्गातृ-पुरोहित होनेके लिए आर्चिक भागसे रागोंका अध्ययन किया जाता था और उत्तरार्चिक भागसे यज्ञोंके अवसरपर गाये हुए स्तोत्रोंको कण्ठाग्र किया जाता था। आर्चिक भागमे ५८५ ऋचाएँ हैं, जो लगभग इससे दूने विभिन्न रागोंमे

गाई जा सकती हैं। प्रत्येक गीतके प्रथम श्लोक द्वारा तत्सम्बन्धी रागकी ओर संकेत कराया गया है। उत्तरार्चिक भागमें ४०० गीत हैं, और प्रत्येक गीतमें प्रायः तीन श्लोक हैं। इन्हीं श्लोकोंमेंसे कुछ स्तोत्र यज्ञके अवसरपर गाये जाते थे।

सामवेदमें सात स्वरोंका संकेत, प्रायः एकसे लेकर सात अङ्कों के द्वारा किया गया है। गाते समय पुरोहित, हाथ और अंगुलियों की विभिन्न गतियोंसे विभिन्न स्वरोंका बोध कराता है। गाँव और वनमें गानेकेलिए आर्चिकमें विभिन्न राग नियत किये गए हैं, जिनको क्रमशः ग्रामगेयगान और अरण्यगान कहते हैं।

यजुर्वेद

यजुर्वेद संहितामें अध्वर्यु पुरोहितकी प्रार्थनाएँ मिलती हैं, जो यज्ञके अवसर पर गाई जाती थीं। अब तक यजुर्वेदकी पाँच संहिताएँ मिलती हैं—काठक, कपिष्ठल-कठ, मैत्रायणी, तैत्तरीय और वाजसनेयि संहिता। ये संहिताएँ विभिन्न जन समुदायोंकी हैं जिनके यज्ञ संबंधी विधियोंके मतभेदके कारण पतंजलिके समय तक १०१ विभिन्न शाखाएँ बन चुकी थीं। ऊपर लिखी हुई पाँच संहिताओंमेंसे प्रथम चार आपसमें सम्बद्ध हैं, और इनको कृष्णयजुर्वेद कहते हैं। वाजसनेयि-संहिताका नाम, शुक्ल यजुर्वेद है। कृष्ण यजुर्वेदमें मन्त्रोंके साथ-साथ तत्सम्बन्धी याज्ञिक विधियों और उन की व्याख्याओंका भी उल्लेख है। शुक्ल यजुर्वेदमें केवल मंत्रोंके पाठ और याज्ञिक सूत्रोंके उल्लेखमात्र हैं।

वाजसनेयि-संहिताकी विषय-सूचीमें यजुर्वेदके वर्ण्य विषयकी कल्पना की जासकती है। इसमें कुल ४० अध्याय हैं, जिसके प्रथम २५ अध्यायोंमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण यज्ञोंकी प्रार्थनाएँ हैं।

प्रथम दो अध्यायोंमें दशपूर्णमास यज्ञकी प्रार्थनाएँ हैं । ये यज्ञ पूर्णिमा और शुक्लपक्षकी द्वितीया के दिन सम्पन्न होते थे। तीसरे अध्यायमें दैनिक अग्निहोत्र, और चातुर्मास्य (ऋतुओंके यज्ञ) सम्बन्धी प्रार्थनाएँ हैं । सोम यज्ञकी प्रार्थनाएँ चौथेसे आठवें अध्याय तक मिलती हैं । नवें और दसवें अध्यायोंमें वाजपेय और राजसूय यज्ञोंकी प्रार्थनाएँ हैं। ग्यारहवेंसे अठारहवें अध्याय तक अग्नि-चयन (अग्निवेदिकाकी रचना) सम्बन्धी प्रार्थनाओं और याज्ञिक सूत्रोंके विवरण हैं । अग्नि वेदिकाकी यह क्रिया पूरे वर्षभर चलती थी । वेदिका १०,८०० ईंटोंकी बनती थी और इसका रूप उड़ते हुए पक्षीके समान होता था । उन्नीसवेंसे लेकर इक्कीसवें अध्याय तक सौत्रामणि यज्ञकी प्रार्थनाएँ हैं। यह यज्ञ अश्विद्वय संबंधी और इन्द्रके उपलक्ष्यमें होता था । बाईसवेंसे पच्चीसवें अध्याय तक अश्वमेधकी प्रार्थनाएँ हैं । इस यज्ञको कोई दिग्विजयी या शक्तिशाली राजा कर सकता था । इसके द्वारा किसी राज्यमें विद्वान् ब्राह्मण, वीर क्षत्रिय, दूध देनेवाली गाय, हल जोतने वाले बैल, वेगवान् घोड़े, वीर और विजयी पुत्र अभीष्ट वर्षा और मनो-वाञ्छित आनन्द तथा समृद्धिकी कामना की जाती थी।

शेष १५ अध्याय पहले २५ अध्यायोंके पूरकमात्र हैं, जो पीछे से जोड़ दिये गए थे। इन अध्यायोंमेंसे कुछ प्रार्थनाओंके परिशिष्ट उपनिषद् जैसे प्रतीत होते हैं। बत्तीसवेंसे चौंतीसवें अध्याय तककी प्रार्थनाएँ सर्वमेधके लिए हैं। इस यज्ञमें यजमान सर्वस्व पुरोहित को दे देता था। पैंतीसवें अध्यायमें थोड़ेसे अन्त्यक्रिया सम्बन्धी पद्य हैं, जो प्रायः ऋग्वेदसे लिए गये हैं । सत्तीसवेंसे उनतालीसवें अध्याय तक प्रवर्ग्य विधिकी प्रार्थनाएँ हैं । प्रवर्ग्यमें यज्ञकी अग्नि पर एक कड़ाह तपा कर उसमें दूध उबालते हैं, और अश्विनोंको समर्पित करते हैं। वाजसनेयि-संहिताका अन्तिम अध्याय, ईश-

उपनिषद् है जो उपनिषदों की कोटिमे सर्वप्रथम है।

यजुर्वेदकी रचना गद्य और पद्य दोनोंमे हुई है। इस वेदका महत्व भारतीय धर्मोंके विकासके दृष्टिकोणसे ही है। काव्यकी दृष्टि से यजुर्वेद प्रायः नीरस है। इसमें कोई सन्देह नहीं, कि यजुर्वेदसे तत्कालीन धार्मिक विश्वास और सामाजिक जीवनपर बहुत प्रकाश पड़ता है।

श्री रामगोविन्दजी त्रिवेदी, ऋग्वेद भाष्यके मण्डल २ के प्रारम्भमें लिखते हैं कि—"ऋग्वेदके प्रथम और दशम मण्डलो के रचयिता अनेक ऋषि हैं, परन्तु अवशिष्ट मण्डलों के एक-एक ऋषि और उनके वंशीय हैं। जिन मण्डलों के जो ऋषि रचयिता हैं, उनके नाम ये हैं—द्वितीयके गृत्समद, तृतीयके विश्वामित्र, चतुर्थके वामदेव, पञ्चमके अत्रि, षष्ठके भारद्वाज, सप्तमके वसिष्ठ, अष्टमके कण्व, नवमके अंगिरा ऋषि या इन ऋषियों के वंशोद्भव रचयिता हैं।

कहा जाता है, अंगिरा ऋषिके वंशीय शुनहोत्र ऋषिके पुत्रका नाम गृत्समद था। एक बार असुर लोग गृत्समदको पकड़ कर ले गये। पीछे इन्द्रने गृत्समदका उद्धार किया और भृगुवंशीय शुनक के पुत्र शौनक कहकर अभिहित किया। शौनककी अनुक्रमणिकासे भी यही विदित होता है। इससे मालूम पड़ता है, कि अंगिराके वंशको छोड़कर गृत्समदने भृगुवंशीयता प्राप्त की थी। महाभारत (अनुशासन पर्व) से विदित होता है, कि गृत्समद हैहय क्षत्रियोंका राजा और वीतिहव्यके पुत्र थे। एकबार काशीराज प्रतर्दनके भयसे वीतिहव्य भृगुके आश्रममे जा छिपे। भृगुने उन्हें शरणमें रख लिया। वीतिहव्यको खोजते हुए प्रतर्दन भी भृगुके आश्रममें जा धमके। पूछनेपर भृगुने कहा कि, मेरे आश्रममें क्षत्रिय नहीं रहता। ऋषिवाक्य असत्य नहीं होता, इसलिए इसी दिनसे वीतिहव्य

ब्राह्मण होगये और उन्हींके पुत्र गृत्समद ब्रह्मर्षि हुए। किसी किसी के मतसे नैमिषारण्यमें जो द्वादश वर्ष-व्यापी यज्ञ हुआ था, उसमें यही गृत्समद (शौनक) प्रधान थे।

ये यज्ञके कई ऋषियोंके नाम हैं। बड़े यज्ञमें १६ ऋत्विग् रहते थे। प्रथम मण्डलके ३७ सूक्तमें इनका विवरण है।

"संसारके अधिकांश विद्वान् हिन्दू, ग्रीक, रोमन परशियन आदि जातियोंको आर्य जातिकी शाखाएँ मानते हैं और इन सब मे सदासे अग्निकी पूजा प्रचलित है। ग्रीकोंकी रायसे जो देवता, मनुष्यकी भलाईके लिए, स्वर्गसे, पहिले पहल, अग्नि चुरा लाया, उसका नाम प्रोमेथियस या प्रमन्थ है। उस देवताके ग्रीक (यूनानी) अनन्य उपासक हैं। रोमनोंमें वलकन या उल्काके नामसे अग्नि की पूजा प्रचलित है। लाटिन भाषाभाषी अग्निको इग्निस और स्लाव लोग अग्नि कहते हैं। ईरानी या परशियन लोग "अत्तर" नामसे अग्निकी उपासना करते हैं। हिन्दुओंके तो प्रसिद्ध देवता अग्नि हैं ही। निरुक्त (७-५) का मत है कि, "पृथ्वीपर अग्नि, अन्तरीक्षमें वायु या इन्द्र और आकाशमें सूर्य देवता हैं।" इनमें प्रधान देवता अग्नि है—ऋग्वेदको देखनेसे यह बात स्पष्ट विदित होती है।

ऋग्वेदमें अग्नि सम्बन्धी जितनी ऋचाएँ हैं, उतनी इन्द्रको छोड़कर किसी भी देवताके सम्बन्धकी नहीं। ऋग्वेदके अनेक स्थानोंमें अग्निको पुरोहित कहा गया है। वह पुरोहित या अग्रणी इसलिए हैं कि, उनके विना यज्ञ ही नहीं हो सकता। अग्नि होता या देवोंको बुलाने वाला इसलिए है कि उनका जलना ही देवोंके आगमनका कारण है। होता, पोता, अध्वर्यु आदि कई प्रकारके कर्मानुसार पुरोहित या ऋत्विग् होते हैं। उनमें होता या देवाह्वान-

कारी ऋत्विग्का ही यहाँ उल्लेख है । ऋत्विग् शब्दका अर्थ है निर्दिष्ट समयपर यज्ञ करानेवाला । अग्नि रत्नधारी इसलिये हैं कि, यज्ञफलरूप रत्नो (धनो) के धारण या पोषण करनेवाले हैं ।

ऋग्वेद जैसे प्राचीनतम ग्रन्थमे सर्वप्रथम अग्नि-पूजाका मंत्र देखकर अनेक पश्चिमी विद्वान् आर्योको जड़ोपासक, असभ्य और वर्वर कहते हैं । वे कहते हैं कि, इस मन्त्रमे तेजोमय ईश्वरकी अभ्यर्थना है । ईश्वर ही पुरोहित (ससार-हितैषी) दीप्तिमान् (तेजोरूप या दाता) ऋत्विग् होता (देवाह्वानकारी) और रत्नधारी (निखिल सम्पत्तिशाली) हैं ।

हमारी राय है कि, कोई भी जड़ पदार्थ स्वयं कार्य करनेमें असमर्थ है । हाँ, यदि उसका कोई चैतन्य अधिष्ठाता हो, तो वह कार्य करनेमें समर्थ हो सकता है । इसी विचारसे आर्य लोग जड़ अग्नि, वायु आदिके सिवाय उनके अधिष्ठातृ-रूपसे एक एक चेतन अग्नि, वायु आदि चैतन्य देव भी मानते थे । ऐसे असख्य देव हैं, और चूंकि परमात्मा सबके अधिष्ठाता हैं, इसलिए इन सब देवोको ईश्वर अंश माना जाता है । फलतः शासक-रूपमे कर्मानुसार देवो के अनेक नाम अवश्य है, परन्तु सबके चेतन-रूप होनेसे सब देव एक हैं और वही परमात्मा है ।

यहाँसे प्रारम्भ कर नौ ऋको, ऋचाओं या मन्त्रोंमें अग्निकी स्तुति-प्रशसा है, इसलिए इनके देवता अग्नि है और इन मन्त्रोंका एक नाम आग्नेय है ।

अंगिरा या अगारा अग्नि और ऋषि—दोनोका नाम है । यास्कने निरुक्तमे अंगारेको ही अंगिरा लिखा है । ऐतरेय ब्राह्मणमे भी यही बात है । उसमे यह भी लिखा है कि, अंगिरा वंशज ऋषिगण पहिले अंगारे ही थे । विल्सन और म्योरकी राय है कि अगिरा ऋषि लोग प्रख्यात वंशके थे और बहुत करके उन्होने ही भारतवर्ष

में अग्नि-पूजाका प्रथम प्रचार किया। यह निर्विवाद है कि, अंगिरो वंशके ऋषि लोग वेदमन्त्रोंके स्मारक थे।

श्री बलदेव उपाध्याय और वेद

आचार्य श्री बलदेव उपाध्यायजी अपनी 'आर्यसंस्कृतिके मूलाधार' नामक पुस्तकमें लिखते हैं कि—"चारों संहिताओंमे ऋग्वेद संहिता सबसे प्राचीन है। अन्य संहिताओंमे ऋग्वेदके अनेक मंत्र उपलब्ध होते हैं। सामवेद तो राका पूरा ऋग्वेदके मन्त्रोंसे ही बना है। ऋग्वेद एक ग्रन्थ न होकर एक विशालकाय ग्रन्थ-समूह है। भाषा तथा अर्थकी दृष्टिसे वैदिक साहित्यमें भी यह अनुपम ग्रंथ माना जाता है। इसके दो प्रकारके भाग उपलब्ध होते हैं—(१) अष्टक, अध्याय और सूक्त (२) मण्डल अनुवाक और सूक्त। पूरा ऋग्वेद आठ भागोंमें विभक्त है, जिन्हें 'अष्टक' कहते हैं। प्रत्येक अष्टकमें आठ अध्याय हैं। इस प्रकार पूरे ऋग्वेदमें आठ अष्टक अथवा चौंसट अध्याय हैं। यह विभाग पाठ-क्रमके सुभीतेके लिये किया गया प्रतीत होता है। दूसरा विभाग इससे कहीं अधिक ऐतिहासिक तथा महत्वशाली है। इस विभागमें समग्र ऋग्वेद दस खण्डोंमें विभक्त है जिन्हें 'मण्डल' कहते हैं। मण्डलमें संगृहीत मन्त्रसमूहको 'सूक्त' कहते हैं। इन सूक्तोंके खण्डोंको ऋचाएँ कहते हैं। ऋग्वेदमें सूक्तोंकी संख्या सब मिलकर १०२८ है तथा मन्त्रोंकी संख्या ११ हजारके लगभग है।

वेदोंको हम लोग ऋषियोंके द्वारा 'दृष्ट' मानते हैं। ऋषि शब्दका अर्थ ही देखनेवाला है। यास्कने इसीलिये ऋषियोंको मन्त्र का द्रष्टा माना है। ऋग्वेदके ऋषिगण भिन्न-भिन्न कुटुम्बोंसे सम्बद्ध हैं। एक कुलके ऋषियोंके द्वारा दृष्ट मन्त्रोंका संग्रह एक मण्डलमे

किया गया है। प्रथम मण्डल और दशम मण्डलमें तो नाना कुटुम्बोंके ऋषियोंके द्वारा दृष्ट मंत्रोंका संकलन है। इन ऋषियोंके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—

(१) गृत्समद (२) विश्वामित्र (३) वामदेव (४) अत्रि (५) भारद्वाज (६) वसिष्ठ जो क्रमशः द्वितीयसे लेकर सप्तम मण्डल तक से संबद्ध हैं। अष्टम मण्डलमें कण्व वंश और अंगिरा गोत्रके ऋषियोंके मंत्र हैं। नवम मण्डलमें सोम-विषयक मंत्रोंका ही सकलन है। सोमका नाम है पवमान अर्थात् पवित्र करने वाला। सोम-विषयक होनेसे ही इस मण्डलका नाम 'पवमान मण्डल' पड़ा है। दशम मण्डलके मन्त्र नाना ऋषिकुलोंसे सम्बद्ध हैं। इसमें केवल देवताओंकी स्तुति नहीं है, अपितु अन्य विषयोंका भी सन्निवेश है। दूसरेसे लेकर सातवें मण्डल तक ऋग्वेद सबसे प्राचीन माना जाता है। दशम मण्डल पूरे ऋग्वेदमें अर्वाचीन समझा जाता है।

वैदिक ऋषि व देवता

आज यदि वेदका अध्ययन निष्पक्ष होकर करने लगें, तो उस को उसी समय पता लगेगा कि, जिस यज्ञकर्ममें इन मन्त्रोंका उपयोग होता है उस यज्ञकर्मका मन्त्रोंके अर्थके साथ कोई संबंध ही नहीं है। अर्थात् मन्त्र यज्ञकर्ममें अर्थकी अनुकूलता से नहीं लगाये गए, प्रत्युत उस समयकी परिपाटीसे लगाये गए हैं। इतना ही नहीं, प्रत्युत कई स्थानोंमें अर्थका बिल्कुल ध्यान न करते हुए ही यज्ञकर्ममें मन्त्रोंका प्रयोग हुआ है। इसलिए सबसे प्रथम बड़ी खोज करके अन्तर्गत प्रमाणोंसे वेदका सरल अर्थ निश्चित करना चाहिए और याज्ञिक पद्धतिका विचार करना हो, तो वेद मन्त्रोंको अलग रीतिसे पुनः संग्रहीत करना चाहिए। अर्थात् जो यज्ञ वेदमन्त्रोंके अर्थसे सिद्ध होंगे, उतने यज्ञ तो मानने ही चाहिएँ, परन्तु जो वेद मन्त्र अर्थसे यज्ञका प्रतिपादन नहीं करते, उनका विचार अलग करना चाहिए।

आज कल जो मंत्रसंग्रहकी व्यवस्था है, वह अर्थकी दृष्टिसे नहीं है। अर्थात् सूक्तोंका पूर्वापर सम्बन्ध कोई नहीं है। इसका उदाहरण देखिए—

ऋग्वेद प्रथम मण्डल

सूक्त	ऋषि	देवता	मंत्र संख्या
१	मधुच्छन्दाः	अग्नि	६
२	"	वायु	३
		इन्द्रवायू	३
		मित्रावरुणौ	३
३	"	अश्विनौ	३
		इन्द्रः	३
		विश्वेदेवाः	३
		सरस्वती	३

सूक्त	ऋषि	देवता	मंत्र संख्या
४	मधुच्छन्दाः	इन्द्रः	१०
५	"	"	१०
६	"	"	
		मरुतः	१०
७	"	इन्द्रः	१०
८	"	"	१०
९	"	"	१०
१०	"	"	१२
११	"	"	८

सूक्त	ऋषि	देवता	मंत्र संख्या
१२	मेधातिथिः	अग्निः	१२
१३	,,	,,	१२
१४	,,	विश्वेदेवाः	१२
१५	,,	ऋतवः	१२
१६	,,	इन्द्रः	६
१७	,,	मित्रावरुणौ	६
१८	,,	ब्रह्मणस्पत्यादयः	६
१९	,,	अग्नामरुतौ	६
२०	,,	ऋभवः	८
२१	,,	इन्द्राग्नी	६
२२	,,	अश्विनौ आदयः	२१
२३	,,	वायवादयः	२४
२४	शुनः शेपः	अग्न्यादयः	१५
२५	,,	वरुणः	२१
२६	,,	अग्नि	१०
२७	,,	,,	१३
२८	,,	इन्द्रादयः	६
२९	,,	इन्द्रः	७
३०	,,	इन्द्रादयः	२२
३१	हिरण्यस्तूपः	अग्नि	१८

सूक्त	ऋषि	देवता	मंत्रसंख्या
३२	हिरण्यस्तूपः	इन्द्रः	१५
३३	”	”	१५
३४	”	”	१२
३५	”	अग्न्यादयः	११
३६	काण्वः	अग्निः	२०
३७	”	मरुतः	१५
३८	”	”	१५
३९	”	”	१०
४०	”	ब्रह्मणस्पतिः	८
४१	”	वरुणादयः	९
४२	”	पूषा	१०
४३	”	रुद्रादयः	९
४४	प्रस्कण्वः	अग्निः	१४
४५	”	”	१०
४६	”	अश्विनौ	१५
४७	”	”	१०

सूक्त	ऋषि	देवता	मन्त्रसंख्या
४८	प्रस्कण्वः	उषाः	१६
४६	,,	,,	४
५०	,,	सूर्यः	१३
५१	सव्य	इन्द्रः	१५
५२	,,	,,	१५
५३	,,	,,	११
५४	,,	,,	११
५५	,,	,,	८
५६	,,	,,	६
५७	,,	,,	६
५८	नोधा	अग्निः	६
५६	,,	,,	७
६०	,,	,,	५
६१	,,	इन्द्रः	१६
६२	,,	,,	१३
६३	,,	,,	६
६४	,,	मरुतः	१५

सूक्त	ऋषि	देवता	मंत्रसंख्या
६५–७३	पराशरः	अग्निः (प्रत्येक सूक्त)	१०
७४	गोतमः	"	६
७५–७८	"	" (प्रत्येक सूक्त)	५
७६	"	"	१२
८०	गोतमः	इन्द्रः	१६
८१	"	"	६
८२	"	"	६
८३	"	"	६
८४	"	"	२०
८५	"	मरुतः	१२
८६	"	"	१०
८७	"	"	६
८८	"	"	६
८६	"	विश्वेदेवाः	१०
६०	"	"	६
६१	"	सोमः	२३

सूक्त	ऋषि	देवता	मंत्रसंख्या
९२	गोतमः	उषादयः	१८
९३	,,	अग्नीषोमौ	१२
९४	कुत्सः	अग्निः	१६
९५	,,	,,	११
९६	,,	,,	९
९७	,,	,,	८
९८	,,	,,	३
९९	कश्यपः	,,	१
१००	ऋज्राश्वादयः	इन्द्रः	१९
१०१	कुत्सः	,,	११
१०२	,,	,,	११
१०३	,,	,,	८
१०४	,,	,,	९
१०५	त्रितः	विश्वेदेवाः	१९
१०६	कुत्सः	,,	७
१०७	,,	,,	३

सूक्त	ऋषि	देवता	मंत्रसंख्या
१०८	कुत्सः	इन्द्राग्नी	१३
१०६	"	"	८
११०	"	ऋभवः	६
१११	"	"	५
११२	"	अग्न्यादयः	२५
११३	"	उषादयः	२०
११४	"	रुद्रः	११
११५	"	सूर्यः	६
११६	कक्षीवान्	अश्विनौ	२५
११७	"	"	२५
११८	"	"	११
११६	"	"	१०
१२०	"	"	१२
१२१	"	विश्वेदेवाः	१५
१२२	"	"	१५
१२३	"	उषा	१३
१२४	"	"	१३
१२५	"	दानम्	७
१२६	"	"	७

सूक्त	ऋषि	देवता	मत्र सख्या
१२७	परुच्छेपः	अग्निः	११
१२८	,,	,,	८
१२९	,,	इन्द्रः	११
१३०	,,	,,	१०
१३१	,,	,,	७
१३२	,,	,,	६
१३३	,,	,,	७
१३४	,,	वायुः	६
१३५	,,	वाय्वादयः	९
१३६	,,	मित्रावरुणादयः	७
१३७	,,	,,	३
१३८	,,	पूषा	४
१३९	,,	देवाः	११
१४०	दीर्घतमाः	अग्निः	१३
१४१	,,	,,	१३
१४२	,,	,,	१३
१४३	,,	,,	८
१४४			

सूक्त	ऋषिः	देवता	मंत्रसंख्या
१४५	दीर्घतमाः	अग्निः	५
१४६	"	"	५
१४७	"	"	५
१४८	"	"	५
१४९	"	"	५
१५०	"	"	३
१५१	"	मित्रादयः	९
१५२	"	"	७
१५३	"	"	४
१५४	"	विष्णुः	६
१५५	"	"	६
१५६	"	"	५
१५७	"	अश्विनौ	६
१५८	"	"	६
१५९	"	द्यावापृथिवी	५
१६०	"	"	५
१६१	"	ऋभवः	१४

सूक्त	ऋषि	देवता	मंत्रसंख्या
१६२	दीर्घतमाः	अश्वः	२२
१६३	"	"	१३
१६४	"	देवाः	५२
१६५	इन्द्रायः	मरुत्वानिन्द्रः	१५
१६६	अगस्त्यः	मरुतः	१५
१६७	"	"	११
१६८	"	"	१०
१६९	"	इन्द्रः	८
१७०	"	"	५
१७१	"	मरुतः	६
१७२	"	"	३
१७३	"	इन्द्रः	१३
१७४	"	"	१०
१७५	"	"	६
१७६	"	"	६
१७७	"	"	५
१७८	"	"	५
१७९	"	रतिः	६
१८०	"	अश्विनौ	१०

सूक्त	ऋषि	देवता	मंत्रसंख्या
१८१	अगस्त्यः	अश्विनौ	९
१८२	,,	,,	८
१८३	,,	,,	६
१८४	,,	,,	६
१८५	,,	द्यावापृथिवी	११
१८६	,,	विश्वेदेवाः	११
१८७	,,	,,	११
१८८	,,	(आप्री)	११
१८९	,,	अग्निः	८
१९०	,,	बृहस्पतिः	८
१९१	,,	अप्तृणसूर्यः	१३

ये ऋग्वेद के प्रथममण्डलके सूक्त हैं। इनमें पाठक देखेंगे, तो उनको पता लग जायगा कि, किसी एक प्रकरणमें प्रथम बहुत मंत्र-संख्या वाले सूक्त रखे हैं और आगे क्रमशः कम मंत्रसंख्या वाले सूक्त रखे गये हैं। उदाहरणके लिये सूक्त १२ से २१, २४ से २९, ३१ से ३५, ५१ से ५७, ५८ से ६०, ६१ से ६३, ८० से ८३, ९४ से ९८, ११६ से ११९, १२९ से १३४, १४० से १५०, १७३ से १७८, १८० से १८४, ये सूक्त देखिये। इनमें क्रमशः मंत्रसंख्या कम हुई नजर आवेगी। एक ही देवतामें यह बात विशेष स्पष्ट होगी। एक ही ऋषिके मंत्रोंमें प्रथम अग्निके मंत्र रहते हैं। इनमें स्पष्टतया प्रथम बहुसंख्या वाले सूक्त आते हैं। पश्चात् अल्पसंख्या वाले

आते हैं। सर्वत्र ऋग्वेदमें यही, मन्त्रसंख्यासे सूक्तक्रम रखा है। जहाँ इस क्रमके विरुद्ध कुछ सूक्त दिखाई देंगे, उन सूक्तोंमें अनेक देवता होंगे, विविध देवता होंगे, ऋषि बदले होंगे, या इसी प्रकार का अन्य कारण अवश्य होगा। इससे पता चलता है कि यह अर्थानुसंधानसे सूक्त नहीं रखे हैं, परन्तु केवल मन्त्रसंख्याके ही अनुसंधानसे रखे हैं।

अथर्ववेदमें भी पहिले सात काण्डोंका इसी तरह सूक्तोंकी मन्त्रसंख्यासे संग्रह किया गया है।

काण्ड	सूक्त		
१	४ मन्त्रवाले अधिक सूक्त हैं।		
२	५	,,	,,
३	६	,,	,,
४	७	,,	,,
६	३	,,	,,
७	१ या २ से अधिक		,,
८-९	२०	से अधिक	,,
१०	३०	से अधिक	,,

इस प्रकार काण्डके काण्ड सूक्तमें मंत्रसंख्या कितनी है, इस कारणसे ही इकट्ठे—संग्रहीत हुए हैं। इस कारण प्रत्येक काण्डमें औषधिसूक्त, जलसूक्त, अग्निसूक्त, चिकित्सासूक्त आदि इतस्ततः बिखरे दिखाई देते हैं। ऋग्वेदके पहिले सात काण्ड ऋषिक्रमसे संग्रहीत किये गये हैं—

मण्डल	ऋषि	सूक्तसंख्या	मंत्रसंख्या
द्वितीय	गृत्समद्	४३	४२९
तृतीय	विश्वामित्र	६२	६१७
चतुर्थ	वामदेव	५८	५८९
पंचम	अत्रि	८७	७२७
षष्ठ	भरद्वाज	७५	७६५
सप्तम	वसिष्ठ	१०४	८४१

ये मण्डल प्रायः बढ़ती सूक्त और मंत्रसंख्याके दीखते हैं, एक स्थान पर थोडा सा व्युत्क्रम भी है।

प्रथम मण्डलकी सूक्तसंख्या १९१ और मंत्रसंख्या २००६ है। दशम मण्डलकी सूक्तसंख्या १९१ और मंत्रसंख्या १७५४ है अष्टम मंडल कण्वका दीखता है और प्रथम मण्डल मधुच्छन्दाका है, तथापि इनमें अनेक अन्यान्य ऋषियोंके देखे आये हैं। ये मन्त्र-संग्रह 'आर्षेय-संहिता' के दर्शक हैं। नवम मण्डल सोम देवताका है और इसको 'दैवत-संहिता' का सूचक मान सकते हैं।

इस तरह ऋग्वेदमें दोनो प्रकारके मन्त्रसंग्रह दीखते हैं, पहिले ७ मण्डल 'आर्षेय' हैं और नवममण्डल 'दैवत' है। अर्थात ऋग्वेदकी यह व्यवस्था बतलाती है कि वेदमंत्रोंका अध्ययन 'अर्षेय-संग्रह' की दृष्टिसे भी करना चाहिए और 'दैवत-संग्रह' की दृष्टिसे भी करना चाहिए।

सायण भाष्य

प० रामगोविन्दजी त्रिवेदी "वैदिकसाहित्य" नामके अपने ग्रंथके पृ० ४० पर लिखते हैं, कि—

"वेदाध्ययनसे विमुख हो केवल वाणीसे वेद-भक्त बननेवाले कुछ लोग कहते हैं कि 'अनेक जन्म तपस्या किये बिना और जीवन्मुक्त प्राप्त किये बिना कोई भी न तो वेदोंका अर्थ ही समझ सकता है और न इनके बारेमे कोई राय ही दे सकता है।" किन्तु इन पंक्तियोंके लेखकमें न तो ये गुण ही हैं और न लेखक इस मतका समर्थक ही है। यह बात तो अवश्य है कि नैरुक्त, नैदान, ऐतिहासिक, ब्रह्मचारी, याज्ञिक, परिव्राजक, स्वरमुक्तिवादी आदि कितने ही ऐसे सम्प्रदाय हैं, जो वेदार्थके सम्बन्धमे विभिन्न मत रखते हैं। औपमन्यव, कौत्स, यास्क, उद्गीथ, स्कन्दस्वामी, भरतस्वामी, रावण, भट्ट भास्कर, वेंकट, उव्वट, महीधर, सत्यव्रतसामाश्रमी, स्वा० दयानन्द, लोकमान्य तिलक, अविनाशचन्द्र दास, राथ, ग्रिफिथ, मैक्डानल, मैक्समूलर, मुइगिल, लांलोआ, ग्रासमान, रेले, दाराशिकोह, आदि आदि वेद समीक्षकोंकी वेदार्थ सम्बन्धिनी अनेक सम्मतियां भी हैं। परन्तु सारे वर्ग इन तीन वर्गोंमें ही आजाते हैं आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। ये तीनो ही मत वेदों मे यथास्थान विन्यस्त हैं। इनमेसे किसी एकको लेकर और सारे मन्त्रोंकी खींचतान करके एक सा ही अर्थ निकालना, साम्प्रदायिक वा एकपक्षीय मनोवृत्तिका परिचायक है—निरपेक्षता, उदारता और दृष्टिव्यापकताका नहीं। प्रयोग, निरीक्षण, व्यवहार निर्वाचन, अभ्यास, समनुगमन आदिका विचार किये बिना केवल अध्यात्मवादकी काल्पनिक उडान उडने और ग्रीक, लैटिन भाषाओं का कोरा अभ्यास करनेसे कोई भी वेदार्थ नहीं समझ सकता।

वेदोंमें आध्यात्मिक आदि तीनो ही अर्थ हैं और सायणाचार्यने निरपेक्ष होकर तीनो ही अर्थोंको यथास्थान लिखा है। वेदोंमें समाधिभाषा, परकीयभाषा और लौकिकभाषा-तीनो ही भाषाओं का प्रयोग है और सायणने यथास्थान तीनोंका ही रहस्य बताया है। इसीलिए उन्होने इन्द्रका अर्थ ईश्वर, दूत, ज्ञान, विद्युत तक लिखा है और वृत्रका अर्थ असुरराज, असुर, अज्ञान और मेघ तक। जहाँ जिस भाषा और वादका कथन है, वहां उसीका उल्लेख करके सायणने अर्थ-समन्वय किया है।

यह सब होते हुए भी देश और विदेशमे सायणके विरुद्ध मत रखनेवालोंकी कमी नहीं है। विदेशी वेदाभ्यासियोंमें "Tosvonsayana" (सायणका बहिष्कार करो) की आवाज कई बार उठाई गई। 'वैदिककोष' लिखनेवाले राथ और ग्रासमानका सायणमत-खण्डन तो विश्व-विदित है ही, परन्तु लेखकके मतसे सारे मतभेद और खण्डन निरर्थक हैं; क्योंकि—

१—वेदार्थ-निर्णय करनेमे सायणने आर्यजातिकी प्राचीन मर्यादा और परम्पराका पालन किया है।

२—स्कन्दस्वामी, वेंकटमाधव और उद्गीथ आदि ऋग्वेद के प्राचीन टीकाकारोंका सायणने अनुगमन किया है।

३—सायण-भाष्यका समर्थन सारे वैदिक-साहित्य, प्राचीन इतिहास और आर्य जाति के आचार-विचारसे होता है।

४—विश्वकी विविध भाषाओंमें प्रकाशित वेद-संबन्धी ग्रंथोंके प्रणेता प्रायः सायणानुयायी हैं।

५—सनातन धर्मानुयायी सदासे सायणभाष्यको आर्य जाति

की संस्कृति, सभ्यता और नीतिका अनुयायी मानते हैं।

६—सायणभाष्यके सिवाय ऋग्वेदपर किसीका भी पूर्णभाष्य नहीं। इसलिए सायण-भाष्यके अभावमें ऋग्वेदका न तो सम्यक् अर्थ-संग्रह होता, न रोठराचार्य (राथ) की 'पीट र्बर्ग लेक्जिकन' नामक कोष-पुस्तक ही बन पाती और न ग्रासमानका वैदिक-कोष ही लिखा जाता।

फलतः जिन विद्वानोंकी धारणा है कि ग्रीक और लैटिन भाषाओंका ज्ञान और साधारण संस्कृत-ज्ञान रहनेसे ही मनुष्य वेदार्थ समझ सकता है, वे भारी भ्रममें हैं। हिन्दू-संस्कृति, हिन्दू-धर्म और हिन्दू-शास्त्रोंका मर्म समझनेवाले सायणके भाष्यसे वेदार्थ समझनेमें जो सहायता मिलेगी, उसकी दुकड़ी सहायता भी ग्रीक और लैटिन के ज्ञानसे अथवा लांलोआ (फ्रेंच), लुडविग (जर्मन) और ग्रिफिथ (इङ्गलिश) के किए वेदार्थसे नहीं मिलेगी। इसलिए वैदिकसाहित्य का परिचय पानेके लिये सायण-भाष्य प्रधान सहायक है। इन पंक्तियोंका लेखक सायण भाष्यके अनुकूल वेद-परिचय देना उत्तम समझता है।"

इसी प्रकार आर्यसमाजके सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् प० नरदेव जी तथा सातवलेकरजी आदिने भी सायणाचार्यके भाष्यकी भूरि भूरि प्रशंसा की है। इसीलिए हमने भी इस पुस्तकमें प्रायः उसी भाष्यका अनुसरण किया है।

वेदों में इतिहास

ऋ० मं० १० सूक्त ३९ में निम्न प्रकारसे इतिहास आया है—

१—युवं च्यवानं सनयं यथा रथम्।

अर्थात जैसे कोई पुराने रथ को नये रूपसे बनाकर उसके द्वारा गीत-विधि करता है, वैसे ही तुमने जरा-जीर्ण च्यवन ऋषि को युवा बना दिया था। तुम लोगों ने ही तुग्र पुत्रको जलके ऊपर निरुपद्रवरूपसे वहन करके तटपर लगा दिया था। यज्ञके समय तुम दोनोंके ये सब कार्य, विशेषरूपसे वर्णन करने योग्य हैं।

२—युवं रथेन विमदाय शुन्ध्युवम्'

अर्थात् पुरुमित्र राजा "शुन्ध्युव" नामक कन्याको तुम लोग रथपर चढ़ा लगये थे और "विमद" के साथ उसका विवाह करा दिया था। वध्रिमतीने तुम लोगोको बुलाया था, उसकी बात सुन कर और उसकी प्रसववेदनाको दूर करके सुखसे प्रसव कराया था।

३—युवं विप्रस्य जरणामुपेयुषः

अर्थात कलि नामका स्तोता जो अत्यन्त वृद्ध होगया था, तुम लोगोंने उसे फिर यौवनसे युक्त किया था। तुम लोगोने ही वन्दन नामक व्यक्तिको कुएँके बीचसे निकाला था। तुम लोगोंने ही लँगडी विश्पलाको लोहेका चरण देकर उसे चलानेवाली बना दिया था।

४—युवं हरेभं वृषणागुहा

अर्थात् अभीष्ट फलदाता अश्विद्वय! जिस समय रेभनामक व्यक्तिको शत्रुओंने मृतप्राय करके गुहाके बीच रख दिया था, उस समय तुम लोगोंने ही उसे संकटसे बचाया था। जिस समय अत्रि ऋषि, सात बन्धनोंमें बाँधे जाकर जलते अग्निकुण्डमें फेंके गये थे, उस समय तुम लोगोने उस अग्नि कुण्डको बुझाया था।

५—युवं श्वेतं पेदवेऽश्विनाश्वम्

अर्थात् हे अश्विद्वय, तुमने ही पेदु राजाको निन्यानवें (६६) घोड़ोंके साथ, एक उत्तम शुभ्रवर्णवाला घोड़ा दिया था। वह घोड़ा विचित्र तेजस्वी था, उसे देखकर शत्रुसेना भाग जाती थी। वह मनुष्योंके लिए बहुमूल्यवान् था। उसका नाम लेनेपर आनन्द और देखनेपर मनमें सुख होता था।

६—न तं राजानावदिते

अर्थात् अक्षय राजाओ! तुम दोनोंका नाम कीर्तन करनेसे आनन्द होता है। जिस समय तुम मार्गमें जाते हो, उस समय सब चारों ओरसे तुम्हारी स्तुति करते हैं। यदि तुम दम्पतिको रथ के अगले भागमें चढ़ाकर आश्रय दो, तो इन्हें कोई भी पाप, दुर्गति या विपत्ति न छुये।

७—आतेन यातं मनसो०

अर्थात् अश्विद्वय! ऋभु नामके देवोंने तुम्हारे लिए रथ प्रस्तुत किया था। उस रथके उदय होनेपर आकाशकी कन्या उषा प्रगट होती हैं और सूर्यसे अतीव सुन्दर दिन तथा रात्रि जन्म लेती हैं। उसी मनसे अधिक वेगवाले रथपर बैठ कर तुम लोग पधारो।

८—ता वर्तियातं जयुषा०

अर्थात् अश्विद्वय! तुम उसी रथ पर चढ़कर पर्वतकी ओर जाने वाले मार्गपर गमन करो, शयु नामक मनुष्यकी बूढ़ी गायको फिर दूधवाली बनादो। तुम्हारी ऐसी क्षमता है कि तंदुएके मुंहमें गिरे

वर्त्तिका नामक पक्षीको तुमने उसके मुँहसे निकालकर उसका उद्धार किया था।

६—एतं वां स्तोममश्विना

अर्थात् जैसे भृगु सन्तानें रथ बनाती हैं, वैसे ही अश्विद्वय, तुम लोगोंके लिए यह रथ प्रस्तुत किया है। जैसे जामाताको कन्या देनेके समय लोग उसे वस्त्राभूषणसे सुसज्जित करदेते हैं, वैसे ही हमने इस स्तोताको अलंकृत किया है। हमारे पुत्र-पौत्र सदा प्रतिष्ठित रहें।

वेदों में इतिहास

अब हम वैदिकइतिहासका क्रमशः वर्णन करते हैं, अतः ऋ० मं० १ में निम्न प्रकारका इतिहास आया है, साथ ही सूक्त और मंत्रके अंक भी दे रहे हैं:—

१—पणिने गायें चुरायीं, इन्द्रने उन्हें ढूँढा	६।५
२—वल दैत्य का गोहरण ?	११।५
३—कक्षीवान्की कथा	१८।१
४—हरि घोड़ेकी उत्पत्ति	२०।१
५—ऋभुओंने माँ बापको जवानी दी	२०।४
६—ऋभुओं द्वारा देवशिल्पीकी चमस तोड़ना	२०।६
७—ऋभुगणकी देवत्त्वप्राप्ति	२०।८
८—देवरमणियोंका यज्ञमें आना	२२,६,१०
६—वामनावतारकी कथा	२२।१७,६०।६
१०—किसानोंका खेत जोतना	२३।१५
११—पूषा द्वारा सोमका पायाजाना	२३।१४
१२—औषधियोंकी खबर रखने वाले चन्द्र	२३।२०
१३—शुनः शेपकी कथा	२४।१से१५

१००—ऊँटपर चढकर युद्ध करना ३८।२
१०१—ऋषियोका दीर्घजीवन १३६।६
१०२—गर्भिणी दीर्घतमाकी माताके साथ बृहस्पतिका सम्भोग १३७।३
१०३—शतहव्यकी दुग्धशून्या गायका दुग्धवती होना १५३।३
१०४—वामनावतार १५४।१
१०५—अश्विनीकुमारोका औषधदान १५७।६
१०६—अनर्थो द्वारा एक वृद्धकी चोटी १ काटा जाना १५८।५ व १५६।२
१०७—सुधन्वाके पुत्रोद्वारा चमसका बनाना १६१।१
१०८—अश्वमांसका उपयोग १६२ पूर्णसूक्त
१०९—इन्द्र और मरुद्गणका मनोरञ्जन संलाप १६५ „
११०—मरुद्गणकी शृङ्गारप्रियता १६६।१०
१११—पृश्नि द्वारा महासग्रामके लिये मरुद्गण प्रसूत होना १६८।६
११२—इन्द्र द्वारा अत्यन्त दृढ़ सात पुरियोका तोड़ा जाना १७४।२
११३—दुर्योणि राजाके लिए इन्द्र द्वारा कुयवका वध १७४।७
११४—अगस्त्य और लोपामुद्राका पूर्णभाषण १७६ पूर्णसूक्त
११५—डूबते हुए तुग्र-पुत्रके लिए अश्विनीकुमारोंने समुद्र मे नौका दौड़ाई थी १८२।५-६
११६—विषाक्त सरिसृपगण १९२ पूर्णसूक्त
११७—इन्द्रने त्रितके बन्धुत्वमे त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपका वध किया २।११।१८
११८—इन्द्रका एक १००० हजार घोड़ोंपर प्रभुत्व, दभीति ऋषिका दस्युओ द्वारा त्राण पाना १३।६

१४१—विपाशा और शुतुद्रि नदियोंका जन्म ३३।१
१४२—विश्वामित्रकी प्रार्थनासे विपाशा और शुतुद्रीका
 निम्न स्थान (पार होने योग्य) होना ३३।९-१०
१४३—सुपर्ण पक्षी द्वारा सोमका लाया जाना ४३।७
१४४—पणियों द्वारा गउओंका अपहरण ४४।५
१४५—अदितिने सूतिकागृहमे इंद्रको स्तन्यपानके प्रथम
 सोम रस पिलाया ४८।२
१४६—त्वष्टाको विनष्ट कर इंद्रने चमसस्थित सोम चुराया ४९।४
१४७—पिजवन-पुत्र सुदासका यज्ञ ५३।९
१४८—अनार्य जनपद कीकटमे दुग्धदायिनी गाय ५३।१४
१४९—वसिष्ठके भृत्योद्वारा विश्वामित्रका अपमान ५३।२२
१५०—त्रिविक्रमावतार ५४।१४
१५१—विना रेतः सयोगके औषधियोका गर्भवती होना, ५५।५
१५२—ऋभुओं द्वारा चमस-निर्माण, मृतक गोशरीर-
 मे चर्म योजना और इन्द्रके अश्वद्वयका निर्माण
 ६०।२,४।३३।८४१०,११
१५३—अग्नि पत्नी होत्रा और सूर्यपत्नी भारती ६२।३
१५४—वरुणकृत जलोदर रोग ४।१।५
१५५—अग्नि अपने सेवकोको धनवान् करते है २।६-१०,३।१८।४
१५६—चक्षुहीन दीर्घतमाका शापोद्धार ४।१३
१५७—देवदूत अग्नि ७।८
१५८—सहदेवपुत्र सोमक राजाका अश्वदान १५।७
१५९—कुत्स और इन्द्रका रूपसाम्य १६।१०
१६०—इन्द्र द्वारा कुयव और शुष्ण असुरका वध १६।१२
१६१—सग्राममे इन्द्र द्वारा सूर्यके रथचक्रका छिन्न होना
 १६।१२, ४।३०।४

१७७ दभीतिके लिए त्रिंशत्-सहस्रसंख्यक राक्षसोंका हनन ३०।२१

१७८ वृषभयुक्त द्वारा रथका गमन ३२।४

१७९ ऋभुओंने परिचर्या द्वारा माता पिताको युवा किया ४।३३।२-३,४।३४।९,४।३६।३

१८० ऋभुओंने देवोंके लिए अंसत्रा कवच और अश्वि-द्वयके लिए रथ निर्माण किया ३४।९

१८१ ऋभुओं द्वारा निर्मित अश्विद्वयके त्रिचक्र रथका बिना अश्व और प्रग्रहके अन्तरिक्षमे परिभ्रमण ३६।१

१८२ त्रसदस्यु राजाका महादान ३८।१

१८३ पुरुकुत्सकी स्त्रीने सप्तर्षिके अनुग्रहसे त्रसदस्युको प्राप्त किया ४२।८

१८४ सूर्या द्वारा अश्विद्वयके रथका संवरण ४३।२,६

१८५ इन्द्र द्वारा क्षीर, सूर्यद्वारा दधि और देवों द्वारा घृतकी उत्पत्ति ५८।४

१८६ वृश ऋषिके रथचक्र द्वारा कुमारकी मृत्यु ५।२।१

१८७ यज्ञयूपमे बद्ध शुनःशेपकी मुक्ति २।७

१८८ गऊ, अग्नि और सूर्यका अग्निसे उत्पन्न होना ४।४

१८९ अग्निद्वारा वव्रि ऋषिकी दुर्दशाका अपनोदन १९।१

१९० अरुणका महादान २७।२

१९१ कुत्सके साथ एक रथपर आरूढ २७।२

१९२ इन्द्र द्वारा शुष्णासुरका वध २९।३

१९३ इन्द्र द्वारा शम्बरासुरका वध २९।६

१९४ गऊओंकी रक्षाके लिये इन्द्रका असुरोंसे युद्ध ३०।४

१९५ मरुतोंके प्रभावसे द्यावा पृथिवीका चक्र की तरह घूमना ३०।८

२८८ विद्युत् और इन्द्रकी सहस्रों औषधियाँ ४६।३
२८९ वसुओंके साथ इन्द्रका सोमरससे मत्त होना ४७।२
२९० जलदेवियोंका उल्लेख ४९।३
२९१ नाना विष और सर्पविष ५० पूरासूक्त
२९२ वास्तोष्पति (गृहपालक) देवकी स्तुति ५४
२९३ देव-कुक्कुरीके वंशज वास्तोष्पति (सारमेय) ५४।१
२९४ चोर और डाकूकी बात ५५।३
२९५ सूअरका उल्लेख ५५।४
२९६ हर्म्य (कोठा) ५५।६
२९७ आँगन, वाहन और विस्तरेपर सोनेवाली तथा पुण्यगन्धा स्त्रियाँ ५५।८
२९८ श्वेतवर्ण मरुत ५६।४
२९९ मरुतोंको वलय और हार ५६।१३
३०० स्वर्गका उल्लेख ५८।१
३०१ नीलवर्ण हंस ५९।७
३०२ बदरीफल ५९।१२
३०३ सूर्यके ७ जलदाता और हरिद्वर्णके अश्व ६०।३
३०४ मित्र और वरुणकी पृथिवीप्रदक्षिणा ६१।३
३०५ मित्र, वरुण और अर्यमा द्वारा वर्ष, मास और दिनकी रचना ६६।११
३०६ मदकर सोम ६८।२
३०७ अश्विनीकुमारोंद्वारा समुद्र-पतित भुज्युका उद्धार ६८।७
३०८ रथपर सारथियोंके बैठनेके ३ स्थान ६९।२
३०९ घर्म (धूप)के द्वारा वृष्टि ७०।२
३१० अश्विद्वयके द्वारा च्यवन ऋषिका बुढ़ापा छुड़ाना, अत्रिको अंधकारसे पार करना और जाहुषको पुनः राज्य देना ७१।५

वेदोत्पत्तिवादोंका संग्रह

प्रिय पाठकवृन्द !

वेदोत्पत्ति के विषय मे वैदिक धर्मावलम्बियों की अनेक परस्पर विरुद्ध मान्यतायें हैं। उन मान्यताओके पठनमात्रसे ही उनके ईश्वरीय होने का स्वयं खण्डन होजाता है. इस लिये अब हम उन सम्पूर्ण सिद्धान्तोको पाठकोंकी जानकारीकेलिये लिखते हैं, जिससे पाठक स्वयं इनपर विचार कर सके । इन सब सिद्धान्तोंको वर्तमान समयके सर्वशिरोमणि वेदज्ञाता पं० मधुसूदनजीने 'गङ्गा' के 'वेदाङ्क' मे निम्नप्रकारसे लिखा है—

वेदोत्पत्ति

१ वेद अपौरुषेय हैं अर्थात् किसी के बनाये हुए नहीं हैं, नित्य हैं।

२ सांख्य मतानुसार वेद उत्पन्न हुये हैं।

३ प्राचीन नैय्यायिकोंका मत है कि वेद ऋषियोकेबनाये हुये हैं। इसीलिये प्रामाणिक भी हैं, आयुर्वेदकी तरह।

४ वैशेषिकोंका मत है कि शब्दरूप वेद तो अनित्य है परन्तु ज्ञानरूपसे जो विद्याएँ उसमे हैं वे नित्य हैं । कैयट भी इसी मतको स्वीकार करता है।

५ नित्यवेद ईश्वर से भिन्न नहीं है, क्योंकि ईश्वर और वेद दोनों ब्रह्म हैं। दोनों का वाचक (ॐ) है। तथा दोनोंसे ही सृष्टिकी उत्पत्ति मानी जाती है । एक शब्द ब्रह्म है, दूसरा परब्रह्म। शब्द ब्रह्मका विवर्त वेद है। तथा परब्रह्मका विवत अर्थ।

६ वेद ईश्वरका निश्वास है । जिस प्रकार निश्वासका निर्माता

मनुष्य नहीं होता, उसी प्रकार वेदोंका निर्माता भी ईश्वर नहीं है।

७ ईश्वरकी कृपासे नित्य वेदको (सृष्टि करनेके लिये) ब्रह्माने गाया था, इसके लिये उसने कोई प्रयत्न (तप आदि) नहीं किया।

८ सृष्टिके आदिमें चाहे ब्रह्माने वेद बनाये हों, परन्तु आज हमें जो वेद मिलते हैं उन्हें ईश्वरकी कृपासे महर्षियोंने पाया है।

९ प्रजापृश्नि ऋषिने सृष्टिके आदिमे तप करके ईश्वरकी कृपासे वेदोंको प्राप्त किया।

१० सर्वप्रथम अथर्वा अंगिराने वेदोंको प्राप्त किया।

११ सृष्टिके आदिमे ईश्वरने वेदोंको कहा—"वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा"।

१२ वेद ब्रह्माका वाक्य है।

१३ ब्रह्माने वेदोंको बनाया नहीं, अपितु संकलन किया है।

१४ वेदोंका अनेक ऋषियोंने संकलन किया है, बनाया नहीं।

१५ नित्य सिद्ध वेदके शब्दोंसे ईश्वरने जगत को बनाया है।

१६ प्रत्येक कल्पके आदिमे वे ही वेद बनाये जाते है, अथवा प्रकट होते हैं, उनमें एक अक्षरकी भी न्यूनाधिकता नहीं होती।

१७ कल्पके प्रारम्भमे अन्य (दूसरे) वेद बनते हैं।

१८ जिस प्रकार सोते समय दिनका ज्ञान भूल जाता है और उठनेपर उसे पुनः वह ज्ञान स्मरण हो जाता है इसी प्रकार सृष्टिके आदिमें ईश्वरको वेद स्मरण हो जाते है।

१९ शब्द नित्य हैं उन्हीं शब्दोंसे ईश्वरने वेद तथा जगतको बनाया जिस प्रकार जगत् अनित्य है उसी प्रकार वेद भी अनित्य है।

२० वेद और जगत्को ईश्वरने अपनी इच्छानुसार बनाया है। क्योंकि वह सर्वशक्तिमान है।

२१ कई कहते हैं कि वेदको ईश्वरने बनाया और ऋषियों द्वारा उसको प्रकट किया, क्योंकि वह निराकार होनेसे लोकमे प्रकट नहीं कर सकता था।

२२ ब्रह्म दो प्रकारका है। एक निर्गुण, दूसरा सगुण। इसी सगुण ब्रह्म (ब्रह्मा हिरण्यगर्भ) ने वेदको बनाया (महाभारत)

२३ वेद मत्स्य भगवानका वचन है।

२४ अग्नि, वायु, सूर्य देवोने वेदोंको बनाया। ये ही ईश्वरकी विभूतियां तीन देवता हैं।

२५ किसी के मतमे उपर्युक्त तीनों मनुष्यविशेष थे तथा इनपर वेद प्रकट हुये।

२६ यास्क के मतानुसार वेदोंकी उत्पत्ति खासकर सूर्य देवतासे हुई है।

२७ अग्नि, वायु, आदित्यके अभिमानो देवोंसे वेदकी उत्पत्ति हुई।

२८ नारायणोपनिषद्में लिखा है कि वेदोमे एक सूर्यका ही वर्णन है, अतः सूर्यको ही वेद समझना चाहिये।

२९ यज्ञसे वेदकी उत्पत्ति हुई है।

३० काल से वेदकी उत्पत्ति।

३१ सृष्टिके आदिमें वेद स्वयं उत्पन्न हुये। ईश्वर तो क्लेश कर्म आदिसे रहित है।

३२ वेद भी प्रकृतिजन्य है, पृथ्वी आदिकी तरह स्वयं उत्पन्न हुआ है, किसी ने बनाया नहीं।

३३ माधवाचार्य कहते हैं कि अग्नि, वायु, सूर्य यह तीन ऋषि थे। इन्होने वेद बनाये।

३४ पृथ्वीनामक ऋषिने वेद बनाये।

३५ महाभारतकी एक कथामें लिखा है कि, ऊर्ध्वरेता ऋषियोने वेद बनाये हैं। पूर्व समयमे गृहस्थ ऋषियोकी ५००००, बाल-ब्रह्मचारो ऋषियोकी संख्या ८८००० थी यह सब रातदिन तत्व चिन्तामे ही लगे रहे थे, उन्होने वेद बनाये।

३६ कहीं मत्स्य, वसिष्ठ, अगस्त्य, भृगु, अत्रि, कश्यप और विश्वामित्र के वाक्य वेद है, ऐसा भी मिलता है।

नोट—मत्स्यको छोड़कर बाकीके सात वशोकी वेदमे विशेषप्रकार से चर्चा है।

३७ वेद भिन्न भिन्न ऋषियोंके आम्नायसे संग्रहीत है।

नोट—महाभारतके कुछ पूर्व समय तक यह वचन सग्रहीत हुये तथा संहिता रूपमे लाये गये।

३८ वेद पुरोहितोके वाक्योंका संग्रह है।

नोट—इसी प्रकार अन्य भी अनेक मत है। उपर्युक्त सब विषयोंमें अनेक प्रमाण हैं। इस प्रकारकी युक्तियों और प्रमाणोसे यह सिद्ध है कि वेद न तो ईश्वरकृत हैं और न नित्य हैं।

'समाप्तश्चायं ग्रन्थः

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६	२३	शृणवावा	शृणवामा
१६	१८	स्थितम्	स्थिताम्
१६	२५	महोने	महीने
१८	७	स्तुतवे	स्तुवते
१८	१५	सुव्रतं	सुव्रतं
१८	२५	निर्वाणसं	गिर्वणसं
१६	२०	विम्वासां	विश्वासां
२२	१४	(पुरुस्कृत)	(पुरस्कृत)
२३	१२	इसी×××	इसी प्रकार
२६	१६	प्रचीनात्	प्राचीनान्
३२	१२	वरके	करके
३३	३३	मेद	मद
३६	१५	अश्वम्	अश्व्यम्
४१	१	ऋपीणा	ऋषीणाम्
४१	१	छन्दासां०	छन्दसां०
४२	१७	अण्य	अरण्य
४४	७	'प्रयमेघ'	'प्रियमेघ'
५२	२५	२८	१८
६०	१८	ददन्यतरङ्गा	तदन्यतरङ्गा
६२	२३	तदेव	तदेष
६४	६	स्तोत	स्तोत्र
६७	२०	श्रास्ती	श्रावस्ती

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६७	२४	ऋषियो	ऋषियों
७२	१६	मयंत	मन्यंते
७२	२१	अस्रवेत	अपस्रवेत
७२	२३	पुरुच्छेयस्य	पुरुच्छेपस्य
७२	२३	तह	यह
८३	६	दयानद	दयानन्द
८४	२	ही है था	ही था
८४	१३	मष्टा	द्रष्टा
८६	१५	न्विनागुशना	कवीनामुशना
९३	११	प्रत्यक्ष×	प्रत्यक्ष है।
९६	१७	कहलाXX	कहलानेका
९८	१०	दिव्यक्षुपः	दिव्यचक्षुपः
९९	२	चिरन्त	चिरन्तन
११७	१५	कारुरुकथ्यके	कारुरुकथ्ये
११७	१६	यित्वेपु	पित्वेपु
११७	१७	७	६
११७	१८	तदयुपे	तदूचुपे
११७	१८	कीर्तन्ये	कीर्तेन्यं
११८	१	चिदृदुडला	चिदृदृडहा
११८	१	राद्रि	गद्रि
११८	२	चक्रदिव	चक्रदिवो
११८	७	त्वामिन्ये	त्वामिन्मे
११८	१५	क	वां
११८	१७	श्रमी	श्राभी
१२१	१६	श्रग्रेजी	श्रग्रेजी मे

पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११	१०	६
१४	असान	असाम
१६	अहिल्य	अहिल्या
८	जग्रहुस्ते	जगृहुस्ते
२४	विपरीत	विपरीतता
२२	xxx	अतः आपका कथन युक्तियुक्त नहीं है।
२	वांधने	वींधने
१४	श्रतियो	श्रुतियो
८	अयौरपेयत्व	अपौरपेयत्व
२५	अभिलापित अथ	अभिलषित अथ
३	नह	नहीं
१६	इतिहासि	इतिहास
१०	जिनक	जिनके
२६	काट	कोटि
११	हो	होजाओ
१६	आकिच	आर्चिक
११	आंश्वध्रयवंधी	आश्वध्रय संबंधी
२४	प्रवर्ग्य	प्रवर्ग्य
११	सन्निवेष	सन्निवेश
१३	आये	गये
१६	अर्पोय	आर्पेय
२	गर्तविधि	गतिविधि